रसायन में नोबेल पुरस्कार-विजेता
(१९०१–१९५०)

[Translated into Hindi from "Nobel Prize winners in Chemistry by Eduard Farber" Henery Schuman, New York]

हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—६६

रसायन में नोबेल पुरस्कार-विजेता

(१९०१-१९५०)

लेखक

श्री एडुअर्ड फार्बेर

अनुवादक

डा० हरि भगवान

हिन्दी समिति, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश, लखनऊ

प्रकाशकीय

सभ्यता और शिक्षा की उन्नति के साथ-साथ विज्ञान हमारे जीवन में अधिकाधिक प्रवेश करता जा रहा है। हमारे उद्योग-व्यापार पर, हमारी सुख-समृद्धि पर एवं हमारे मानसिक विकास पर उसका गहरा प्रभाव पड़ रहा है। बीसवीं शताब्दी में भौतिकी, रासायनिकी आदि में हुए महान् आविष्कारों ने हमारे रहन-सहन के तरीकों, विचारों, व्यवहारों, साधनों आदि में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिये हैं। इन आविष्कारों और प्रभावों की कहानी जितनी ज्ञानवर्द्धक है, उतनी ही रोचक एवं उत्साहवर्धक भी है।

इस पुस्तक में उन विख्यात रसायनज्ञों के आविष्कारों का संक्षिप्त वर्णन है जिन्हें सन् १९०१ से १९५० के बीच रसायन में नोबेल पुरस्कार मिला था। पुरस्कार विजेताओं के थोड़े-से परिचय के साथ-साथ इसमें उनकी रुचियों, उनकी शिक्षा और उन परिस्थितियों का भी वर्णन है जिनसे सफलता की ओर अग्रसर होने में उन्हें सहायता मिली। इसके अतिरिक्त इसमें उनकी कृतियों और विज्ञान-जगत् पर पड़नेवाले उनके प्रभावों का भी विवेचन किया गया है जिससे विश्वज्ञान-वृद्धि में उनका उचित मूल्यांकन हो सके और जिससे संसार के अन्य वैज्ञानिक एवं विद्वान् और शिक्षार्थी भी यथेष्ट रूप से लाभान्वित हो सकें।

पुस्तक के अनुवादक डाक्टर हरिभगवान हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर वर्षों से लेख लिखते रहे हैं। आप द्वारा अनूदित 'क्रोमैटोग्राफी' नामक एक पुस्तक हम पहले प्रकाशित कर चुके हैं। मूल के भावों की रक्षा करते हुए आपने यथासंभव सरल और सुबोध भाषा का ही प्रयोग किया है। आशा है, हिन्दी के पाठकों की वैज्ञानिक जानकारी बढ़ाने में इससे यथेष्ट सहायता मिलेगी।

ठाकुरप्रसाद सिंह

सचिव, हिन्दी समिति

भूमिका

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के साथ ही साथ डाक्टर आल्फ्रेड नोबेल के वसीयतनामे को कार्यान्वित करने के लिए नोबेल प्रतिष्ठान (Nobel Foundation) का कार्य आरम्भ होता है। तब से लेकर १९५० तक ५३ रसायनज्ञों को पुरस्कार मिल चुका है। १९१६, १७, २४, ३३, ४०, ४१ और ४२ के वर्षों को छोड़कर प्रत्येक वर्ष में रसायन के अग्रणी महारथियों के अंतर्राष्ट्रीय समूह द्वारा पुरस्कार प्रदान करने के लिए व्यक्ति प्रस्तावित किये और चुने जाते रहे हैं। पहले इस समूह में ३०० व्यक्ति होते थे; अब लगभग ४५० होते हैं। विज्ञान की रायल स्वीडिश अकादमी पहले १० व्यक्तियों में से और अब ७० व्यक्तियों में से पुरस्कार-विजेताओं को चुनती है। १९०१ में पुरस्कार ४१,८०० डालर का होता था, किन्तु १९५० में यह केवल ३१,७०० डालर का ही रह गया। यद्यपि पुरस्कार का धन संबंधी मूल्य गिर गया है, तथापि इन वर्षों में उसकी महत्ता और प्रसिद्धि बढ़ गयी है। जब वैज्ञानिकों के कार्य की उनके साथी लोग प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि उससे रसायन के ज्ञान में वृद्धि हुई है तो उससे उनको प्रोत्साहन मिलता है; इससे विज्ञान एवं मानवता की प्रगति होती है और इस प्रकार डॉक्टर नोबेल का मौलिक लक्ष्य सिद्ध होता है।

पुरस्कार के प्रत्येक वर्ष में, नोबेल पुरस्कार की सूचना पाकर सब देशों की जनता में बिजली की लहर-सी दौड़ जाती है और साहित्य, राजनीति एवं विज्ञान के इन महान् व्यक्तियों की ओर उसका ध्यान आकर्षित हो जाता है। तथापि उनके कार्य को कम लोग ही समझते हैं। नोबेल पुरस्कार के विजेता और उनका कार्य 'बेसबाल अथवा बाक्सिंग' के विजेताओं की भी अपेक्षा शीघ्रतर भुला दिये जाते हैं, इसलिए कुछ वर्ष पहले, श्री हेनरी शूमान ने इस स्थिति में सुधार करने का निश्चय किया। आपने औषध एवं शरीरविज्ञान (फ़िज़िओलोजी), भौतिकी और रसायन—इन तीन भागों में नोबेल पुरस्कार-प्राप्त कार्य एवं उसकी महत्ता के विवरण को प्रकाशित करने की योजना बनायी। श्री शूमान से परामर्श करके इस योजना का निश्चित रूप बनाया गया। यह पुस्तक इसी योजना का परिणाम है।

जीवन-चरित्र की रूपरेखाओं में मैंने इन विजेताओं की शिक्षा एवं पदों के काल-क्रमानुसार वर्णन के अतिरिक्त और भी कुछ देने का प्रयत्न किया है। वैज्ञानिक अन्वेषणों और उनके औद्योगिक उपयोगों को हम और अच्छी तरह समझ सकते हैं, यदि हमें यह मालूम हो कि अन्वेषकों की उस विषय में रुचि किस प्रकार हुई और उन्होंने किन परि-स्थितियों में सफलता प्राप्त की। पुराने विजेताओं की जीवनी-सामग्री आधुनिक विजे-ताओं की अपेक्षा अधिक रूप में उपलब्ध होती है, क्योंकि आधुनिक विजेता यह तो बता सकते हैं कि उनकी रुचि किस ओर है (उदाहरणार्थ, पहाड़ पर चढ़ना वायलिन बजाने से अधिक रुचिकर है), किन्तु वे अपनी भावनाओं और झुकान को अधिक निश्चित रूप में नहीं बता पाते।

पुरस्कार-विजेता के कार्य का वर्णन साधारणतया पुरस्कार-प्राप्ति के समय किये गये उनके भाषण से लिया गया है। फ्रैंच, जर्मन और स्वीडिश भाषाओं के प्रकाशनों का मैंने ऐसा अंग्रेजी अनुवाद देने का प्रयत्न किया है, जिसमें उनका मौलिक कथन विद्यमान रहे। साधारण रूप से मैंने संक्षेप में नये अन्वेषण की पृष्ठभूमि का भी वर्णन किया है। जहाँ पर पुरस्कार-विजेताओं के कथन जटिल हो गये हैं, वहाँ उनकी कुछ व्याख्या भी कर दी गयी है। विचारों और प्रयोगों में सामंजस्य दिखाने के लिए पिछले अध्यायों का भी जगह-जगह पर हवाला दे दिया गया है।

नये अन्वेषण के महत्त्व का वर्णन सिद्धांत और व्यवहार पर उसके प्रभाव को बता-कर किया गया है। यह प्रभाव कभी-कभी बहुत बड़ा हो सकता है और किसी रासायनिक विचारधारा का आधार बन सकता है; अथवा यह विशिष्ट भी हो सकता है, जिससे किसी व्यावहारिक समस्या का हल हो गया हो। अनेक दशाओं में पुरस्कार तब दिया जाता है जब शोध के अनेक विषयों पर उसका प्रकाश पड़ता है। उनके आलोचनात्मक उत्साह को ठीक सिद्ध करने के लिए मैंने किसी का भी बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन नहीं किया है; इसके बिना किसी भी अच्छे ग्रंथ का निर्माण सम्भव नहीं है।

इस प्रकार इस पुस्तक में हमारी शताब्दी की प्रमुख रासायनिक घटनाओं और हमारे जीवन पर उनके प्रभाव की कहानी का संकलन है। यह कहानी तब पूरी होगी जब औषध एवं शरीरविज्ञान पर इस प्रकार के ग्रंथ का निर्माण हो जायगा, क्योंकि उसमें कुछ पुरस्कार ऐसे विषयों पर दिये गये हैं, जिनको रसायन में सम्मिलित किया जा सकता है। जनता के सम्मुख ऐसी कहानी रखने में विशेष अनुभव का सहारा लेना पड़ा है; इसको बताना तो कठिन है, क्योंकि इसका जीवन से सीधा सम्बन्ध होता है। परमाणु, क्लोरोफ़िल, विटामिन और खादें दोनों में ही आती हैं। जैसे-जैसे वैज्ञानिक

कार्य हमारे दिन प्रति दिन के जीवन में प्रवेश करता जायगा, वैसे-वैसे उन लोगों की संख्या में वृद्धि होती जायगी, जो यह जानना चाहते हैं कि रासायनिक ज्ञान में प्रगति किस प्रकार होती है और रसायनज्ञ अपना कार्य किस प्रकार पूर्ण करते हैं। यद्यपि इस पुस्तक में केवल कुछ महान् विचारों का ही समावेश है और इसमें बीसवीं शताब्दी के रासायनिक ज्ञान का पूर्ण क्रमबद्ध ज्ञान नहीं है, तथापि इसमें पिछली सफलताओं के प्रेरणात्मक वर्णन से पाठकों को अपने लक्ष्य की सिद्धि में सहायता मिलेगी।

वाशिंगटन, डी० सी० **एडुअर्ड फ़ार्बेर**

वसंत, १९५३

विषयसूची

१९०१

जैकोबस हनरीकस वैंट हॉफ़ (Jacobus Henricus Vant Hoff)

(१८५२-१९११)

"रासायनिक ऊष्मा-गतिकी एवं रसाकर्षण दाब के नियमों के आविष्कार के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

जैकोबस वैंट हॉफ़ का जन्म ३० अगस्त १८५२ को ऐम्सटर्डम में हुआ था। यद्यपि आपने रसायन पढ़ने का निश्चय किया, तथापि आपकी रुचि इसी विषय तक सीमित न थी; गणित, कविता और औषध-विज्ञान में भी आपकी विशेष रुचि थी। आपके अध्ययन का आरम्भ डेल्फ़्ट, हालैंड में हुआ और उसकी समाप्ति १८७४ में यूट्रेक्थ में हुई। इस बीच में आपने कुछ समय बॉन में बिताया। यहाँ प्रसिद्ध रसायनज्ञ केकुले (Kekule) से आपका थोड़ा परिचय हुआ। पेरिस में आदोल्फे वुर्त्स के संरक्षण में आपकी वैज्ञानिक विचारधारा की नींव पड़ी। यूट्रेक्थ से लौटने के बाद आपने ११ पृष्ठ की पुस्तिका लिखी जिसका शीर्षक था "जगह् (या देश space) में आजकल के प्रयुक्त आकारीय सूत्रों के विस्तार का प्रस्ताव एवं उससे संबंधित कार्बनिक यौगिकों के प्रकाश-घूर्णन (optical rotation) एवं रासायनिक संगठन (chemical constitution) के सम्बन्ध पर विचार।" इस "प्रस्ताव" का आपने ज्यामितीय प्रतीकों (geometric symbols) द्वारा परमाणुओं को स्पष्ट करने के प्राचीन विचारों से आरम्भ किया था और इन विचारों का केकुले के चतुः-संयोजक कार्बन परमाणु के विचार से सम्बन्ध स्थापित किया था। जे० विसलीसेनस (वुर्ज़ बुर्ग) ने वैंट हॉफ़ के सिद्धांत "जो पदार्थ प्रकाश-घूर्णन करते हैं, वे ऐसा अपने अणुओं के असम्मित आकार होने के कारण करते हैं" की उत्साहपूर्वक पुष्टि की। इस पर ऐम्सटर्डम विश्वविद्यालय ने रसायन के आचार्य पद को विभूषित करने के लिए आपको आमंत्रित किया।

बीस वर्षों (१८७७–१८९६) में अन्य संबंधों को स्थापित करके आपने विज्ञान की सेवा की। आपने ऊर्जा के भौतिक एवं रासायनिक विचारों में संबंध स्थापित किया। रसाकर्षण (Osmosis) के वनस्पति-विज्ञान एवं फिज़िओलोजी के विचार एवं घोलों में पदार्थ की रासायनिक दशा में भी आपने संबंध स्थापित किया। इस कार्य के लिए १९०१ में आपको नोबेल पुरस्कार मिला। यह नोबेल पुरस्कार-वितरण का प्रथम वर्ष था।

बीस वर्ष के अध्यापन कार्य से थककर, १८९६ में वैंट हॉफ ने प्रशा की विज्ञान-अकादमी में जाना स्वीकार किया। यहाँ आपने स्टास फर्ट (Stassfurt) की खानों में मिलने वाले लवणों पर अपना ध्यान जमाया। यह खान पोटासियम लवणों का सबसे बड़ा स्रोत थी। इन लवणों का खाद रूप में प्रयोग होता था।

अपने विद्यार्थी-जीवन में वैंट हॉफ़ प्रयोगों की अपेक्षा सिद्धांतों में अधिक रुचि रखते थे। बाद में आपने रासायनिक प्रगति के इन दोनों स्रोतों में संबंध स्थापित करना सीखा।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का विवरण[1]

"आजकल भौतिक रसायन ने जो कार्य किया या करने का वह दावा करता है उसका सम्बन्ध किसी नवीन उपकरण के आविष्कार या परीक्षण की किसी नवीन विधि के आविष्कार से नहीं है। भौतिक रसायन का आधुनिकतम विकास उन बड़े सिद्धांतों के स्थापन से हुआ है जो विज्ञान के संपूर्ण आधार को मज़बूत बनाते हैं और भविष्य में रसायन के बड़े भाग के विकास में सहायक होंगे।

"आधुनिक भौतिक रसायन की नींव मुख्यतया दो सिद्धांतों पर आधारित है— अवोगाड्रो एवं ऊष्मा-गतिकी (Thermodynamics) के नियमों का विस्तार। अवोगाड्रो के नियम का विस्तार इस प्रकार हुआ है—एक दिये हुए पदार्थ का रसाकर्षण दाब, मान में गैसीय दाब के बराबर होता है, बशर्ते कि ताप और सांद्रण अर्थात् इकाई आयतन का परिमाण (quantity) बराबर हो। इससे स्पष्ट दिखाई देता है कि दो पदार्थों के दो घोलों के एक ही आयतनों में समान परिस्थितियों में अणुओं की संख्या बराबर होती है और यदि उनका ताप और आयतन एक है तो उनका रसाकर्षण दाब भी

१. जे० एच० वैंट हॉफ़ की पुस्तक "Physical Chemistry in the Service of the Sciences" से। (शिकागो; शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस, १९०३) २० से २४ जून, १९०१ को शिकागो विश्वविद्यालय में दिये गये भाषणों से।

एक ही होता है। केवल इतना ही नहीं, प्रत्युत जब अणु-भार ज्ञात होता है तो इस दाब की गैसीय दाब की भाँति आसानी से गणना की जा सकती है।

"यह नियम मौलिक एवं विस्तृत दोनों रूपों में बिलकुल यथार्थता (strict accuracy) का दावा करता है, जबकि तनुता (dilution) काफ़ी अधिक हो, अर्थात् केवल उन दशाओं में जिन तक व्यवहार में नहीं पहुँचा जा सकता। तब भी उन तनुओं पर जिनपर विलयनों का दाब वायुमंडलीय दाब के बराबर होता है, (अर्थात् गैसों में १ वायुमंडल दाब पर और विलयनों में लगभग दशांश नार्मल (N/10 पर)[१] इस नियम का व्यतिक्रम (deviation) नहीं के बराबर होता है।

"पहले सिद्धांत, जिसको विलयन का सिद्धांत कहा जाता है, के लिए इतना काफी है। दूसरे का संबंध उष्मा-गतिकी की उपयोगिता से है—विशेष रूप से कार्य और ऊर्जा की अविनाशिता और कार्नो-क्लासियस सिद्धांत की रासायनिक प्रश्नों के हल करने की उपयोगिता से।

"यह क्रिया (operation) के उत्क्रमणीय चक्रों (reversible cycles) में लगाया जा सकता है या इसका उपयोग गणित के फलनों (functions) एवं भौतिक दुर्बोध विचारों के बनाने में होता है, जैसा कि गिब्स, प्लांक और ड्यूहेम महोदय ने किया है। मेरा विश्वास है कि रसायनज्ञ के लिए इसका पहला रूप, जिसमें उत्क्रमणीय चक्र काम में आते हैं, विशेष रूप से उपयोगी है। संक्षिप्त रूप में एक चक्र में उन सब परिवर्त्तनों की श्रेणी (series) होती है जिनमें मौलिक दशा पर फिर पहुँच जाया जाता है। उदाहरणतया—बर्फ का वाष्प में परिवर्त्तन, वाष्प का जल में परिवर्त्तन और फिर जल का बर्फ में परिवर्त्तन।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

वेंट हॉफ़ के कार्य से एक शताब्दी के उन प्रयासों का अंत होता है, जिनके द्वारा रासायनिक पदार्थों की बंधुता, प्रेम एवं घृणा, के वैज्ञानिक अर्थ को समझने की चेष्टा की गयी थी। आपने प्रतिक्रिया (reaction) के ताप को, रासायनिक बंधुता (affinity) को और रासायनिक परिवर्त्तन के ताप को गणित की सहायता से मिलाया है।

गणित रूप में सिद्धांत सरल हो जाता है और उसका उपयोग सार्वभौमिक हो

१. जिस विलयन के एक लिटर में विलयशील (Solute) का भार तुल्यांक भार का दसवां होता है—उदाहरणार्थ, ४.६ ग्राम इथाइल अल्कोहल प्रत्येक लिटर में।

जाता है, किन्तु ये दोनों बातें रासायनिक पदार्थों की वास्तविकता और उनके व्यवहार के लिए आदर्श प्रतीक को मान कर होती हैं। रासायनिक परिवर्त्तन का पूर्ण रूप से उत्क्रमणीय चक्र, जिसके लिए वैंट हॉफ़ ने हंस को काटने और पकाने का एक बार उदाहरण दिया था, वैंट हॉफ़ के आदर्श विचारों का एक यथार्थ रूप है। आपको भली-भाँति मालूम था कि आदर्श दशा, जिससे कि गणित के नियमों का निकालना संभव होता है, यथार्थ रूप में व्यवहार में नहीं पायी जाती, तथापि आपने उसके आश्चर्यान्वित प्रभावों को दर्शाया। वाष्प, दाब और विलयनों के सांद्रण के संबंध को भी आपने स्थापित किया। घुलित पदार्थों द्वारा विलयन के क्वथनांक में वृद्धि और हिमांक में कमी की गणना की जा सकती है। ताप अथवा दाब को बदलने पर रासायनिक प्रतिक्रियाओं में जो परिवर्त्तन होता है, उसको पहले से ही देखा जा सकता है। संतुलन (equilibrium) शब्द यौगिकों और उनके अवयवों के नियंत्रित की जा सकने वाली परिस्थितियों में संबंध का एक प्रतीक है। ये संबंध उस साधारण ज्ञान के आधार हैं जिनसे हमें ज्ञात होता है कि विशिष्ट इच्छित फलों की प्राप्ति के लिए हमें क्या करना चाहिए। इस प्रकार आदर्श सिद्धांत की उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है। वैंट हॉफ़ ने इसकी व्यावहारिक उपयोगिता को अंतिम वर्षों में अकार्बनिक लवणों पर अपने कार्य से प्रदर्शित किया।

१६०२

एमिल फ़िशर (Emil Fischer)

(१८५२-१६१६)

"शर्कराओं के समूहों और प्यूरीन के संश्लेषणों के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

एमिल फ़िशर अपनी कक्षा में सर्वप्रथम होकर बॉन के जिम्नेसियम से १८६९ में स्नातक हुए। आप अपने पिता के खूब चलते और बढ़ते हुए व्यापार में सम्मिलित हो सकते थे, तथापि आपने भौतिकी एवं गणित पढ़ने की इच्छा प्रकट की। बीमारी (पेट की शिकायतों) के कारण, आप १८७१ के ईस्टर तक बॉन विश्वविद्यालय में प्रवेश न कर सके। वहाँ की पढ़ाई की दशाओं से असंतुष्ट होकर आप स्ट्रासबुर्ग चले गये, जहाँ आपके अध्यापक रसायन में ऐडोल्फ़ फ़ान बाएर, खनिज-शास्त्र में पाल ग्राथ और भौतिकी में एडोल्फ़ कुन्ड्ट थे।

आपको डाक्टर की उपाधि १८७४ में मिली। इसके १ वर्ष बाद आपने एक नवीन कार्बनिक यौगिक संबंधी अपने आविष्कार एवं अन्वेषण प्रकाशित किये। यह यौगिक भविष्य में शर्कराओं पर शोध-कार्य के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। आपने उसका नाम फ़िनाइल हाइड्रेज़ीन रखा। हाइड्रेज़ीन एक ऐसा अकार्बनिक यौगिक था जिसके दो नाइट्रोजन परमाणु एक दूसरे से जुड़े हुए थे और प्रत्येक में दो हाइड्रोजन परमाणु थे। नये यौगिक में एक हाइड्रोजन परमाणु के स्थान पर फ़िनाइल समूह था। बेंज़ोल में से जब एक हाइड्रोजन परमाणु हटा दिया जाता है तो उसे फ़िनाइल-समूह कहते हैं। आपने ज्ञात किया कि फिनाइल हाइड्रेज़ीन साधारण शर्कराओं—जैसे ग्लूकोज़ (द्राक्षा-शर्करा) या फल-शर्करा (फ्रुक्टोज़) से संयोग करती है और इस प्रकार शर्कराओं के बने हुए नये यौगिक सरलता से शुद्ध किये और पहचाने जा सकते हैं।

म्यूनिख में १८७५ में बाएर के साथ होकर आप अपना अन्वेषण कार्य करते रहे; १८८२ तक एरलांगेन में, उसके ३ वर्ष बाद तक वुर्जबुर्ग में और अंततोगत्वा १८९२

तक बर्लिन में आपका शोध-कार्य चलता रहा। कार्य की रूपरेखा सदैव सावधानी से तैयार की जाती थी, किन्तु अप्रत्याशित परिणाम जहाँ तक ले जाते थे, वहाँ तक आप कार्य करते थे। इस प्रायोगिक कला का आपने यूरिक अम्ल (Uric Acid) के अन्वेषण के लिए सफलतापूर्वक उपयोग किया। यूरिक अम्ल सर्पों के मूत्र में साधारण रूप से पाया जाता है और मनुष्यों में कुछ प्रकार के वात रोगों का कारण होता है। यूरिक अम्ल से बाएर महोदय को विशेष रुचि थी; फ़िशर ने बाएर के शोध-कार्य का विस्तार किया और ऐसा करने में आपने केफ़ीन (caffein) और थियोब्रोमीन (theobromine) की रासायनिक रचना (structure) को स्पष्ट किया। ये पदार्थ मूल रूप से एक ऐसे पदार्थ से निकलते हैं जिसका नाम आपने प्यूरीन (purine) रखा। इसके अर्थ में शुद्ध यूरिक अम्ल (शुद्ध यूरिकम–purum uricum) हैं।

इस अन्वेषण की समाप्ति १८९९ में हुई। जब फिशर महोदय को १९०२ में शर्करा और प्यूरीन पर अन्वेषण के लिए नोबेल पुरस्कार मिला, तब तक आप प्रोटीन के रसायन के क्रमबद्ध ज्ञान के लिए कार्य आरम्भ कर चुके थे। पुनः, आपने पूर्व मनन के साथ अप्रत्याशित फलों सम्बन्धी होशियारी के संयोग से, विश्लेषण की नवीन एवं अधिक अच्छी विधियों का विकास किया। इसमें आपको विभिन्न देशों के अनेक विद्यार्थियों और सहकारियों से भी सहायता मिली। जब कुछ प्रोटीन पदार्थों के मूल अवयवों का पता लग गया और उनकी रासायनिक रचना स्पष्ट हो गयी, तब निश्चित योजना के अनुसार उनका संश्लेषण आरंभ हुआ। इस प्रकार आपने प्रोटीन-जैसे पदार्थों के बड़े-बड़े अणुओं का भली प्रकार से नियंत्रित क्रमों (steps) में निर्माण किया। आपने १९०६ में एक भाषण में अपने कार्य का संक्षेप प्रस्तुत किया। इस भाषण का वर्णन बढ़ा-चढ़ाकर किया गया और कहा गया कि जीवन पहेली की समस्या हल कर ली गयी है। फ़िशर ने इन रिपोर्टों पर खेद प्रकट किया।

टैनिन (Tannins) पर फ़िशर का कार्य थोड़ा ही समाप्त हुआ था जबकि प्रथम विश्वयुद्ध आरंभ हुआ। जनसाधारण में प्रचलित मान्यताओं के विरुद्ध रासायनिक एवं खाद्य-पदार्थों के उत्पादन का संगठन प्रथम विश्वयुद्ध के समय जर्मनी में नहीं हुआ था, इस प्रकार के संगठन के निर्माण के लिए एमिल फ़िशर पर जो उस समय का माना हुआ जर्मनी के रसायन का नेता था, दोष लगाया गया।

आपके तीन पुत्रों में से दो की मृत्यु हो गयी—एक की युद्ध में और दूसरे की युद्ध पश्चात् जर्मनी की परिस्थितियों में। इन दोनों पुत्रों की मृत्यु के विषाद से १९१९ में एमिल फ़िशर की पुरानी बीमारी से मृत्यु हो गयी।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का विवरण[1]

फ़िशर के नोबेल-पुरस्कार-भाषण में से निम्नलिखित अवतरण का चयन इस कारण किया गया है कि इससे आपके शर्कराओं और प्रोटीन के शोध-कार्यों का संबंध स्पष्ट होता है। इन दोनों का मूल संबंध जीवन में आपकी विशेष रुचि है। ग्लूकोनिक अम्ल, (इसका प्रयोगशाला में उत्पादन कार्बन के छठे परमाणु के आक्सीकरण से होता है, आक्सीकरण से ऐलकोहल समूह अम्लीय समूह में बदल जाता है) पशुओं में विपचन (metabolism) के फलस्वरूप पाया जाता है। पौधों और पशुओं में विशिष्ट रासायनिक यंत्र (tool) होते हैं जिनके द्वारा वे शर्कराओं और उनसे संबंधित यौगिकों, जैसे ग्लूकोसाइड, का निर्माण करते हैं। ये यंत्र ख़मीर कहलाते हैं। उनका स्थायित्व बहुत कम होता है और ताप-परिवर्त्तन से उन पर शीघ्र प्रभाव होता है। इनका विनाश कुछ रासायनिक प्रभावों से, जो विष का सा काम करते हैं, सरलता से किया जा सकता है, तथापि वे अपने भार से हज़ार गुने भार तक के कायिकी के विशिष्ट पदार्थों को अपनी परिस्थितियों में बनाने में बड़े शक्तिशाली होते हैं। एमिल फिशर ने इस असाधारण सक्रियता को शर्करा अथवा प्रोटीन के अणुओं में परमाणुओं की जटिल व्यवस्था से संबंधित करने की चेष्टा की।

सबसे अधिक पायी जाने वाली शर्कराओं में ६ कार्बन परमाणुओं की श्रृंखला (chain) होती है; प्रत्येक परमाणु एक आक्सीजन परमाणु से जुड़ा होता है। ५ परमाणुओं में आक्सीजन के साथ-साथ हाइड्रोजन परमाणु भी होता है और ये दोनों परमाणु ऐलकोहल-समूह बनाते हैं। आक्सीजन का एक परमाणु विशेष रूप से सक्रिय होता है और यह फ़ार्मेल्डीहाइड (formaldehyde) समूह में होता है। जिस कार्बन परमाणु पर यह समूह होता है उसकी संख्या साधारणतया एक दी जाती है। दूसरे कार्बन परमाणुओं से जुड़े हुए ऐलकोहल-समूह,अन्य ऐलकोहलों की भाँति, अम्ल से प्रतिक्रिया करते हैं और इस प्रकार एस्टर बनाते हैं। फ़िशर ने ज्ञात किया कि चमड़े के कमाने के काम में आने वाले कुछ पदार्थों में शर्करा और पित्तीय अम्लों से मिलकर बने एस्टर पाये जाते हैं।

"इस क्षेत्र में संश्लेषण की दिशा नयी समस्याओं की ओर है। द्राक्षाशर्करा से बने सादे यौगिकों में से शरीर विज्ञानशास्त्री को ग्लूकोनिक अम्ल भली-भाँति ज्ञात है, क्योंकि पशु प्राणी इस अम्ल को कार्बोलिक अम्ल, क्लोराल और टर्पेन्टाइन-जैसे विषों

1. Les Prix Nobel en 1902 से अनूदित।

को मारने एवं निर्दोष बनाने के काम में लाता है। इसकी रचना और द्राक्षाशर्करा (ग्लूकोज़) से इसका संबंध और शरीर में इसके उत्पादन की संभावित व्याख्या इस संश्लेषण विधि से स्पष्ट हुई है। ग्लूकोजामीन के साथ बड़ी कठिनाइयाँ आयीं। यह नाइट्रोजन से बना एक अजीब पदार्थ है और सबसे पहले इसको झींगा मछली से प्राप्त किया गया। किन्तु अब हमको ज्ञात है कि पशु-जगत में यह प्रचुरता से व्याप्त है। इसके संश्लेषण से, जिसमें मैं कुछ सप्ताह पूर्व ही सफल हुआ हूँ, स्पष्ट है कि ग्लूकोज़ामीन, द्राक्ष-शर्करा और आल्फ़ा ऐमीनो अम्ल के बीच का पदार्थ है। यह इस प्रकार, कार्बो-हाइड्रेट और प्रोटीन में बहुत काल से खोजे गये संबंध को स्थापित करता है।

'ग्लूकोसाइडों से प्राप्त परीक्षण-फल रोचक हैं। ये पदार्थ वनस्पति-जगत् में प्रचुरता से पाये जाते हैं और इनको शर्कराओं और बिलकुल दूसरे प्रकार के यौगिकों से मिलकर बने हुए समझना चाहिए। इसके उदाहरण हैं—एमिग्डलीन जो कड़ुवे बादामों में पाया जाता है, और सैलिसिन जो पुराने औषध-विज्ञान में बुख़ार की दवा मानी जाती थी।

"ख़मीरका, जिसको आजकल ऐंज़ाइम (enzyme) कहा जाता है, जीव-प्राणी के रासायनिक यंत्रों में बड़ा विशेष स्थान है। यह कहा जा सकता है कि जीव-कोशिका में जो भी रासायनिक परिवर्तन होते हैं, वे मुख्यतया एंज़ाइम की सहायता से ही होते हैं। अप्राकृत ग्लूकोसाइडों के परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि एंज़ाइम का प्रभाव मुख्यतया उससे प्रभावित अणुओं के ज्यामितीय आकारों के कारण होता है और ये दोनों एक दूसरे से इस प्रकार फिट होने चाहिए जैसे ताला और कुंजी। फलतः प्राणी इनकी सहायता से बड़े विशिष्ट परिवर्तन कर सकता है—ऐसे परिवर्तन, जो साधारण रासायनिक पदार्थों से नहीं हो सकते।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

शर्कराओं की शोध के लिए जिस रासायनिक यंत्र का आविष्कार एमिल फ़िशर ने ७५ वर्ष पूर्व किया था, उसका आज कल भी प्रयोग होता है। उसमें कई परिवर्त्तन कर दिये गये हैं और उसकी कई अन्य उपयोगिताएँ भी ज्ञात हो गयी हैं। ग्लूक्रोनिक अम्ल का जिसमें आपकी विशेष रुचि थी, महत्त्व आज कल और बढ़ गया है, क्योंकि औषध रूप में भी इसकी उपयोगिता देखी गयी है।

राइबोज़ (Roibose) एक ऐसा कार्बोहाइड्रेट है (जिसका अन्वेषण फ़िशर महोदय ने केवल संश्लेषण के दृष्टिकोण से ही किया था) जो शर्करा के अणु में परमाणुओं

की विशिष्ट रचना (configuration) का उदाहरण है। रक्त और मांस-पेशियों में पाये जाने वाले सक्रिय पदार्थों में इसके प्रमुख स्थान पर प्रकाश डाला गया है। उसमें यह ऐडीनीन से, जो प्यूरीन है, संयुक्त अवस्था में होता है। लीबिग के प्रसिद्ध गोश्त के सार (extract) में केवल यही एक उपयोगी पदार्थ होता है। यह सार सांद्रित शोरवा होता है जिसका पौष्टिक भोजनों में बड़ा महत्त्व माना जाता है।

फ़िशर महोदय ने वेरोनाल (१९०४) का विश्लेषण करके अपने वैज्ञानिक कार्य से स्वयं व्यावहारिक फल निकाले। जोज़ेफ फ़ान मेरिंग के साथ आपने अस्वाभाविक निद्रा लाने के लिए इसका उपयोग आरंभ किया। आपने जिन औषधियों का पेटेंट कराया था उनमें सारे बारबिट्यूरेट (barbiturates) शामिल हैं।

सादी शर्कराओं के ऐल्डीहाइड-समूह को उसके आक्सीजन परमाणु में हाइड्रोजन परमाणु को जोड़ कर अवकृत करके ऐलकोहल-समूह बनाया जाता है। इस प्रतिक्रिया से शर्कराओं की सूक्ष्म रचना को स्पष्ट करने में बड़ी सहायता मिली। इस प्रतिक्रिया से औद्योगिक रूप में शर्कराओं से ऐलकोहल व्यापारिक मात्रा में प्राप्त किये जाते हैं। इन ऐलकोहलों से अम्ल के कुछ यौगिक-एस्टरोंका नमी लाने वाले पदार्थों (wetting agents) और परिमार्जकों (detergents) के रूप में प्रयोग होता है।

फ़िशर महोदय का शर्कराओं और प्यूरीन पर कुछ कार्य प्रोटीन से काफ़ी संबंधित है। इसकी चर्चा भी करना आवश्यक है कि एमीनो-अम्लों का, जिनको फ़िशर ने प्रोटीन पदार्थों का मौलिक अवयव पाया था, उत्पादन आज कल होता है और विशेष पौष्टिक पदार्थों के रूप में इनका उपयोग होता है।

१९०३

स्वान्ते अगस्त एर्‌हीनियस (Svante August Arrhenius)

(१८५९-१९२७)

"वैद्युत विश्लेषिक विघटन के सिद्धांत के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

मेलार झील (स्वीडेन) के समीप विक में स्वान्ते एर्‌हीनियस का जन्म हुआ था। आपने तीन वर्ष की आयु से पढ़ना सीखा और स्कूल के आरंभिक वर्षों में ही भौतिकी और गणित में आपकी विशेष रुचि हो गयी। यद्यपि आपने अपने अध्ययन का आरंभ उप्पसल विश्वविद्यालय में किया था, तथापि आपका वास्तविक शोध-कार्य स्टाकहाम में हुआ। १८८४ में उप्पसल में लौटने पर आपको डाक्टर की उपाधि मिली।

उस समय भौतिकीज्ञ, फ्रीडरिश क्होलराउश ने वुर्ज़बुर्ग में विलयनों की विद्युत् चालकता नापने के लिए एक सरल विधि का विकास किया था। धातु के तार की विद्युत् चालकता सरलता से नापी जा सकती है। जब एक ही धातु के दो टुकड़ों को शुद्ध जल में डुबोया जाता है तो एक टुकड़े से दूसरे में विद्युत् धारा का प्रवाह नहीं होता; इस दशा में शुद्ध जल पृथक्कारी है। जल में लवण अथवा अम्ल को मिलाने से उसमें चालकता आ जाती है। पहले यह माना जाता था कि विद्युत्-धारा विलयन में घुलित पदार्थ के अणुओं से बँध जाती है; अणु इस प्रकार धन एवं ऋण विद्युत् युक्त अणुओं में बँट जाते हैं और ये अणु विद्युत्-धारा को ले जाते हैं। फ़ैरडे ने विद्युत् ले जाने वाले इन अणुओं को 'आयन' का नाम दिया था और जो पदार्थ विद्युत्-धारा के प्रवाह के लिए आयन में टूट जाते थे उनको विद्युतीय (electrolytes) की संज्ञा दी थी।

जब एर्‌हीनियस ने विद्युतीय की तनुता को परिवर्तित करके चालकता में परिवर्तन को नापा तो आपने निष्कर्ष निकाला कि विद्युत् को ले जाने के लिए विद्युतीय का एक भाग सक्रिय होता है और दूसरा अक्रिय। जैसे-जैसे तनुता में वृद्धि होती जाती है सक्रिय भाग बढ़ता जाता है। बहुत अधिक तनुता (जिसको अनन्त, infinite,

तनुता कहते हैं) पर सारा विद्युतीय सक्रिय भागों में टूट अथवा विघटित हो जाता है। यह विघटित दशा विलयन में बिना विद्युत् प्रवाह के भी होती है। १८८४ में लिखे गये एर्‌हीनियस के प्रबन्ध (dissertation) से विल्हेल्म आस्ट्वल्ड (देखिए पृ० ३७–४१) इतना प्रभावित हुआ कि वह एर्‌हीनियस से इन परीक्षण-फलों के अर्थ एवं उनकी उपयोगिता पर वाद-विवाद करने के लिए उप्पसल आया। इस प्रकार स्वीडेन के शिक्षा-क्षेत्रों में उनके देशवासी के शोध-कार्य का महत्त्व स्पष्ट हुआ; इससे एर्‌ही-नियस को अपने शोध-कार्य में बड़ी सुविधा मिली। आप भी यात्रा करके रीगा में आस्ट्वल्ड से, वुर्ज़बुर्ग में क्होलराउश से, ग्राज़ में बोल्ट्ज़मान से और एम्सटर्डम में वैंट हाफ़ से मिले। इन्हीं वर्षों में वैद्युत विश्लेषक सिद्धांत की रूपरेखा निश्चित हुई। यह रूप-रेखा विस्तृत कार्य का आधार बन सकती थी, किन्तु एर्‌हीनियस, जो अब (१८९१ में) स्टाकहाम में आचार्य बन चुके थे, की विशेष रुचि रासायनिक प्रतिक्रियाओं के आधारभूत सिद्धांतों के अधिकतम उपयोग में थी, जीवित प्राणियों में विषों (टाक्सिन) की प्रक्रिया की व्याख्या ई० ए० फ़ान बेरिंग और पॉल एरलिश कर चुके थे; उन्होंने विषों की प्रक्रिया को मारने वाले (टाक्सिन-विरोधी) पदार्थों को भी बताया था। एर्‌हीनियस ने प्राणिसंबंधी परिवर्तनों के साधारण, भौतिक एवं रासायनिक नियमों को खोजने का प्रयास किया। आपने ज्ञात किया कि ये प्रतिक्रियाएँ भी अन्य रासायनिक प्रतिक्रियाओं के नियमों का पालन करती हैं और मानव शरीर में होने वाली तथा परखनली में होने वाली प्रतिक्रियाओं में कोई विशेष अंतर नहीं होता। यह एक ऐसा विषय था जो एर्‌हीनियस की संपूर्ण शक्तियों को खपा सकता था, किन्तु एर्‌हीनियस का कौतूहल यहीं तक सीमित न था। आपने अंतरिक्ष भौतिकी का एक सिद्धांत निकाला। इसमें आपने बताया कि प्रकाश-विकिरण के दाब से कण, यहाँ तक कि जीवित प्राणियों के सूक्ष्मजन्तु (germs) भी, देश (space) में भेजे जा सकते हैं और इस प्रकार यह दाब सारे विश्व का संपर्क स्थापित करता है।

१९०५ में एर्‌हीनियस भौतिक रसायन के नोबेल इंस्टीट्यूट (Institute) के डायरेक्टर हुए। यह आप-जैसे सर्वतोमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति के लिए उपयुक्त स्थान था।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का विवरण[1]

"चालकता अणुओं ($ZnSO_4$) के आयनों (Zn और SO_4) की उस गति पर निर्भर होती है जिससे वे द्रव में विद्युत्-बल अथवा स्थितिज अंतर (potential

१. Proceedings of the Royal Institution of Great Britain, Vol.

difference) द्वारा ले जाये जाते हैं। यदि यह स्थितिज अंतर नियत रहता है तो गति केवल उस घर्षण पर आधारित होती है जो आयनों की उसके चारों ओर घिरे हुए अणुओं के साथ होती है। बहुत अधिक तनुता पर ये अणु केवल जल के अणु होते हैं। अतः यह आशा की जा सकती है कि इन परिस्थितियों में चालकता नियत रहेगी और तनुता का उस पर कोई प्रभाव नहीं होगा, यदि यह मान लिया जाय कि $ZnSO_4$ के सारे अणु विद्युत्-धारा को ले जाने में योग देते हैं। किन्तु प्रयोग से हमें ज्ञात होता है कि आणव चालकता तनुता के साथ बढ़ती जाती है। तनुता बहुत अधिक ($ZnSO_4$ के एक अणु के साथ १००० या इससे भी अधिक जल के अणु के साथ) होने पर भी यह बढ़ती जाती है। इससे यह अनुमान (hypothesis) बनता है कि $ZnSO_4$ के सारे अणु नहीं, किन्तु उनका एक भाग विद्युत् को ले जाने में योग देता है। यह भाग उसी अनुपात में बढ़ता है जिस अनुपात में आणव चालकता (k)। इसका सीमांत मान (Limiting value k^∞) अनन्त तनुता पर होता है और यह उस सीमा से मिलता है जिस पर सब अणु विद्युत् को ले जाने में योग देते हैं। विद्युत् ले जाने वाले अणुओं को मैंने सक्रिय भाग कहा है। स्पष्ट रूप से इसकी गणना ($k : k^\infty$) के भागफल से की जा सकती है।

"सक्रिय अणुओं के विचार का सबसे अधिक महत्त्व निराकरण ऊष्मा की व्याख्या से स्पष्ट होता है। यह वैद्युतविश्लेषिक सिद्धांत द्वारा बड़ी सरलता से समझ में आ जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार तीव्र अम्ल एवं तीव्र भस्म, तथा तीव्र लवण भी बहुत अधिक तनुता पर (लगभग) पूर्ण रूप से आयनों में विघटित हो जाते हैं--उदाहरणतया HCl, H^+ और $\bar{C}l$ में; NaOH, Na^+ और $\bar{O}H^-$ में; NaCl, Na^+ और $\bar{C}l$ में। किन्तु जल (प्रायः) बिलकुल विघटित नहीं होता। इस प्रकार तीव्र अम्ल, उदाहरणतया HCl के एवं तीव्र भस्म NaOH के अधिक तनु विलयनों को मिलाने की प्रतिक्रिया को इस प्रकार लिखा जा सकता है—

$$(\overset{+}{H}+\bar{C}l)+(\overset{+}{N}a+\bar{O}H)=(\overset{+}{N}a+\bar{C}l)+HOH$$

या $$\overset{+}{H}+\bar{C}H=HOH$$
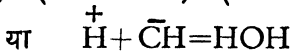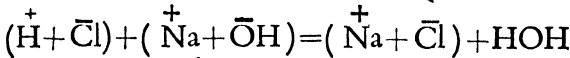
XVII (1904) में पृ३ ५५३ और बाद के पृष्ठों पर छपे एर्हीनियम के नोबेल पुरस्कार स्वीकृति पर दिये गये भाषण से। यह आपकी ही भाषा में दिया गया है। आपने शायद सल्फेट $(ZnSO)_4$ हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (HCL) और सोडियम हाइ-ड्राक्साइड (NaOH) का उदाहरण दिया है। पदार्थों के परमाणुओं पर + अथवा — का चिह्न लगा कर आयन को व्यक्त किया गया है।

"पूरी प्रतिक्रिया $\overset{+}{H}$ और $\bar{O}H$ आयनों के संयोग से जल के बनने के तुल्य है। स्पष्ट रूप से, तीव्र अम्ल अथवा तीव्र भस्म चाहे जो भी हो, यह प्रतिक्रिया एक ही रहती है। फलतः तीव्र अम्लों और तीव्र भस्मों के तुल्य परिमाण (Quantity) के लिए इस प्रकार की प्रतिक्रिया की उष्मा सदैव एक होनी चाहिए। वस्तुतः यह सब दशाओं में १३,६०० तापांकक (कैलरी) पायी गयी है। ताप-रसायन में आविष्कृत यह उष्मा-समता अपना बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

"यह पूछा गया कि विद्युतीय का सक्रिय भाग अक्रिय भाग से किस प्रकार भिन्न है। इस प्रश्न का उत्तर मैं १८८७ में दे चुका हूँ।

"लवण के सक्रिय अणु आयनों में टूट जाते हैं। वे पूर्णतया स्वतंत्र होते हैं और विलयनों में दूसरे अणुओं की भाँति आचरण करते हैं।

"जल जिसको दुर्बल अम्ल अथवा भस्म समझना चाहिए एक महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। अपने वैद्युतविश्लेषिक विघटन से यह दुर्बल अम्लों एवं भस्मों का जलविश्लेषण करता है।

कायिकी-रसायन के लिए यह (Sjogvist) प्रश्न बहुत बड़े महत्त्व का है, जैसा कि स्जोगविस्ट के प्रायोगिक फलों से पुष्ट (confirm) हुआ है। ज्वालामुखी घटनाओं की व्याख्या के लिए भी जल और सिलिसिक अम्ल के विभिन्न तापों पर साथ आने की उपयोगिता स्पष्ट हुई है।"

सिद्धान्त और व्यवहार पर प्रभाव

आरम्भ में एर्‌हीनियस को अपने सिद्धांत-प्रतिपादन के लिए बड़े विरोध का सामना करना पड़ा। बहस में कहा गया कि सोडियम तो जल को तेज़ी से विच्छेदित कर देता है और क्लोरीन की बड़ी भेदनशील (penctrating) गंध होती है। ये दोनों तत्त्व शांत अथवा गंधहीन विलयन में कैसे हो सकते हैं? इस प्रश्न का उत्तर विद्युत् चार्ज से संबंधित था। सोडियम नहीं, अपितु सोडियम के धन विद्युत्-युक्त परमाणु; क्लोरीन नहीं, अपितु क्लोरीन के ऋण विद्युत्-युक्त परमाणु सोडियम क्लोराइड के इन विलयनों में पाये जाते थे। एक परमाणु के इस प्रकार दो भागों में टूट जाने से इस बात की भी व्याख्या हो जाती थी—संयुक्त अवस्था से रसाकर्षक दाब की गणना से दाब का जो मान आता था उसकी अपेक्षा वास्तविक दाब बहुत अधिक होता था और तनुता की वृद्धि के साथ-साथ दाब के परिवर्त्तन से विघटन के परिमाण का पता चलता था। सारे तीव्र अम्लों के तनु घोलों की रासायनिक सक्रियता आस्ट्वल्ड के प्रयोगों में एक

पायी गयी; नये सिद्धांत ने इसकी भी व्याख्या की। हाइड्रोजन आयन रासायनिक प्रतिक्रियाओं में विद्युत् चालकता की भाँति सक्रिय भाग थे। जब इलेक्ट्रान-विद्युत्चार्ज की इकाई के आविष्कार की घोषणा की गयी तो एर्हीनियस का सिद्धांत और पुष्ट हो गया। सोडियम का धन आयन अब सोडियम का एक परमाणु हो गया था, जिसने क्लोरीन परमाणु को अपना एक इलेक्ट्रान दे दिया था; क्लोरीन परमाणु, फ़लतः, ऋण विद्युत्-युक्त हो जाता था।

अनेक प्रकार के तथ्यों—प्रतिक्रिया की ऊष्मा, रंग, रसाकर्षक दाब और रासायनिक बंधुता—की इस प्रकार एक साथ व्याख्या हुई। इस आदर्श सिद्धांत के सौंदर्य से उत्साहित होकर इस सिद्धांत के आविष्कारक और उसके साथी बहुत दूर तक चले गये। विद्युतीय (electrolyte) के स्वभाव का प्रभाव सूक्ष्म प्रयोगों में भी माना जाने लगा। आदर्श अवस्था को बहुत अधिक तनु घोलों पर तो मानना चाहिए, किन्तु अधिक सांद्र घोलों के लिए घटनाओं की आवश्यकता से अधिक सरल व्याख्या करता था। विद्युतीय के वास्तविक आचरण के लिए यह पहला सन्निकटन सिद्ध हुआ। तथापि इसका आधार, जिसके अनुसार अम्ल, भस्म और लवण एक दूसरे से विरुद्ध चार्ज में विघटित होते थे, उपयोगी बना रहा। इलेक्ट्रान का आदान-प्रदान रासायनिक बंधकता (bonding) की आधारभूत व्याख्या बन गया।

१९०४

विलियम रेमजे (William Ramsay)

(१८५२-१९१६)

"वायु में निष्क्रिय तत्त्वों के आविष्कार एवं आवर्त-सारणी में उनके स्थान को व्यक्त करने के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

सर विलियम रैमज़े ने रसायन में अपनी रुचि के आरंभ का इस प्रकार वर्णन किया है—"पिता की ओर से मेरे बाबा, विलियम रैमज़े, ग्लासगो में रासायनिक पदार्थों के उत्पादक थे। उनके परिवार में बहुत दिनों से स्काटलैंड के पूर्व में एक छोटे देहाती नगर हैडिंग्टन में रंगसाज़ी का काम होता आया था। मेरा विचार है कि मेरे बाबा ने सबसे पहली बार लकड़ी के आसवन से अग्निजन (pyroligneous) अम्ल प्राप्त किया; चूने द्वारा निराकरण करके उन्होंने चूने का एसीटेट टार रूप में प्राप्त किया और इसका कासीस-तेल (गंधकाम्ल) से पुनः आसवन करके अम्ल को शुद्ध किया। बाइक्रोम के उत्पादन में भी वे सर्वप्रथम थे और बहुत वर्षों तक अपने साझीदारों—मेसर्स टर्नबुल—के साथ टर्नबुल्स ब्लू (Turnbullsblue) भी बनाते रहे।

"मेरे नाना एक डाक्टर थे जो एडिनबरा में प्रैक्टिस करते थे। आपने पाठ्यक्रम की कई पुस्तकें लिखी थीं। उनमें से एक का शीर्षक था ("Colloquium Chymica"। फलतः रसायन में रुचि मैंने अपने परिवार के दोनों ओर से प्राप्त की।"

रैमज़े ने ट्वीबिन्गेन से १८७२ में डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। यह उपाधि आपने रुडोल्फ़ फ़िटिग (१८३५—१९१०) की संरक्षता में आर्थो टालुइक अम्ल और उसके यौगिकों पर कार्य करके प्राप्त की थी। दस वर्ष से अधिक तक, ग्लासगो में लौटने के पश्चात् और ब्रिस्टल में आचार्य होने (१८८०) के पश्चात् तक अकार्बनिक रसद्रवों (Chemicals) पर आप कार्य करते रहे। भौतिक रसायन के नये आविष्कारों की ओर आप आकर्षित हुए। यूनिवर्सिटी कालेज, लंडन, में अकार्बनिक रसायन

के आचार्य पद को विभूषित करने (१८८७) के बाद आपकी इसमें विशेष रुचि हो गयी। जब लार्ड रैले ने वायु एवं अमोनिया से प्राप्त नाइट्रोजन के आपेक्षिक गुरुत्व के भेद का वर्णन किया तो आप उसका उत्तर देने के लिए तैयार थे"...१८४९ में कैवेंडिश सोसायटी द्वारा छापी गयी कैवेंडिश की जीवनी की जो प्रति मेरे पास है उसके इस वक्तव्य—जब नाइट्रोजन और आक्सिजन के मिश्रण में विद्युत् चिनगारियाँ जलती हैं तो कुछ गैस, जो १।१२५ भाग से अधिक नहीं होती, बच जाती है—के सामने मैंने "इसको ध्यान से देखो" लिख दिया था। संभवतः इसी की दबी हुई स्मृति के कारण मैंने १८९४ में लार्ड रैले से कहा कि वह अवशिष्ट गस वायु से प्राप्त नाइट्रोजन के अधिक आपेक्षिक गुरुत्व का कारण हो सकती है। इसको ध्यान से देखने का फल एक नये तत्त्व आर्गन का आविष्कार हुआ और शीघ्र ही नीआन, क्रिप्टान और ज़ीनान के आविष्कार हुए। यूरेनियम खनिजों से अम्ल की प्रतिक्रिया से प्राप्त की गयी गैस को पहचान कर आपने उसे हीलियम बताया।

शोध-कार्य में विशिष्ट प्रायोगिक चातुर्य के कारण रैमज़े महोदय (आर० ह्विटला-ग्रै के साथ) रेडियम से निकली रेडियम धर्मी गैस के सूक्ष्म परिमाणों को पृथक् करने, तौलने और उसका परमाणु-भार निकालने में सफल हुए। रेडियम धर्मी विच्छेदन (Elements and Electrons, London, 1912) संबंधी आपके विचार उस समय सामान्य रूप से नहीं माने जाते थे।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[1] का विवरण

"हीलियम, आर्गन की भाँति, एक ऐसी गैस है, जो जल में थोड़ी-थोड़ी विलेय है और जिस पर दाहक सोडा की उपस्थिति में, विद्युत् विसर्जन के समय, और लालतपित मैग्नीशियम की उपस्थिति में भी आक्सिजन के साथ कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। आर्गन की भाँति नियत आयतन और नियत दाब पर इसकी विशिष्ट ऊष्मा से ज्ञात होता है कि यह तत्त्व एक-परमाणुक[2] है। अतः इसका परमाणु और अणु एक ही होता है। इसका घनत्व मेरे और लैंग्ले दोनों के अनुसार लगभग २ है; फलतः ज्ञात गैसों में हाइड्रोजन को छोड़ कर यह सबसे अधिक हलकी गैस है। दोनों के इन समान गुणधर्मों से स्पष्ट है कि हीलियम और आर्गन एक ही प्राकृतिक परिवार के हैं, यह भी स्पष्ट है कि इस परिवार के कम-से-कम तीन सदस्य तत्त्व और होना चाहिए। यह बात आवर्त-सारणी को देखने से ज्ञात होती है, जहाँ निम्नलिखित तत्त्व इस प्रकार साथ में हैं—

1. Les Prix Nobel en 1904 से। 2. Monatomic

हाइड्रोजन (?)	फ्लोरीन	क्लोरीन	ब्रोमीन	आयोडीन
१	१९	३५.५	८०	१२७
हीलियम	?	आर्गन	?	?
४	२०	४०	८२	१३२
लिथियम	सोडियम	पोटैसियम	रुबिडियम	सीज़ियम
७	२३	३९	८५	१३३

जब १५ लिटर आर्गन शुद्ध किया जा रहा था, तब तक डा० हैम्पसन अपने यंत्र को निर्दोष बनाने में सफल हो चुके थे। आपने द्रव वायु का एक लिटर हमको दे दिया। उससे खेल करने के पश्चात्, जिससे हम लोग उसके गुणधर्मों से खूब परिचित हो गये, हमारे पास पात्र में लगभग १०० घन-सेंटीमीटर वायु बची। मैंने सुझाव दिया कि हमको इस सारे द्रव का लगभग पूर्ण उद्वाष्पन कर देना चाहिए, अंतिम १० घन-सेंटीमीटर का वाष्पन एक ऐसे पात्र में करना चाहिए जिसमें गैस को एकत्रित किया जा सके। ऐसा ही किया गया। नाइट्रोजन और आक्सिजन को पृथक् करने के बाद २६ घन-सेंटीमीटर एक गैस बची। इस गैस ने आर्गन के वर्णक्रम के अतिरिक्त एक चमकीली पीली और चमकीली हरी रेखा दिखायी। इन दोनों रेखाओं का तरंग-दैर्घ्य (wave-length) क्रमशः ५५७१ और ५५७०.५ था। यद्यपि नयी गैस का घनत्व ज्ञात करने पर केवल २२.५ आया तथापि हम लोगों ने अनुमान लगाया कि इस क्रिप्टान (अर्थात् छिपी हुई) गैस का घनत्व शुद्ध करने पर हाइड्रोजन से ४० गुना अधिक होना चाहिए। फलतः इसका परमाणुभार ८० होना चाहिए, क्योंकि हम लोगों के प्रयोगों से यह बात पहले ही तय हो चुकी थी कि आर्गन की भाँति इसका अणु एवं परमाणु-भार समान होना चाहिए।

"इस आविष्कार का विवरण रायल सोसायटी को ३ जून १८९८ को भेजा गया। आर्गन का परीक्षण द्रवण एवं प्रभाजित आसवन से शीघ्र ही किया गया। १३ जून को हम यह घोषणा करने में समर्थ हो सके कि १५ लिटर आर्गन के अल्प क्वथित भागों में एक नयी गैस, जिसको हमने नीआन (नवीन) कहा, पायी जाती है। इसके वर्णक्रम में विशिष्ट रूप से एक रंगीन ज्वाला निकलती थी जिसमें अनेक लाल, नारंगी और पीली रेखाएँ होती थीं।

"सितंबर १८९८ में, एक नयी गैस के आविष्कार की घोषणा की गयी। इसका क्वथनांक और अधिक था तथा क्रिप्टान के प्रभाजन से इसको पृथक् किया गया था। हमने इसका नाम ज़ीनान (अजीब) रखा।

वायु में नीआन और हीलियम के परिमाण एक बार नापे जा चुके हैं; नीआन वायु के ८१,००० आयतन में एक आयतन के अनुपात से होती है, हीलियम २४५,००० आयतन में एक आयतन के अनुपात से। क्रिप्टान और ज़ीनान बहुत ही थोड़ी मात्रा में होती हैं। क्रिप्टान के एक आयतन से अधिक भाग को वायु के २०,०००,००० आयतन से नहीं निकाला जा सकता; ज़ीनान का परिमाण वायु के १७०,०००,००० आयतन में एक आयतन से अधिक नहीं है।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

हीलियम, नीआन, आर्गन, क्रिप्टान और ज़ीनान अपनी रासायनिक निष्क्रियता में एक समान हैं। "भद्र गैसों (nobel gases)" के समूह के आविष्कार की आंशिक भविष्यवाणी आवर्त-सारणी की नियम-परायणता (regularities) को देखकर पहले ही की जा चुकी थी। इस नये समूह के आविष्कार से सारणी में विस्तार हो गया। यह तत्त्वों का ऐसा समूह है जिसकी संयोजकता शून्य ० है। ये असाधारण रासायनिक तत्त्व जो रासायनिक दृष्टिकोण से बिलकुल निष्क्रिय होते हैं, वस्तुत: सारणी के दो सिरों को आदर्श रूप से जोड़ते हैं। तत्त्वों की श्रृंखला में इन नये तत्त्वों की कड़ियों के जुड़ने के बाद नील्स ब्होर ने १९१३ में परमाणु-रचना के सिद्धांत को बनाना आरंभ किया।

रैमज़े और उसके साथियों ने जिन विधियों का विकास किया वे रेडियम-धर्मिता और जीवन-रसायन के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण बनती गयीं, क्योंकि इन दोनों में सूक्ष्म परिमाणों से कार्य करने की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, जिन सिद्धांतों पर गैसों को पृथक् किया गया था वे शीघ्र ही औद्योगिक उत्पादन में काम आने लगे। हीलियम, नीआन और आर्गन केवल वैज्ञानिक कौतूहल का विषय नहीं रहीं और इनके स्रोत केवल एक या दो प्रयोगशालाओं तक ही सीमित न रहे। हीलियम के बड़े स्रोत खनिजों के साथ में पाये गये और शीघ्र ही यह गैस भयप्रद रूप से ज्वलनशील हाइड्रोजन के स्थान पर गुब्बारे भरने के काम में आने लगी। हीलियम एवं आर्गन रक्षक गैसों के रूप में भी प्रयुक्त होने लगीं। इनके वातावरण में मैग्नीशियम, एल्यूमिनियम एवं बेदाग़ (stainless) इस्पात का संधान किया जाने लगा। निष्क्रिय गैसों के वातावरण में उच्च ताप पर भी धातुओं का आक्सीकरण नहीं हो पाता था। नीआन, आर्गन और क्रिप्टान का प्रतिदीप्त लैंपों में और नीआन चिह्नों में प्रयोग होने लगा। नीआन और पारद के मिश्रण के अथवा क्रिप्टान की सूक्ष्म मात्राओं के विद्युत्-विसर्जन से अल्प ताप पर बड़ी दक्षता से बड़ा तीव्र प्रकाश उत्पन्न होता है।

१९०५

एडोल्फ़ फ़ान बाएर (Adolf Von Baeyer)

(१८३५-१९१७)

"कार्बनिक रंग सामग्री (dyestuffs) की शोध एवं हाइड्रोगंधित (hydroaromatic) यौगिकों के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

एडोल्फ़ बाएर का जन्म बर्लिन में हुआ था। आपके पिता उस समय प्रशा के जेनरल स्टाफ़ के कप्तान थे। बाद में वे जेनरल हो गये और रिटायर होने के बाद प्रशा के जियोडेटिक इंस्टीट्यूट के सभापति बना दिये गये। आपकी माता साहित्यिक इतिहासज्ञ एवं प्रसिद्ध जूरी (Jurist) की पुत्री थीं। छोटी अवस्था में ही बाएर ने रसायन में रुचि उत्पन्न कर ली थी। १९०० में 'नीलसंश्लेषण' पर दिये गये अपने भाषण में आपने जिक्र किया है कि ईस्ट इंडीज़ से आनेवाली रंगसामग्री के "अद्भुत आचरण और उसकी अजीब गंध" से आप उसकी ओर आकर्षित हुए। बर्लिन में रसायन की शिक्षा के लिए कोई प्रयोगशाला नहीं थी, बाएर को इसलिए शिक्षा प्राप्त करने के लिए १८५६ में बुन्शन से हाइडेलबर्ग जाना पड़ा। वहाँ आप फ्रीडरिश केकुले (१८२९–१८९६) से मिले और १८५८ में वहाँ से आप स्नातक हुए। आपकी खोज का विषय "आर्सेनिक के कार्बनिक यौगिक" था। इसके पश्चात् आप केकुले के साथ घेंट, बेल्जियम गये। बाएर अपने को स्व-शिक्षित रसायनज्ञ मानते थे, यद्यपि आपको बुन्सन से प्रयोगशाला का और केकुले से सैद्धांतिक प्रशिक्षण मिला था।

१८६० में आपको वाणिज्य अकादमी (गेवर्बे इंस्टीट्यूट) बर्लिन में छोटी-सी नौकरी मिल गयी। यहाँ आपकी शोध का मुख्य विषय यूरिक अम्ल बन गया। आपने इससे एक मनोरंजक अम्ल प्राप्त किया और उसको बारबिट्यूरिक (barbituric) अम्ल नाम दिया, क्योंकि बारबेरा नामक लड़की से आपकी सबसे घनी मित्रता थी। बारबिट्यूरिक अम्ल और यूरिक अम्ल के आक्सीकरण से प्राप्त अन्य अम्ल आपके लिए

उदाहरण सिद्ध हुए जिनसे नील से प्राप्त यौगिकों को पहचाना जा सकता था। रंग सामग्रियों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रंग—नील—में आक्सिजन होती है। अतः इसको बाएर ने किसी मातृ-पदार्थ का आक्सीकृत यौगिक समझा। यह यौगिक ऐनिलिन से मिलता-जुलता था और इसको बाएर ने इन्डोल कहा। इन्डोल को आक्सीकृत करके आक्सीन्डोल एवं आक्सीनोल को और अधिक आक्सीकृत करके ईसाटीन नील द्वारा सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। इन्डोल की यदि बेंज़ीन से तुलना की जाय तो आक्सीन्डोल फ़िनोल के तुल्य हो जाता है, यद्यपि इनमें एक महत्वपूर्त्ण अंतर है। फ़िनोल को बेंज़ीन के ६ कार्बन परमाणुओं में लगे ६ हाइड्रोजन परमाणुओं में से एक हाइड्रोजन परमाणु को हाइड्राक्सिल समूह से प्रतिस्थापित करके प्राप्त किया जा सकता है। इसके पास वाला कार्बन परमाणु जिसको आर्थोस्थान (orthoposition) कहते हैं, इन्डोल में प्रतिस्थापित होता है। बिना नील की सहायता के भी ईसाटीन बेंज़ीन अणु से प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए उसके अणु के एक हाइड्रोजन परमाणु को नाइट्रिक अम्ल के अवशेष (नाइट्रो समूह) से प्रतिस्थापित करना होता है, और इसके पास वाले कार्बन परमाणु के हाइड्रोजन को ऐसीटिक अम्ल अथवा उसके रासायनिक पड़ोसी प्रोपियोनिक अम्ल के अवशेष से प्रतिस्थापित करना होता है।

बाएर ने नील-संश्लेषण पर १८६५ से १८८३ तक कार्य किया। १८७२ से १८७५ तक आप स्ट्रासबुर्ग के नवसंघटित विश्वविद्यालय में रहे और १८७५ के पश्चात् आप लीबिग के उत्तराधिकारी होकर म्यूनिख़ में रहे। आप ८० वर्ष की अवस्था तक पढ़ाते रहे और प्रयोग करते रहे। रसायन आपके लिए एक अति सरल यंत्र परख-नली-से प्रयोग करना मात्र था। रिचर्ड विल्सटैटर एक कहानी सुनाया करते थे। एक बार एमिल फ़िशर ने एक आश्चर्यजनक यंत्र के निरीक्षण के लिए सबको आमंत्रित किया। यह यंत्र था बुन्सन ज्वालक पर रखी हुई परखनली, जो अंकुड़े (Clamp) द्वारा एक घानी में लगी हुई थी। इसी यंत्र की सहायता से बाएर महोदय ने बेंज़ीन और टर्पीनों (हाइड्रोगंधित यौगिकों) की रंग-सामग्रियों के साथ संबंध स्पष्ट किया। आपने यौगिकों का एक नया वर्ग भी निकाला। इसमें आक्सिजन की संयोजकता साधारण रूप से २ न होकर ४ थी।

बाएर को मूलतः सिद्धांत बनाने से चिढ़ थी। तब भी आपने दो बहुत अधिक उपयोगी प्रत्ययों (concepts) का विकास किया जो थोड़े सूक्ष्म परिवर्त्तनों के बाद आज भी माने जाते हैं। एक प्रत्यय में पौधे की उन आधारभूत प्रतिक्रियाओं का

वर्णन है जिनसे कार्बन-डाइ-आक्साइड और जल, माड़ी एवं शर्कराओं में परिवर्त्तित होते हैं। दूसरा प्रत्यय वैंट हाफ़ के उस सिद्धांत से निकला है जिसमें कार्बन की चतु: संयोजकता को स्पष्ट करने के लिए चतुष्फलक नमूना माना गया था। जब कार्बन परमाणु घेरा (ring) बनाने के लिए जुड़ते हैं तो, बाएर के सिद्धांत के अनुसार, इन संयोजकताओं का कोण कुछ झुक-सा जाता है। इससे अणु पर ज़ोर पड़ता है और इसी झुकाव पर इन यौगिकों का स्थायित्व निर्भर है।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[1] का विवरण

"नील का मातृ-पदार्थ प्राप्त करने के लिए मैंने आक्सीन्डोल से आरम्भ किया। इसमें केवल एक आक्सिजन परमाणु है और यह फ़िनोल की भाँति काम करता है। इसमें इन्डोल प्राप्त करने की समस्या फ़िनोल को बेंज़ीन में परिवर्त्तित करने के समान हो गयी। यह उपमा अधिक काम में नहीं आयी क्योंकि यह परिवर्त्तन उन्हीं विधियों से, जो सिद्धांत में सरल मालूम होती हैं, हो सकता है जो आसानी से राल (resin) बन जा सकने वाले आक्सीन्डोल के लिए वर्जित हैं। ६ मास तक निष्फल कार्य करने के पश्चात् मैंने अपनी समस्या पर अपने साथी स्टालश्मिड्ट (Stahlschtmidt) से बातचीत की, जो उस समय वाणिज्य अकादमी में टेक्निकल रसायन पर भाषण करते थे। मुझे उनसे पता चला कि यशद रज को, जो पहले रंग बनाने के काम में आती थी, व्यापारिक रूप से अवकारक की भाँति प्रयुक्त किया जाने लगा था। मैंने फ़ौरन एक प्रयोग किया; किन्तु आक्सीन्डोल पर कुछ बस न चला। हताश होकर यशद रज के साथ मैंने दहन-नली में उसे चमकते अंगारों के ताप तक गरम किया। अंततोगत्वा अब (१८६६ में) नील का मातृपदार्थ मेरे हाथ में था। मैं भी उसी प्रकार प्रसन्न हुआ जिस प्रकार एमिल फ़िशर १५ वर्षों के कार्य के पश्चात् प्यूरीन को प्राप्त करके प्रसन्न हुए होंगे।

"१८७० में पहली बार कृत्रिम नील का संश्लेषण हुआ, जब मैंने अपने विद्यार्थी एमरलिंग के साथ फ़ास्फ़ोरस युक्त फ़ास्फ़ोरस-त्रि-क्लोराइड की ईसाटीन पर प्रतिक्रिया की। ईसाटीन उस समय केवल नील से प्राप्त की जा सकती थी। अतः संश्लेषण

१. आपके "भाषण नीलसंश्लेषण के इतिहास" (Uber Die Geschichte der Indigo Synthese) से। यह Berichte der Deutschen Chemischen Gesellschaft (1900) में दिया हुआ है। यह Gesammelte Werke(Braunschweig Friedr. Vieweg und Sohn, 1905), Vol. 11 में भी छपा है।

की पूर्त्ति तब हुई जब मैंने कृत्रिम रूप से फ़िनाइल–ऐसीटिक अम्ल को ६ जून १८७८ में ईसाटीन में परिवर्त्तित किया।

"१८७८ और १८७९ में मैंने ईसाटीन से नील-संश्लेषण की विधि को और अधिक विकसित किया। मैंने मालूम किया कि यह संश्लेषण ईसाटीन क्लोराइड पर आधारित था, जो पहले बनती थी। इस विधि से प्रतिस्थापित नीलों—जैसे द्विब्रोमो, त्रिब्रोमो, द्विनाइट्रो, द्विएमीडो—का भी उत्पादन संभव हो सका। चतुब्रोमो नील विशेष रूप से सबसे अधिक मात्रा में बन सका।

"आर्थो–नाइट्रो–फ़िनाइल–ऐसीटैल्डीहाइड को बनाने के प्रयोगों के दौरान में मैंने आर्थो-नाइट्रो-सिनैमिक अम्ल की ब्रोमाइड को क्षारों के साथ उबाला। मैंने देखा कि इसमें कुछ नील बन जाता था। इस अन्वेषण पर और अधिक काम करके आर्थो–नाइट्रो–फ़िनाइल–प्रोपियोलिक अम्ल का आविष्कार हुआ और इससे नील का उत्पादन हो सका। मैंने इस नयी खोज का पेटेंट १९ मार्च १८८० को कराया और उसी वर्ष के दिसंबर में इस पर पहला वैज्ञानिक लेख प्रकाशित हुआ।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

नील-संश्लेषण और उसकी रचना पर बाएर के लम्बे, क्रमबद्ध कार्य का आरम्भ एक विधि की अचानक खोज से हुआ। इस विधि से कुछ यौगिकों के मुख्य अंश का पता चल सकता है। यशद रज के साथ यौगिकों को गरम करने की विधि बड़ी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। बाएर के कहने पर, कार्ल ग्रायबे ने इस विधि को लाल रंग सामग्री ऐलीज़रीन के साथ प्रयुक्त किया; इससे ऐलीज़रीन का रासायनिक ढाँचा ज्ञात हुआ। थोड़े ही समय में इस प्रयोगशाला से ऐलीज़रीन के उत्पादन के लिए एक नये उद्योग का जन्म हुआ। इस उद्योग की सफलता से रासायनिक उत्पादकों को बड़ी प्रेरणा मिली और वह नील के मँहगे संश्लेषण पर बराबर कार्य करते रहे। उसकी सब विधियों को मानकर नहीं प्रत्युत बाएर के कार्य के आधार पर नील को ऐनिलिन और ऐसीटिक अम्ल से प्राप्त किया गया। इसका असर व्यापार और खेती दोनों पर ही संसार भर में हुआ। बंगाल में लगभग ५ लाख एकड़ भूमि नील के उत्पादन में प्रयुक्त होती थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में नील की रासायनिक फ़ैक्टरी नील की खेती का स्थान लेती गयी और शीघ्र ही जर्मनी के रासायनिक उद्योग ने जिसमें बाएर से रासायनिक प्रशिक्षण पाये हुए कार्यकर्त्ता थे, नील की खेती से बाजी मार ली।

१८८३ में बाएर ने घोषणा की कि आपने नील के अणु के प्रत्येक परमाणु के स्थान

को ज्ञात कर लिया है। ४० वर्ष बाद इसमें कुछ सुधार की आवश्यकता पड़ी। अन्य रसायनज्ञों द्वारा कुछ बदले जानेपर, नील के अणु की स्पष्ट अणु-रचना से उससे संबंधित अनेक अन्य रंग-सामग्रियों का बनाना सम्भव हुआ। इन रंगसामग्रियों में से दो ब्रोमीन परमाणुओं से युक्त यौगिक का रंग एक घोंघे (म्यूरक्स ब्रैंडरिस) द्वारा निकाले गये बैंजनी रंग से मिलता था। इसी बैंजनी रंग का प्राचीन काल में प्रयोग होता था।

१९०६

हेनरी मोआयसां (Henri Moissan)

(१८५२ – १९०७)

"तत्त्व फ्लोरीन को पृथक् करने की शोध के लिए और अपने नामवाली विद्युत भ्राष्ट्र (furnace) को विज्ञान की सेवा में लाने के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

हेनरी मोआयसाँ का जन्म पेरिस में हुआ था। आपने एक औषधालय में काम करते हुए रसायन का अध्ययन किया। आपके रसायन के आचार्य देहेरायँ (Deherain) ने आपको विश्वास दिलाया कि आपका क्षेत्र शुद्ध विज्ञान था। 'पत्तियों के अंधेरे में श्वसन' पर थीसिस प्रकाशित करके आप १८७६ में अकार्बनिक रसायन की ओर मुड़े। रसायन के इस विषय की ओर उस समय के लोगों का ध्यान अपेक्षाकृत कम था। पहले आपने लोह के एक अद्‌भुत प्रकार का अन्वेषण किया। यह बहुत बारीक चूर्ण था, जो सरलता से प्रज्वलित हो जाने के कारण, अग्निजन लोह कहलाता है। ४ वर्ष के कार्य के पचात् २० जून १८८८ को आपने तत्त्व फ़्लोरीन के पृथक् हो जाने की घोषणा की। विशेष रूप से सक्रिय और विषालु तत्त्व पर आपकी शोध का यह आरम्भ था। आपने इस तत्त्व के कार्बनिक यौगिकों—मिथाइल फ्लोराइड से लेकर कार्बन-चतुर्फ़्लोराइड तक—का अन्वेषण किया और आपने दिखाया कि गंधक का षष्ठ फ्लोराइड नाइट्रोजन की भाँति स्थायी और निष्क्रिय है।

यह सब प्रयोगशाला की थोड़ी सुविधाओं में किया गया था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि बाद में आपने घोषणा की कि फ्लोरीन ने उनके जीवन को सम्भवतः १० वर्ष कम कर दिया था। बाद में (१९०० से और उसके बाद) पेरिस विश्वविद्यालय में विज्ञानों की फ़ैकल्टी के आचार्य पद पर पहुँच कर आपको अधिक अच्छी सुविधाएँ प्राप्त हुईं।

१८९२ में मोआयसां ने विद्युत ऊष्मक के लिए विशेष रूप से व्यावहारिक बंदोबस्तों

को मालूम किया। इसमें आप कैलसियम कार्बाइड बनाते थे। इसके औद्योगिक उपयोग पर आपने कदाचित् विचार ही नहीं किया। टंगस्टन धातु और एक प्रकार का इस्पात, जिसमें कार्बन के स्थान पर बोरान का उपयोग होता था, भी इसी ऊष्मक में बनाये गये।

मोआयसां ने भूगर्भ-अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि हीरा एक द्रव अथवा किसी लेई-जैसे पदार्थ से बना होगा। "यह कार्बन बड़े ऊंचे दाब पर केलासित हुआ होगा, लोह द्रव दशा में था और किसी कारण अचानक ठंडे होने से उसकी संहति में एक दम संकोच हुआ होगा, इस प्रक्रिया में कार्बन की घनता २ से ३.५ हो गयी होगी और इस प्रकार हीरा बन गया होगा।"

मोआयसां ने बाद के वर्षों में अपना अधिक समय अकार्बनिक रसायन की पुस्तक पर लगाया, इसमें पाँच बड़ी-बड़ी जिल्दें हैं।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[1] का विवरण

हमारे विद्युत्-भ्राष्ट्र का पहला नमूना, जो दिसम्बर १८९२ में विज्ञानों की अकादमी को दिखाया गया था, कली चूने का बना था। यह भली प्रकार से बनाये गये चूने के दो कुन्दों (blocks) से बना था जो एक दूसरे पर रखे हुए थे। नीचे वाले टुकड़े में एक लम्बाकार नाली (groove) थी। इसमें से होकर दो विद्युदग्र निकलते थे। बीच में खोखला स्थान था जो घड़िया का काम करता था। इस खोखले स्थान की गहराई को बदला जा सकता था। इसमें कई सेंटीमीटर मोटी तह उस पदार्थ की होती थी जिसको चाप द्वारा गरम करना होता है। इस खोखले स्थान में एक कार्बन की घड़िया को भी, जिसमें गरम किया जाने वाला पदार्थ रहता है, रखा जा सकता है। ऊपर का कुन्दा उस भाग में कुछ खोखला रहता है, जो चाप के सीधे ऊपर रहता है। जैसे-जैसे विद्युत-धारा के अत्यधिक ताप से चूने की सतह पिघलती है और उसको खूब चमक दे देती है, इसके बीच में एक गुम्बद ऐसा बन जाता है। इससे भ्राष्ट्र के बीच में रखी घड़िया पर पड़ने वाली सारी ऊष्मा का पता चलता है।

"यह यंत्र एक प्रतिक्षेपक (Reverberatory) विद्युत् भाष्ट्र है, जिसके

१. पहला अंश विक्टर लेनहर द्वारा अनूदित 'The Electric Furnace (Easton, Pa. The Chemical Publishing Co., 1904) के पृष्ठ ५ और २१ से लिया गया है। दूसरा Smithsonian Institution Reports—१८९७-के पृष्ठ २६८ और बाद के पृष्ठों से उद्धृत है।

विद्युदग्र हिलाये-डुलाये जा सकते हैं। यह बात बहुत ज़रूरी है क्योंकि विद्युदग्रों के हिलाने से चाप शीघ्र ही बन जाता है और उसको इच्छानुसार छोटा या लंबा किया जा सकता है, संक्षेप में यह प्रयोग को चलाना सरल बना देता है।

"अब तक बहुत-से प्रायोगिक कार्यकर्त्ताओं ने चाप द्वारा उच्च ताप प्राप्त किया है, किन्तु मुझसे पूर्व किसी ने भी धारा की विद्युतीय एवं ऊष्मीय क्रियाओं को पृथक् नहीं किया।

"भ्राष्ट्रां के इन नमूनों से लगभग ३५०० ° सें० तक का ताप सरलता से प्राप्त किया जा सकता है।

"संश्लिष्ट हीरे —२०० ग्राम स्वीडेन के मृदु लोह के १ से दो सेंटीमीटर लम्बे एवं एक सेंटीमीटर व्यास वाले सिलेंडर काट कर एक कार्बन घड़िया में रखे गये और उसको शर्करा से प्राप्त कार्बन से पूर्णरूप से ढक दिया गया। ३५ से ६० वोल्ट की धारा से उसको ३ से लेकर ६ मिनट तक गरम किया गया। भ्राष्ट्र के ढक्कन को उठा करके कपड़े से लिपटे हाथ में पकड़े चिमटे से घड़िया के किनारों को पकड़ा गया और उसको उठाकर ठंडे पानी भरे पात्र में एकदम डुबो दिया गया। घड़िया और उसके पदार्थ कई मिनट तक लाल तपे रहे; उसमें से गैस के छोटे छोटे बुलबुले भी निकले जो सतह पर आकर बिना जले ही टूट गये। ताप जल्दी गिर गया, प्रकाश कम हो गया और इस प्रकार प्रयोग भी समाप्त हो गया।

× × ×

"मैंने सबसे पहले अजल हाइड्रोफ़्लोरिक अम्ल तैयार किया और ज्ञात किया, जैसा कि फैरेडे और गोरे पहले ही दिखा चुके थे कि यह अचालक था।

"अम्ल को चालक बनाने के लिए प्रयोग के पहले उसमें २ से १० घन सेंटीमीटर तक शुष्क किया एवं पिघलाया हुआ पोटैसियम फ्लोराइड का द्रव फ्लोहाइड्रेट मिलाया गया। इन परिस्थितियों में अम्ल का विच्छेदन बराबर होता जाता है और हमको ऋण विद्युदग्र पर एक ऐसी गैस मिलती है जो जलने पर रंगहीन ज्वाला देती है और जिसमें हाइड्रोजन के सब लक्षण होते हैं। धन विद्युदग्र की ओर निकलने वाली गैस हाइड्रोक्लोरस अम्ल से मिलती है और इसकी गंध बड़ी भेदक और बुरी लगने वाली होती है। यह गले और नेत्रों की झिल्ली को भी प्रभावित करती है। नयी गैस में बड़े ऊर्जात्मक गुण होते हैं। उदाहरणतया गंधक उसके संपर्क में आने पर जलने लगता है।

"केलासित सिलिकन, ठंडा होने पर भी, इस गैस के संपर्क में दहकने लगता है और बहुत तीव्र प्रकाश के साथ, कभी-कभी चिनगारियाँ देता हुआ, जलने लगता है।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

मोआयसां की सफलताओं में सबसे अधिक आकर्षक हीरों के कृत्रिम उत्पादन की थी। आपने एक ऐसी विधि का विकास किया जिसका, अनुमान के अनुसार, प्रकृति में भी उपयोग हो सकता है। कार्बन मिले गले हुए लोह को अचानक ठंडा करने पर बाहर एक कड़ी पर्त बन जाती थी, किन्तु इसके अन्दर द्रव लोह ठंडा होते समय बड़े ऊँचे दाब पर रहता था। आपका यह कार्य दिलचस्प था, किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से कैलसियम कार्बाईड और फ़्लोरीन पर आपका कार्य बड़ा महत्त्वपूर्ण था। आपके मरने के साल, १९०७, में १,६५,००० टन कैलसियम कार्बाईड का उत्पादन होता था। बीस वर्ष बाद इसकी उत्पादन-मात्रा चौगुनी हो गयी और विद्युत्-भ्राष्ट्र से बनने वाले पदार्थों में कई और पदार्थ, जैसे एल्युमिनियम, फास्फ़ोरस, मिश्र धातुएँ और सिलिकन कार्बाईड (कार्बोरंडम) आदि जुड़ गये।

रासायनिक कच्चे पदार्थ के रूप में फ्लोरीन का विकास अपेक्षाकृत बहुत धीमा हुआ। एथिलीन के फ्लोरीन युक्त पालीमर (polymers) १९३९ में उपयोग में आये। टेफ़्लान, जो एक चतुर्फ़्लोरो एथिलीन प्लास्टिक है, शीघ्र ही इस देश में काम में आने लगा। क्लोरीन और फ़्लोरीन द्वारा प्रतिक्रिया की हुई मेथेन का प्रशीतक (refrigerant) फ़्रीआन के रूप में बहुत अधिक उपयोग हुआ। फ़्लोरीन युक्त ऐसीटिक अम्ल, जो आंतरिक रूप से बड़ा घातक विष है, चूहे मारने वाले पदार्थ का आधार है।

१६०७

एडुअर्ड बुख़्नेर (Eduard Buchner)

(१८६०-१६१७)

"जीव-रसायन पर शोध एवं कोशिका-रहित किण्वन की खोज के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

एडुअर्ड बुख़्नेर ने रसायन का अध्ययन अपनी जन्मभूमि म्यूनिख़ में आरम्भ किया, किन्तु बीच में आर्थिक कष्टों के कारण आपको पढ़ना छोड़ना पड़ा। आपके बड़े भाई हन्स ने १८८४ में आपको विज्ञान पढ़ने के लिए सहायता दी। बाएर की संरक्षता में रसायन और कार्ल फ़ान नेगेली की संरक्षता में वनस्पति-विज्ञान आपके मुख्य विषय थे। हंस ने आपको किण्वन में होने वाली प्रतिक्रियाओं की ओर आकर्षित किया। बुख़्नेर ने अपने पहले लेख में जो, १८८५ में प्रकाशित हुआ था, किण्वन पर आक्सिजन के प्रभाव की चर्चा की। १८८८ में आपको डाक्टर की उपाधि मिली और बाद में ५ वर्ष तक आप बाएर की संरक्षता में काम करते रहे। किण्वन अब भी आपका प्रिय विषय था। आप यीस्ट को पीस करके कोशिकाओं के नष्ट होने का किण्वन पर प्रभाव देखना चाहते थे। आपसे बड़े सभी लोगों ने कहा कि इस प्रकार कार्य करके किसी नयी बात का पता नहीं चल सकता। हन्स बुख़्नेर उस समय क्षारों के साथ जीवाणुओं को पचा (digest) करके औषध रूप में उपयोगी प्रोटीन प्राप्त करना चाहते थे; फलतः जीवाणुओं अथवा यीस्ट को पीस करके निकाले गये कोशिका रस में भी आपको दिलचस्पी थी। ट्वीबिन्गेन में विश्लेषक एवं औषध रसायन पढ़ाने से प्राप्त अवकाश में एडुअर्ड बुख़्नेर ऐसे ही रसों के साथ प्रयोग करते गये। १८९६ में आपने एक मौलिक परीक्षण किया। आपने यीस्ट को पीस करके निकाले गये रसों को स्थायी बनाने के लिए शर्करा के सांद्र घोलों का प्रयोग किया। आपने देखा कि किण्वन धीरे-धीरे आरम्भ हो गया था; शीघ्र ही आपने निश्चित रूप से सिद्ध किया कि इस किण्वन में कोई कोशिकाएं उपस्थित नहीं थीं और ऐलकोहल तथा ऐसीटोन द्वारा मारी गयी यीस्ट भी शर्कराओं में

किण्वन आरम्भ कर सकती थी। इस मत के लिए आपको बड़े विरोध का सामना करना पड़ा। १८९८ में एग्रीकल्चरल कालेज, बर्लिन में आपको आचार्य पद मिला। इससे आप जीव-रसायन पर अपना कार्य विस्तृत करने में समर्थ हो सके। बुख़्नेर की मृत्यु रूमानिया में जर्मन सेना के एक मेजर के रूप में हुई।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[1] का विवरण

"यीस्ट कोशिकाओं को एक अपेक्षाकृत सख्त झिल्ली से घिरे हुए छोटे बुलबुले समझना चाहिए जिनमें अर्धद्रव पदार्थ—प्रोटोप्लाज़्म रहता है।

"जहाँ तक सूक्ष्मदर्शी से दिखाई देता है, ये झिल्लियाँ एकरूप की होती हैं, तथापि इनमें कुछ महीन छिद्र होने चाहिए जिनके द्वारा खाद्य पदार्थ कोशिकाओं में पहुँचता है और कुछ पदार्थ उससे बाहर निकलते हैं।

"कोशिका के पदार्थों के अन्वेषण के लिए, झिल्ली और प्लाज़्मा नली को हटाना आवश्यक था। रासायनिक रूप से सक्रिय विलायक और उच्च तापों के प्रयोग को बचाना आवश्यक था। इस प्रक्रिया को कम-से-कम समय में भी करना आवश्यक था जिससे प्रक्रिया में परिवर्तन न हो सकें।

"मेरी फ़ान मनासाई (Marie Von Manassein) ने जो वियेना में वीजनेर के इंस्टीट्यूट में काम करती थीं, कदाचित् पहली बार १८७२ में यह दिखाया कि यीस्ट को पीसते समय जो कठिनाइयाँ होती हैं, उनको स्फटिक अथवा बालू के मिलाने से बचाया जा सकता है। तब मूसल को ऐसे बिंदु मिल जाते हैं जिन पर पीसना सरल हो जाता है। इस प्रकार मेरे प्रयोग करने के पहले एडोल्फ़ माएर, ए० फर्नबाख़. (A. Fernbach) तथा एमथर द्वारा ये सूक्ष्म जीवाणु पीसे गये।

जब यीस्ट को उसके समान भार स्फटिक बालू और उसके भार के ५ वें भाग कीसेल-गुह्र के साथ मिला दिया जाता है तो बड़े खरल में रख कर रज-जैसे शुष्क इस मिश्रण को लंबे बट्टे से पाँच मिनट में पीस लिया जाता है। पीसने के बाद मिश्रण काला भूरा और सने आटे की भाँति सुघट हो जाता है।

"जब इस मोटे मिश्रण को मोटे कपड़े में रखकर द्रवचालित प्रेस से दबाया जाता है तो उसमें से द्रव-रस दाब के कारण निकलने लगता है। दाब को ९० kg प्रति वर्ग सेंटीमीटर (लगभग १२५० पौंड प्रति वर्ग इंच) तक क्रमशः बढ़ाना पड़ता है। कुछ

1. Les Prix Nobel en 1907 से अनूदित।

ही घंटों में ५०० घन सेंटीमीटर द्रव को लगभग १००० ग्राम यीस्ट से प्राप्त किया जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि कोशिका का आधे से अधिक भाग दबकर निकल आता है।

"मेरे सब प्रयोगों का संक्षेप यह कि जीवित यीस्ट की कोशिकाओं से किण्व करने वाले सक्रिय द्रव को पृथक् किया जा सकता है।

"पौधों और जानवरों की कोशिकाएँ अब वर्तमान स्पष्ट रूप से उन फ़ैक्ट्रियों की भाँति मालूम होती हैं जहाँ पृथक् कार्यशालाओं में सब प्रकार के पदार्थों का उत्पादन होता है। इस कार्य में सबसे प्रमुख हैं एंज़ाइम।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

रसायन में किण्वन का सदैव प्रमुख स्थान रहा है। थोड़ा-सा "किण्व" जिस प्रकार पौधों के बहुत अधिक पदार्थों का परिवर्त्तन कर सकता है उसी प्रकार, प्राचीन कीमियागरों के अनुसार, छोटा पारस पत्थर धातु पर जादू की प्रतिक्रिया कर सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी में इस बात का पता चला कि किण्वन जीवाणु की सहायता से होता है। इस खोज से निकले जीवन सिद्धांतों (vitatistic theories) के अनुसार किण्वन एक ऐसी शक्ति का रूप था जो जीवन-शक्ति से संबंधित थी। इसके विरोध में यांत्रिकी सिद्धांतों (mechanistic theories) के अनुसार किण्वन जीवाणुओं के विच्छेदन के साथ होने वाले कम्पनों द्वारा शर्कराओं के अणुओं के टूटने से होता था। इन दोनों सिद्धांतों के दोनों सिरों को जोड़ना असम्भव प्रतीत होता था। इन दोनों सिद्धांतों में मतभेद क्रमशः कम होता गया, जब यह दिखाया गया कि जब तक समस्या का आपेक्षिक संबंध स्पष्ट रूप से नहीं बताया जाता तब तक न जीवन का महत्त्व है और न यांत्रिक सिद्धांत का। जब बुख्नेर ने यह घोषणा की कि वे जीवित कोशिकाओं के बिना ही किण्वन कर सकते थे तो उन्होंने समझा कि वे जीवन-सिद्धांतों को काट रहे हैं। परिस्थिति लगभग ६० वर्ष पुरानी परिस्थिति के समान थी जब जर्मन रसायनज्ञ वोहलर ने कहा कि वह जीवाणु के बिना ही यूरिया बना सकते थे। जीवन-सिद्धांत के प्रतिपादक न उस समय और न इस समय बुख्नेर के सामने से अपने स्थान से हटे। मैक्स रुबनेर (Max Rubner) ने जो उस समय के प्रख्यात कायिकीज्ञ थे, सीधे प्रमाणों द्वारा स्पष्ट करने का दावा किया कि किण्वन जीवन की प्रक्रिया है (एंजाइम की प्रतिक्रिया नहीं)। आपका प्रमाण यह था—टैनिन, रस अथवा पिसी हुई कोशिकाओं द्वारा किण्वन को रोक सकता है, किंतु कोशिकाओं द्वारा होने वाले किण्वन को नहीं। एडुअर्ड बुख्नेर के लिए इसकी व्याख्या सरल थी। जिस एंज़ाइम (ज़ाइमेज़) द्वारा

किण्वन होता है वह जीवित कोशिकाओं से नहीं निकलता और फलतः टैनिन द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता। जब कोशिकाओं को मार अथवा उनकी झिल्लियों को फाड़ दिया जाता है तो टैनिन उस पर प्रतिक्रिया कर सकता है।

किण्वन ऐंज़ाइम-प्रक्रिया का रूप है—इस नये प्रत्यय से यीस्ट और ऐलकोहल के उत्पादन में वृद्धि हुई। यह बात समझने में बड़ी सुविधा हुई कि पौष्टिक पदार्थ—जैसे अमोनिया लवण, पेप्टोन और फास्फ़ोरिक अम्ल के लवण भी—ज़ाइमेज़ के बनाने में सहायता देते हैं। इसलिए इस उपयोगी ऐंज़ाइम की पाचक ऐंजाइम, पेप्टेज़, द्वारा विनाश से रक्षा की जानी चाहिए। यीस्ट की प्रक्रिया को समझने का लाभ किण्वन प्रक्रियाओं के नियंत्रण का हुआ है। इस पर होने वाले और अन्वेषण से ज्ञात हुआ कि प्रक्रियाओं तथा प्रसाधनों (factors) की संख्या उनकी अनुमानित संख्या से कहीं अधिक थी।

१९०८

अरनेस्ट रदरफ़ोर्ड (Ernest Rutherford)

(१८७१--१९३७)

"तत्त्वों के विघटन एवं रेडियमधर्मी पदार्थों के रसायन-संबंधी अन्वेषण के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

अंग्रेज़ माता-पिता से अरनेस्ट रदरफ़ोर्ड का जन्म नेलसन, न्यूज़ीलैंड में हुआ था। स्कूल में अद्भुत योग्यता प्रदर्शित करने के कारण आपको न्यूज़ीलैंड विश्वविद्यालय से एक छात्रवृत्ति मिली। इस विश्वविद्यालय में उस समय ७ आचार्य और लगभग १५० विद्यार्थी थे। अपनी बी० एस–सी० उपाधि के लिए १८९४ में आपने अपने अन्वेषणों को 'लोह का उच्च आवृत्ति-विसर्जन द्वारा चुंबकन' शीर्षक प्रबन्ध में प्रकाशित किया। हर्ट्ज़ महोदय की खोजों से इस कार्य के लिए आपको प्रेरणा मिली थी। रदरफ़ोर्ड ने अन्य बातों के साथ यह भी दिखाया कि चुंबकन केवल ऊपरी सतह पर होता है और लोह की चुंबकित सुई से अम्ल द्वारा घोल कर उसको हटाया जा सकता है। कैम्ब्रिज में जे० जे० टामसन की प्रयोगशाला में अपने दोलकों और परिचायकों के कारण आपको ख्याति प्राप्त हुई। यहाँ आपने १८९५ में कार्य करना आरम्भ किया था। ३ वर्ष बाद जे० जे० टामसन ने मैक्गिल विश्वविद्यालय, मान्ट्रियल के आचार्य पद के लिए आपकी सिफ़ारिश की। रेडियमधर्मी विघटनों पर कार्य करने के लिए यहाँ फ्रेडरिक साडी आपके पास आये। १९०७ के बाद आप मैन्चेस्टर विश्वविद्यालय में आचार्य बने। लन्दन के रैमज़े महोदय से आपकी कभी-कभी जोरदार प्रतियोगिता होती थी। प्रथम विश्व-युद्ध के समय आपने अपने दोलकों एवं परिचायकों का उपयोग पनडुब्बियों के पता लगाने में किया। १९१९ में नाइट्रोजन के 'कृत्रिम विघटन' की आपने खोज की; अल्फ़ा विकिरण के प्रभाव से नाइट्रोजन, तत्त्व होते हुए भी, विघटित हो जाती है और हाइड्रोजन बन जाती है।

रदरफोर्ड की दृढ़ धारणा थी कि आचार्यों को कार्य करने की अपेक्षा सोचने में अधिक समय बिताना चाहिए। फलतः आपने अपने साथियों से 'अपने कामों में दिलचस्पी लेकर अपने सब कामों के प्रशासन के लिए' अनुरोध किया। आपका विचार था, 'यदि ऐसा नहीं होगा, तो सिविल शासकों को वैज्ञानिकों के प्रशासन में हस्तक्षेप करना पड़ेगा और तब केवल भगवान् ही सहायक हो सकेंगे।'

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[1] का विवरण

"अल्फा-किरणों के अध्ययन से रेडियम-धर्मिता का पर्याप्त विकास हुआ है और इससे अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों एवं उनके संबंधों का पता चल सका है।

"यद्यपि सारा प्रमाण इसी ओर था कि अल्फा-कण हीलियम का परमाणु है तथापि इसको निश्चित रूप से सिद्ध करने के लिए कोई प्रयोग कर दिखाना अत्यधिक कठिन ज्ञात हुआ। यदि किसी प्रकार प्रयोग द्वारा यह दिखाया जा सकता कि अल्फा-कण पर वस्तुतः दो इकाई चार्ज होता है तो अल्फ़ा-कण और हीलियम परमाणु के संबंध को और अधिक पुष्ट किया जा सकता था। इस कार्य के लिए रदरफ़ोर्ड और गाइगर ने मिलकर रेडियमधर्मी पदार्थ से निकलने वाले अल्फ़ा-कणों को सीधे गिनने के लिए एक वैद्युत विधि निकाली। एक अल्फ़ा-कण द्वारा गैस में उत्पादित आयनीकरण बहुत ही कम होता है और इसका विद्युत्-परिचय किसी अत्यंत सूक्ष्म विधि के बिना नहीं किया जा सकता है। फलतः, अल्फ़ा-कण द्वारा उत्पादित आयनीकरण का आवर्धन करना आवश्यक प्रतीत हुआ। इसके लिए अल्फ़ा-कणों को एक छोटे छिद्र से निकालने की व्यवस्था की गयी। ये कण रेडियमधर्मी पदार्थ से निकलकर एक पात्र में आते थे जिसमें चिनगारी मान (sparking value) वाले विद्युत् क्षेत्र में अनावृत (exposed) वायु या और कोई गैस रहती थी। इन परिस्थितियों में अल्फ़ा-कणों के गैस में टक्कर खाने पर बहुत अधिक संख्या में और आयन उत्पन्न होते थे। इस प्रकार, अल्फ़ा-कण के विद्युत्-प्रभाव में कई हज़ार गुना आवर्धन किया जाना सम्भव हुआ।

"परख-पात्र में छोटे छिद्र द्वारा ज्ञात समय में आये अल्फ़ा-कणों की संख्या की यथार्थ गणना की विधि इसी प्रकार विकसित की गयी। इससे किसी भी रेडियमधर्मी पदार्थ की पतली फ़िल्म द्वारा प्रति सेकंड निकले अल्फ़ाकणों की संख्या जानी जा सकती थी। इसी विधि से दिखाया गया कि एक ग्राम रेडियम से और उसकी अल्फ़ा-

1, Les Prix Nobel en 1908 से अनूदित।

किरणों से निकले पदार्थों के उसके साथ संतुलन से ३.४ x $१०^{१०}$ अल्फ़ा-कण प्रति सेकंड निकलते हैं।

"हम यह देख चुके हैं कि यह मानने के लिए अनेक कारण हैं कि कई रेडियमधर्मी पदार्थों से निकले अल्फा-कण संहति (mass) और रचना (constitution) में विद्युत्मय होते हैं और हीलियम परमाणु से बने होते हैं। फलतः हमें यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि यूरेनियम और थोरियम-जैसे रेयिडमधर्मी पदार्थों के मूल परमाणुओं को कम-से-कम आंशिक रूप में, हीलियम परमाणुओं से मिलकर बनना चाहिए। ये रेडियमधर्मी रूपान्तर के समय निश्चित क्रम में ऐसी गति (rate) से निकलते हैं जिसको प्रयोगशाला की विधियों से नियंत्रित नहीं किया जा सकता।

"यह बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है कि हीलियम-जैसे रासायनिक रूप से अक्रिय तत्त्व, यूरेनियम, थोरियम एवं रेडियम की परमाणु-रचना में इतना महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं। यह हो सकता है कि हीलयम का जटिल परमाणुओं को बनानेवाला यह गुण-धर्म किसी प्रकार से अन्य परमाणुओं के साथ संयोग को रोककर उसको अक्रिय बना देता हो।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

एक समय में, पदार्थ के सूक्ष्मतम कणों को, जिनका और विभाजन नहीं हो सकता था, ठोस गेंद से व्यक्त किया जाता था। यह नमूना देखने और तोले जा सकने वाले पदार्थों को देखकर बनाया गया था और कुछ रासायनिक प्रतिक्रियाओं की व्याख्या के लिए उपयोगी भी था। जब इनके प्रकाश एवं विद्युत्-धर्मों पर विचार किया गया तो इससे बिलकुल पृथक् नमूने के बनाने की आवश्यकता पड़ी। सर्वप्रथम, परमाणु को धनात्मक एवं ऋणात्मक चार्ज युक्त भागों में तोड़ना था। इसके पश्चात्, जैसा टामसन ने किया था, ऋणात्मक चार्ज की व्याख्या छोटे-छोटे बिन्दुओं को मानकर करनी थी। रेडियम-धर्मी तत्त्वों के विघटन पर विचार करते समय रदरफ़ोर्ड को परमाणु के किसी निश्चित नमूने के बनाने की आवश्यकता पड़ी। तत्त्वों के विघटन के साथ-साथ धनात्मक चार्ज युक्त हीलियम परमाणु और इनके अपेक्षाकृत लगभग भाररहित कण, इलेक्ट्रान निकलते हैं। फलतः रदरफ़ोर्ड ने निष्कर्ष निकाला कि परमाणु पदार्थ की अंतिम इकाई नहीं है। वह परमाणु से भी सूक्ष्म कणों की व्यवस्था से बना हुआ है। रेडियमधर्मी तत्त्वों में यह व्यवस्था अस्थायी होती है। अस्थायी परमाणु उन कणों को मुक्त करके, जिनसे दूसरे तत्त्व बन सकते हैं, स्थायी हो जाता है। ये कण धनात्मक नाभिक

(nucleus) में से, जिसमें परमाणु की संहति केन्द्रित होती है, निकलते हैं। इस केन्द्र के चारों ओर इलेक्ट्रान का वातावरण रहता है। ये इलेक्ट्रान नाभिक से विभिन्न छदों (shells) पर रहते हैं। ये छद नाभिक के आकार की अपेक्षा नाभिक से बहुत अधिक दूरी पर रहते हैं।

रदरफ़ोर्ड महोदय ने एच० गाइगर (H. Geiger) के साथ अल्फ़ा-कणों की गणना के लिए जिस यंत्र का विकास किया था, उससे तत्त्वों के विघटन की प्रक्रिया के लिए गणितसूत्रों का निकालना संभव हुआ। रेडियमधर्मी विघटन के लिए रासायनिक प्रतिक्रियाओं की भाँति इस कल्पना (assumption) की आवश्यकता पड़ी—'समय की इकाई (सेकंड अथवा मिनट) में प्रतिक्रिया करनेवाले अथवा विघटित होनेवाले परमाणुओं का उस समय के सारे परमाणुओं के साथ निश्चित अनुपात होता है।'

परमाणु संबंधी रदरफ़ोर्ड के विचारों का नील्स ब्होर और अन्य वैज्ञानिकों ने विकास किया। विकसित विचार इस प्रकार है—परमाणु में एक छोटा किन्तु बहुत भारी नाभिक होता है और इससे बहुत दूर विशिष्ट छदों पर इलेक्ट्रान घूमते रहते हैं। यह नाभिकीय भौतिकी का आधारभूत प्रत्यय (concept) है। परमाणुओं के विघटन के लिए गणितसूत्रों को निकालने से बहुत ही अधिक सूक्ष्म मात्रा में पाये जाने वाले पदार्थों को, जिनका परिचय (identification) अन्य विधियों से नहीं हो सकता था, उनके विशिष्ट विकिरणों के कारण पहचाना जा सका। जितने समय में किसी रेडियमधर्मी तत्त्व के परमाणुओं की संख्या पहले की अपेक्षा आधी हो जाती है, उसको अर्ध-जीवन (half-life) कहते हैं और इसको गणितसूत्रों से सरलतापूर्वक जाना जा सकता है।

१९०९

विल्हेल्म आस्ट्वल्ड (Wilhelm Ostwald)

(१८५३–१९३२)

"उत्प्रेरण पर कार्य के लिए और रासायनिक संतुलन की परिस्थितियों एवं रासायनिक प्रतिक्रियाओं के वेगों को ज्ञात करने के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

छोटी अवस्था में ही विल्हेल्म आस्ट्वल्ड को रसायन के प्रयोगों में रुचि हो गयी। ११ वर्ष की अवस्था में ही आप आतशबाज़ी और पारदर्शक चित्र दिखाने के लिए विशेष-यंत्र (contraptions) स्वयं ही बना लेते थे। डोरपट. विश्वविद्यालय में आपने जूलियस टामसेन (Julius Thomsen) द्वारा ज्ञात की गयी रासायनिक प्रतिक्रियाओं की ऊष्मा के संबंध में पढ़ा। अचानक ही आपको यह विचार सूझा कि जलीय विलयन में कोई भी दूसरा गुणधर्म पदार्थ की वास्तविक परिस्थितियों पर प्रकाश डाल सकता है। अपनी यांत्रिक सुविधाओं में आपको सबसे सरल गुणधर्म घनत्व प्रतीत हुआ। इस विधि के व्यापक महत्त्व पर आप इतने दृढ़ थे कि ताप-रसायन के समान इस क्षेत्र को बनाने के लिए आपने इसको 'आयतन रसायन' का नाम दिया।

इन अन्वेषणों और दूसरे भौतिक गुणधर्म-प्रकाशवर्तन (optical refraction) के मापन से डाक्टर की उपाधि के लिए आपकी थीसिस (१८७८) में पूरी हुई। आपका मुख्य ध्येय रासायनिक बंधुत्व के बारे में और अधिक ज्ञान प्राप्त करना था। रीगा में १८८२ से लेकर आप आचार्य रहे। वहाँ आपने उपर्युक्त प्रश्न के लिए रासायनिक गतिविज्ञान तक, जिसमें रासायनिक परिवर्तन के वेग को मापा जाता है, अपने अन्वेषणों का विस्तार किया। जिस वेग से अम्ल, एस्टर को ऐलकोहल और कार्बनिक अम्लों में तोड़ता है, उससे आपने आपेक्षिक बंधुता की गणना की। आयतन-मितीय (volumetric) विधियों से भी आपेक्षिक बंधुता का यही मान आ चुका था।

व्यापक व्याख्या निकालने के हेतु ये विशेष अन्वेषण किये जा रहे थे। इनसे सम्पूर्ण रसायन का एक नया आधार बन रहा था, अतः उसके अनेक भागों को फिर से लिखने की आवश्यकता थी। आस्ट्वल्ड ने १८८३ में नयी पाठ्य पुस्तक लिखना आरम्भ ही किया था कि स्वान्ते एर्हीनियस (Svante Arrhenius) के विद्युत्-चालकता और बंधुता पर तथा वैंट हाफ़ के गैसों एवं विलयनों की उपमाओं संबंधी विचारों से नवीन क्षेत्रों का उद्घाटन हुआ। आस्ट्वल्ड ने उत्साहपूर्वक इनका स्वागत किया।

लाइपज़िग विश्वविद्यालय में, जहाँ आपने (१८८७ में) दो विद्यार्थियों के साथ कार्य करना आरम्भ किया था, आस्ट्वल्ड ने शीघ्र ही भौतिक रसायन के लिए एक नये मुख्य ध्येय की रचना की। रसायन के पाठ्य-क्रम में भौतिक रसायन के प्रयोगों को एक निश्चित स्थान दिया गया। १८९३ में अपनी पुस्तक में आस्ट्वल्ड ने विश्लेषक रसायन की व्याख्या नवीन दृष्टिकोण से धाराप्रवाह रूप में की। इससे ६० वर्ष पूर्व बर्ज़ीलियस (Berzelius) ने पदार्थों की उस प्रक्रिया को उत्प्रेरण की संज्ञा दी थी, जिसमें कुछ पदार्थ बिना प्रतिक्रिया में भाग लिये ही उसके वेग पर प्रभाव डालते थे। आस्ट्वल्ड के कार्य से इस प्रक्रिया को मापा और उसका बंधुता से संबंध बनाया जा सकता था। व्यापारिक रूप से इसका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण फल तब हुआ जब १९०१ में आस्ट्वल्ड ने अमोनिया को प्लैटिनम की उपस्थिति में जलाकर नाइट्रिक अम्ल बनाया।

लाइपज़िग विश्वविद्यालय के व्यवस्थापक तथा साथियों से आस्ट्वल्ड के संबंध धीरे-धीरे ख़राब होते गये। १९०६ में आपने आचार्य पद से त्यागपत्र दे दिया। इससे आप अपनी व्यापक रुचियों—रंगों को मापना और पोतना, ऊर्जा ("ऊर्जा ही सब कुछ है") का विशिष्ट कार्य, विज्ञान और अंतर्देशीय सहयोग का संघटन और सार्वभौमिक जीवन की अद्वैत रचना—की ओर अधिक ध्यान दे सके। कई वर्ष तक आप प्रत्येक रविवार को रविवारीय अद्वैतवादी उपदेश प्रकाशित करते रहे।

सब प्रकाशनों में आस्ट्वल्ड को विद्युत् रसायन पर अपनी पुस्तक (१८९५) सबसे अधिक प्रिय थी, यही आपकी एक ऐसी पुस्तक थी जिसका केवल एक ही संस्करण निकला था।

जीवन के आरम्भिक वर्षों में किसी ने आपको परामर्श दिया था कि किसी सिद्धांत को शीघ्रता से व्यापक न बनाना चाहिए। आपने इस पर कभी ध्यान नहीं दिया। रसायन में एक नये क्रम को निकालने के लिए और अन्य दृष्टिकोणों के लिए भी आस्ट्वल्ड को जर्मनी का लावाशिये (Lavoisier) मानना चाहिए।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[1] का विवरण

"सबसे पहले मैं केवल रासायनिक बंधुता के प्रत्यय मापन के कठिन कार्य में व्यस्त था। यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रत्यय है, किन्तु उस समय तक अनिश्चित था। मैंने स्थिर अथवा संतुलन दोनों विधियों एवं प्रतिक्रियाओं के वेगों के मापन पर आधारित गतिविज्ञान की विधियों के उपयोग पर विचार किया।

"कार्बनिक रसायन में से, जिसको मुझे पढ़ाने के लिए पढ़ना पड़ता था, मुझे कई उदाहरण याद थे जिनमें एस्टर तीव्र अम्लों, जैसे हाइड्रोक्लोरिक अथवा सल्फ्यूरिक अम्ल द्वारा अम्ल और ऐलकोहल के सांद्र रूप में टूट जाता था। जलीय विलयनों पर कार्य कर सकने के लिए मैंने उन एस्टरों पर अपना ध्यान जमाया जो जल में काफी विलेय हैं। मुझे आज भी उस प्रसन्नतामय उत्साह की याद है जब मैंने साधारण ऐसीटिक ईथर में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल को मिलाकर बढ़ती हुई अम्लता ज्ञात की थी (१८८३)।

"बंधुता की समस्या और विशेष कर अम्लों की तीव्रता—(strength) के मापन के, जो उस समय मेरे अन्वेषण के मुख्य ध्येय थे, वर्णन के लिए यह उपयुक्त स्थान नहीं है। इतना ही कहना काफ़ी होगा कि स्थिर एवं गतिशील (dynamic) विधियों के संबंध पर प्रकाश पड़ा और प्रतिक्रिया की प्रकृति से स्वतंत्र तीव्रता को विशिष्ट अम्लों का व्यापक गुणधर्म माना गया। शीघ्र ही शर्करा के अपवर्तन (inversion) पर इसी दृष्टिकोण से अन्वेषण किया गया। इसका अचानक फल यह हुआ कि पहले के प्रयोगों के फल से जैसी आशा की जाती थी—ठीक उसी प्रकार अम्लों के उसी गुणधर्म से इस महत्त्वपूर्ण प्रतिक्रिया का परिमाणात्मक निर्धारण (Quantitative determination) किया जा सका।

"इस प्रकार अम्लों की तीव्रता और उनकी उत्प्रेरक क्रिया का घनिष्ठ संबंध निर्विवाद रूप से सामने आया। इस संबंध के व्यापक अध्ययन के लिए मैंने दूसरे अम्ल-उत्प्रेरणों की खोज की। पूर्व प्रयोगों के विरुद्ध, इन प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि प्रतिक्रिया करने वाले पदार्थ बिना किसी बाहरी पदार्थ को डाले ही मापे जा सकने वाले वेग के साथ एक दूसरे पर प्रतिक्रिया करते हैं। आज तो यह कहा जा सकता है कि प्रतिक्रिया करने वाले पदार्थों में पहले से ही उपस्थित हाइड्रोजन आयन प्रतिक्रिया के वेग में वृद्धि कर देते थे; उस समय इस प्रकार की व्याख्या संभव न थी, क्योंकि यह कार्य १८८७ में किया गया था जब कि स्वतंत्र आयनों का सिद्धांत संसार को ज्ञात नहीं था। इस प्रकार, मुझे यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य होना पड़ा कि उत्प्रेरण के मूल को प्रतिक्रिया के

1. Les prix Nobel en 1909 से अनूदित।

आरम्भ में नहीं प्रत्युत उसके वेग की वृद्धि में खोजना चाहिए। १८८८ के प्रकाशन में मैंने इसके लिए स्पष्ट रूप से गणित-सूत्र दिये; वे कदाचित् १८८३ के मेथिल ऐसिटेट वाले प्रबन्ध में अस्पस्ट रूप से विद्यमान हैं।"

सिद्धान्त और व्यवहार पर प्रभाव

शर्करा का प्रतिलोमन सैकरोज़ (चुक़न्दर अथवा इक्षुशर्करा) का, अम्लों के थोड़े परिमाण के प्रभाव से होने वाला परिवर्तन है। इस प्रतिक्रिया में प्रकाशघूर्णन (rotation) पलट जाता है और केलासीय (crystallizable) शर्करा अकेलासीय फलशर्करा एवं द्राक्षा-शर्करा में परिवर्तित हो जाती है। केलास शर्करा बनाने वाले इस प्रतिक्रिया से डरते थे, किन्तु कृत्रिम शहद के उत्पादक जान-बूझकर इस प्रतिक्रिया को करते थे। आस्ट्वल्ड के उत्प्रेरण पर कार्य से ज्ञात हुआ कि शर्करा की उच्च सांद्रता पर कम-से-कम अम्ल द्वारा प्रतिलोमन किया जा सकता है।

आस्ट्वल्ड ने उत्प्रेरण को दुबारा खोजा और उसकी दूसरी परिभाषा दी। यद्यपि आप मौलिक रूप से विशुद्ध एवं व्यापक विज्ञान की भावना से ही इस कार्य की ओर झुके थे, तथापि आपने इसके टेक्निकल उपयोगों के बड़े महत्त्व को पहले से ही देख लिया था। आप अमोनिया को उसके तत्त्वों—नाइट्रोजन और हाइड्रोजन—द्वारा उत्प्रेरक क्रिया से बनाने में असफल रहे, किन्तु अमोनिया के उत्प्रेरक आक्सीकरण से नाइट्रिक अम्ल बनाने में सफल हुए। तदुपरांत शीघ्र ही अमोनिया का उत्प्रेरक-संश्लेषण भी संभव हुआ। नाइट्रिक अम्ल के उत्पादन के लिए इस प्रकार पर्याप्त अमोनिया प्राप्त की जा सकी। प्रथम विश्वयुद्ध का इतना भयानक होना और इतने दिनों तक चलना असंभव था, यदि सब प्रकार के विस्फोटकों के बनाने में काम आनेवाले इस मूल पदार्थ के उत्पादन के लिए इस विधि का आविष्कार न किया गया होता।

उत्प्रेरण में रसायनज्ञों की रुचि में आस्ट्वल्ड ने जो वृद्धि की उससे रासायनिक उद्योगों को बड़ा प्रोत्साहन मिला। उत्प्रेरक विधियों द्वारा ही खनिज तेल को मोटर-ईंधन में और 'नेचुरल-गैस' को अनेक रस द्रव्यों में परिवर्तित किया जा सकता है। संश्लेषित मेथेनाल के, जिसको आस्ट्वल्ड के विद्यार्थियों की सहायता से कार्बन मोनो आक्साइड और हाइड्रोजन द्वारा मिलाकर बनाया गया था, उत्पादन से लकड़ी के आसवन-उद्योग पर बड़े प्रभाव पड़े।

रासायनिक प्रतिक्रियाएँ किस वेग से और किस सीमा तक होती हैं इसको भौतिक गुणधर्मों के मापन से जाना जा सका है। औद्योगिक उत्पादन के लिए यह ज्ञान आधार-स्वरूप है।

१९१०

आटो वालाख (Otto Wallach)

(१८४७-१९३१)

"एलीचक्रीय पदार्थों के क्षेत्र में कार्य आरम्भ करने के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

आटो वालाख का जन्म पूर्वी प्रशा के कोएनिग्सबर्ग में हुआ था। १८६९ में गाटिन्गेन विश्वविद्यालय से आपको डाक्टर की उपाधि मिली। यहाँ से आप बॉन (Bonn) गये जहाँ केकुले (Kekule) ने "वैज्ञानिक कलाकार का जीवन" आपको प्रदान किया। आपके लिए बॉन में सुविधा यह थी कि हालैंड और बेल्जियम दोनों के कला-कोषों के आप निकट थे। रासायनिक उद्योग में थोड़े दिन कार्य करके आप बॉन लौट आये, वहाँ आपको विशेष आचार्य का पद १८७६ में प्राप्त हुआ। १८७९ के उपरांत आप औषध-रसायन के प्रशिक्षण के प्रधान बने।

प्रशिक्षण कार्य में वालाख को ईथरीय तैलों पर भाषण करना पड़ता था और इस कारण आप इस विषय की ओर आर्कषित हुए। केकुले ने बताया कि ये तैल ऐसे मिश्रण हैं, जिनके अवयवों के पृथक् करने की समस्या को कोई रसायनज्ञ नहीं सुलझा सकता तब भी वालाख ने औषध रूप में प्रयुक्त इन तैलों का क्रमबद्ध अध्ययन आरम्भ किया। ये तैल साधारण रूप से चुनी हुई पत्तियों, पँखुड़ियों, छालों और फलों के आसवन से प्राप्त किये जाते थे। आपने सावधानी से बार-बार आसवन करके उनमें से शुद्ध पदार्थों को पृथक् किया और उनके भौतिक गुणधर्मों द्वारा या उनके रूपान्तरों द्वारा उनको पहचाना। इनमें से अनेक पदार्थों की रासायनिक रचना मूलतः एक प्रकार की होती है—६ कार्बन परमाणुओं का घेरा जो अधिक हाइड्रोजन परमाणुओं के होने के कारण बेंज़ीन से भिन्न होता है। अधिकतर इन "टर्पीनों" का घेरा, अथवा चक्र, संतृप्त कार्बन परमाणुओं के मिलने से बनता है। ऐसे कार्बन परमाणु "वसीय" अथवा ऐलीफ़ैटिक पदार्थों में होते हैं। फलतः उनको "ऐलीचक्रीय" कहा गया। गाटिन्गेन में १८८९–१९१५ तक

आपने अपना शोध-कार्य जारी रखा। १९१५ में केवल कला में अधिक समय देने के लिए आपने अवकाश प्राप्त किया।

"वालाख का उच्चतम आदर्श न सिद्धांत था और न सूत्र; प्रयोग को सावधानी और विश्वसनीय विधि से करना ही आपका ध्येय था।"[1]

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[2] का विवरण

"हाइड्रोकार्बनों के आक्सिजन युक्त यौगिकों में एवं आक्सिजन युक्त यौगिकों के हाइड्रोकार्बनों में उपयुक्त रूपान्तर द्वारा टर्पीन-जैसे अनेक पदार्थों में (जो ईथरीय तैलों में पाये जाते हैं) संबंध और इन यौगिकों के वर्ग-संबंधों को स्थापित करने में हम सफल होते हैं।

"लगभग २५ वर्ष पूर्व ईथरीय तैलों के उत्पादन में केवल अनुभव से ही काम चलता था। पौधों के सुगंधित अवयवों का केवल आसवन करके आसुत (distillate) को बाज़ार में बेचा जाता था। इस प्रक्रिया में प्राप्त पदार्थों की बौद्धिक रूप से रक्षा नहीं की जाती थी और उनकी रासायनिक रचना के ज्ञान के अभाव में किसी प्रकार की भी भूल सम्भव थी। और जब यह भूल चतुरता से जान-बूझकर की जाती थी तो उपभोक्ता इसके विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता था।

"अब इस स्थिति में पर्याप्त परिवर्तन हो चुका है। सौभाग्यवश, हम ईथरीय तैलों के प्रत्येक अवयव को स्पष्ट रूप से पहचानने में सफल हुए और अब इन मिलावटों को जानने और इनसे रक्षा करने के लिए हमें पर्याप्त रूप से विकसित विश्लेषक विधि ज्ञात है। शुद्ध रासायनिक विधियों के अतिरिक्त इनके परीक्षण के लिए कार्बनों पर कार्य करते समय अत्यंत सावधानी से ज्ञात किये गये क्वथनांक, घनत्व, वर्तन (refraction) एवं प्रकाशघूर्णन आदि भौतिक गुणधर्मों का भी उपयोग किया जा सकता है।

"नये ज्ञान के आधार पर तैलों के प्रत्येक भाग का ठीक से मूल्यांकन भी हम सीख गये हैं। यह इस दिशा में दूसरी प्रगति है।

"वे तैल जो सुगंधित होने के कारण विशेष रूप से पसंद किये जाते हैं, उन पदार्थों के मिश्रण से बनते हैं जो इस प्रभाव के उत्पादन में सहयोग देते हैं। अप्रत्याशित रूप से, यह ज्ञात किया गया कि विशेष रूप से सुगंधित कुछ तैलों में, सूक्ष्म मात्रा में बड़े बदबूदार

१. लियोपाल्ड रुचिका द्वारा Journal of the Chemical Society (London) १९३२, पृ० १५९६ में लिखी गयी वालाख की जीवनी से।

2. Les prix Nobel en 1910 से अनूदित।

पदार्थ भी होते हैं और सुगंधि उत्पादन के लिए इनका विशेष महत्त्व है। ये पौधों की प्रोटीन के टूटने से बनते हैं। ये प्रोटीन, जंतुओं की उन प्रोटीनों से मिलती-जुलती हैं जो पाचन के समय बनती हैं और मल की विरक्तिकर (repugnant) दुर्गंध के लिए उत्तरदायी हैं। इन पदार्थों में इन्डोल भी है। उदाहरणतया, जैसा कि डाक्टर आलब्रेख्त हेसे (Dr. Albrecht Hesse) ने सिद्ध किया है, यह चमेली के तेल का ख़ास अवयव है।

"इस और इसी प्रकार की सूक्ष्म दृष्टि का, जो केवल वैज्ञानिक शोध की प्रगति से ही प्राप्त हो सकती है, विशेष उपयोग सुगंधित द्रव्यों के कृत्रिम निर्माण वाले उद्योग में किया गया है।

"अब हम उस स्तर तक पहुँच चुके हैं जहाँ से प्राकृतिक सुगंधित द्रव्यों के तुल्यरूपों (analogues) का निर्माण सम्भव है। अब हम (कुछ सीमाओं में) यह पहले से ही बता सकते हैं कि इस प्रकार की अणु-रचना वाले पदार्थ के संश्लेषण से पिपरमिंट, कपूर अथवा गुल्म (lilac) की गंध प्राप्त होगी।

"हम कपूर के रासायनिक संश्लेषण में पूर्ण रूप से सफल हो चुके हैं। इसके लिए अब तक फारमोसा द्वीप पर इसके उत्पादन एवं जापानियों की इच्छा पर ही हमें निर्भर रहना पड़ता था।

"यह सोचा जा सकता है कि एक ही जीनस (Genus) वाले सब पौधे एक अथवा एक ही प्रकार के तैलों का उत्पादन करते हैं, किन्तु यह बात बिलकुल ग़लत है।

"इस प्रकार, वनस्पति-विज्ञान की दृष्टि से काफ़ी मिलते-जुलते पौधे बिलकुल विभिन्न द्रव्यों का निर्माण करते हैं। इसका उलटा भी ठीक है। विभिन्न पौधे कभी-कभी एक ही प्रकार के द्रव्यों का निर्माण करते हैं।"

सिद्धान्त और व्यवहार पर प्रभाव

वालाख़ ने ईथरीय पौधों के आसुत से शुद्ध पदार्थों को पृथक् करके एवं उनमें संबंध स्थापित करके ऐसी कठिन समस्या का हल किया जिसको केकुले प्रायः असंभव समझते थे। रासायनिक रचना के व्यापक सिद्धांत की इस प्रकार खोज हुई। प्राकृतिक रबर की बहुअंशता (पुरुभाजता—polymerism) के विनाश से प्राप्त आइसोप्रीन का संबंध तारपीन में पाये जाने वाले पदार्थों से जोड़ा गया। इस प्रकार प्रकृतिरूपी भवन में रसद्रव्यों रूपी ईंटों की एकता का सिद्धांत स्पष्ट हो गया। बाद के अन्वेषक, जैसे लियोपाल्ड रुज़िका (Leopold Ruzicka) (१९३९ का विवरण देखिए) भी इस ओर आकर्षित हुए।

वालाख़ ने संश्लेषणों पर अपने निष्कर्षों को आधारित नहीं किया, जैसा कि टीमाँ और सेमलर (Tiemann and Semmler) ने किया था। आपने अपनी वैज्ञानिक खोजों के औद्योगिक उपयोग पर ध्यान नहीं दिया। आपके पहले के विद्यार्थियों ने सुगंधित द्रव्यों के उद्योग का वैज्ञानिक आधार बनाया। ऊपरी तौर से बिलकुल असंबंधित इस क्षेत्र में वालाख़ द्वारा किये गये टर्पीनों के स्पष्टीकरण से बड़ी सहायता मिली। जीवरसायन के दृष्टिकोण से महत्तवपूर्ण कैंरोहिन्वायड के जटिल अणु में टर्पीन-जैसी रचना पायी गयी।

१९११

मेरी स्क्लोडोउस्का क्यूरी (Marie Sklodowska Curie)
(१८६७-१९३४)

"रेडियम और पलोनियम तत्त्वों की खोज के लिए तथा रेडियम को पृथक् करके इस अपूर्व तत्त्व के गुणों एवं यौगिकों के अध्ययन द्वारा रसायन-ज्ञान की वृद्धि के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

मेरी स्क्लोडोउस्का का जन्म वारसा में हुआ था जो उस समय रूस के अधीनस्थ भाग वाले पोलैंड की राजधानी था। विज्ञान की अधिकतर शिक्षा आपको अपने पिता द्वारा प्राप्त हुई। १८९१ में आपको अपनी बड़ी बहिन द्वारा पेरिस आकर अध्ययन जारी रखने का निमंत्रण मिला। आप पियरे क्यूरी (Pierre Curie) से, जो उस समय सारबाने के भौतिकी स्कूल के आचार्य थे, १८९४ में मिलीं और इसके दूसरे वर्ष आपने उनसे विवाह कर लिया। १८९८ के आरम्भ में आपने विकिरण के मापन से यह निष्कर्ष निकाला कि पिचब्लेंड खनिज में यूरेनियम की अपेक्षा काफ़ी अधिक रेडियमधर्मी एक और तत्त्व होना चाहिए। अपने पति एवं आन्द्रे देबियर्न (Andre Debierne) के साथ आपने इस तत्त्व की क्रमबद्ध खोज आरम्भ की। १९०२ में शुद्ध लवण के रूप में रेडियम तैयार किया गया। इसके दूसरे वर्ष आपको सारबाने से डाक्टर की उपाधि प्राप्त हुई और पति के साथ भौतिकी में नोबेल पुरस्कार का आधा भाग मिला।

१९०६ में गाड़ी से दुर्घटना होने के कारण पियरे क्यूरी की मृत्यु हो गयी। मादाम क्यूरी को आपका (पियरे क्यूरी का) पद प्रदान किया गया। आपके कार्य के लिए १९१४ में रेडियम इंस्टीट्यूट का संघटन किया गया। प्रथम विश्वयुद्ध में आप अस्पताल के कार्य एवं नर्सों के प्रशिक्षण में संलग्न रहीं।

जब १९२१ में आपको अमेरिका की स्त्रियों द्वारा १ ग्राम रेडियम भेंट में मिला था, उसके पूर्व से ही आप रेडियम किरणों के खुलाव (exposure) के प्रभाव से बीमार थीं। क्रमशः आपके स्नायुओं एवं आपके रक्त पर भी किरणों का प्रभाव हुआ।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[1] का विवरण

"हम लोगों ने नये तत्त्वों की खोज के लिए एक नवीन विधि का विकास किया। इस विधि का आधार रेडियमधर्मिता को पदार्थ का परमाणवीय गुण मानकर बनाया गया था। प्रत्येक रासायनिक पृथक्ककरण से प्राप्त पदार्थ की रेडियमधर्मिता का मापन करना होता था। इससे पता चलता है कि रासायनिक दृष्टिकोण से रेडियमधर्मी पदार्थ किस प्रकार प्रक्रिया करता है। इस विधि का व्यापक उपयोग हुआ है; यह विधि कुछ-कुछ वर्णक्रम-विश्लेषण से मिलती है। अनेक प्रकार के विकिरणों के उत्सर्जन के कारण इस विधि का शोधन और विस्तार होना चाहिए, जिससे रेडियमधर्मी पदार्थों की खोज के साथ-साथ उनका एक दूसरे से निश्चयात्मक परिचय भी हो सके।

"उपर्युक्त विधि को काम में लाकर यह निश्चित किया जा सका है कि रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा रेडियमधर्मिता को सांद्र बनाया जा सकता है। हम लोगों ने यह निर्णय किया है कि पिचब्लेंड में कम-से-कम दो रेडियमधर्मी पदार्थ हैं, उनमें से एक का नाम, जो बिस्मथ के साथ रहता है, पोलोनियम रखा गया है; दूसरे को, जो बेरियम के साथ रहता है, रेडियम कहा गया है।

"हम लोगों का दृढ़ विश्वास था कि जिन पदार्थों को हमने ज्ञात किया, वे नये तत्त्व थे। यह विश्वास रेडियमधर्मिता के परमाणवीय लक्षणों पर आधारित था। रासायनिक दृष्टिकोण से पहले तो ऐसा पता चलता था कि हमारे नये पदार्थ क्रमशः शुद्ध बिस्मथ और शुद्ध बेरियम हैं। यह दिखाना आवश्यक था कि रेडियमधर्मिता उन तत्त्वों की अति सूक्ष्म मात्राओं में भी होती है जो न बिस्मथ है और न रेडियम।

"फलतः इन दोनों नये अनुमानित तत्त्वों को पृथक् करना पड़ा। कई वर्षों के लगातार प्रयास से रेडियम को पूर्ण रूप से पृथक् किया जा सका है। आज कल तो रेडियम का शुद्ध लवण रूप में उत्पादन एक व्यवसाय बन चुका है। अन्य किसी भी रेडियमधर्मी पदार्थ से इतने निश्चित फल अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं।

"शुद्ध लवण रूप में रेडियम की रेडियमधर्मिता उतने ही भार वाले यूरेनियम की अपेक्षा लगभग ५० लाख गुनी होती है। इतनी अधिक रेडियमधर्मिता के कारण लवणों में से अपने आप चमक निकलती है। मैं यह भी बताना चाहती हूँ कि रेडियम में से सदैव ऊर्जा निकलती है और यह एक ग्राम रेडियम द्वारा दी गयी ११८ कलरी प्रति घंटे के बराबर होती है।

1. Les Prix Nobel en 1911 से अनूदित।

"अब हमें उन पदार्थों के साथ काम करने की आदत पड़ गयी है जिनके अस्तित्व का ज्ञान रेडियमधर्मिता के गुणधर्म के कारण ही हो सकता है। हम उनकी रेडियमधर्मिता का मापन कर सकते हैं, उनको घोल सकते हैं, और विलयनों में से उनका दुबारा अवक्षेपण या विद्युत्-विश्लेषण द्वारा उनको एकत्र कर सकते हैं। यह रसायन का नया विभाग है। इसमें तुला का नहीं, प्रत्युत विद्युन्मापी (lectrometer) का, साधारण यंत्र रूप में प्रयोग करते हैं, इसलिए इसको निर्भार वस्तु का सूक्ष्म रसायन कहा जा सकता है।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

रेडियम का आविष्कार आक्सिजन के बाद अन्य तत्त्वों की अपेक्षा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। तत्त्व के प्रत्यय में ही परिवर्तन करना पड़ा और पदार्थ के एक नये बल (force) को स्वीकार करना पड़ा। रेडियम के अस्तित्व का ज्ञान उसको घेरे हुई वायु में वर्धमान विद्युत्-चालकता से होता है। इसी विशेष लक्षण की सहायता से मेरी क्यूरी पिचब्लेंड में से अन्य साधारण पदार्थों को पृथक् कर सकीं और इस प्रकार रेडियमधर्मी पदार्थ तैयार किया गया। रेडियम की उपस्थिति का इस प्रकार परिचय प्रकाश-वर्णक्रम विश्लेषण के समान है, जिसमें पदार्थ का सूक्ष्मतम भाग भी अपने गुणधर्म का परिचय देता है। प्रकाश-विश्लेषण के लिए पदार्थ को उच्च ताप तक गरम करना पड़ता था, जिससे ऊष्मा का कुछ भाग उत्सर्जित (emitted) प्रकाश में परिवर्तित हो जाय। रेडियम की विद्युत्-सक्रियता सब तापों पर होती है। द्रव वायु के ताप पर भी उसमें कोई कमी नहीं होती। यह ऊर्जा का एक स्रोत है जो ऊष्मा के निकास के साथ-साथ ठंडी चमक के रूप में सदैव दिखाई देता है। रेडियम द्वारा उत्सर्जित ऊर्जा धीरे-धीरे कम होती जाती है। इसके कम होने का वेग ज्ञात है। इस वेग के अनुसार २४५० वर्षों में रेडियम का दो तिहाई भाग नष्ट हो जाता है।

यद्यपि एक टन पिचब्लेंड से शुद्ध क्लोराइड लवण रूप में केवल ०.१ ग्राम रेडियम प्राप्त होता है, तथापि सूक्ष्म मात्रा में रेडियम बहुत-से खनिजों में पाया जाता है। यह ऊर्जा के एक और अधिक शक्तिशाली विकिरक पोलोनियम के साथ पाया जाता है। इस तत्त्व का यह नाम मेरी क्यूरी और ए० देबियर्न ने पोलैंड के सम्मानार्थ रखा था। इन तत्त्वों द्वारा उत्सर्जित विकिरण का जीवित प्राणियों पर तेज प्रभाव होता है और इसी कारण इनका औषधीय महत्त्व है। रेडियम के आविष्कार के पश्चात् रेडियमधर्मी पदार्थों के अधिक सक्रिय रूपों का औषध की भाँति प्रयोग होने लगा। इसके विरुद्ध, इस विषय के अन्वेषक, विकिरण की अनियंत्रित खुराकों के प्रभाव से बीमार रहने लगे। रंटजन किरणों (Rontgen rays) पर कार्य करने वालों को भी इसी प्रकार भुगतना पड़ा था।

१९१२

विक्तर ग्रिनयार्ड (Victor Grignard)

(१८७१–१९३५)

"तथा-कथित ग्रिनयार्ड प्रतिकर्मक (reagent) की खोज के लिए; इसने पिछले वर्षों में कार्बनिक रसायन के विकास में बड़ी सहायता दी है।"

(१९१२ का पुरस्कार पाल सबैशिए के साथ दिया गया था, आगे देखिए पृ० ४९)

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

फ्रैन्क्वाय आगस्त विक्तर ग्रिनयार्ड का जन्म शेरबुर्ग में हुआ था, जहाँ आपके पिता जहाज के पाल बनाने का काम करते थे। आपके पिता अधिक व्यावहारिक बुद्धि एवं मस्तिष्क वाले सीधे-सादे आदमी थे। ग्रिनयार्ड ने विद्यार्थी-जीवन में अच्छी तरक्की की, किन्तु रसायन आपको एक दूसरे से असंबंधित ऐसे तथ्यों का समूह दिखाई देता था, जिनको एक-एक करके याद करना पड़ता था। तब भी, लियन्स विश्वविद्यालय में अपने अध्ययन काल में आप रसायन के प्रयोगों के सौंदर्य से शीघ्र ही प्रभावित हुए। आपके रसायन के आचार्य फिलिप आन्त्वायन बारबिए (Philippe Antoine Barbier) (१८४८–१९२२) ऐसी प्रतिक्रियाओं पर कार्य कर रहे थे, जिनके द्वारा कार्बनिक यौगिकों में मेथिल समूह—CH_3—जोड़ा जाता है। ऐसी प्रतिक्रियाएँ मेथेन पर आयोडीन की प्रतिक्रिया से बने मेथिल आयोडाइड (CH_3I) से की जाती थीं। ज़िंक से बड़े ही सक्रिय कार्बनिक यौगिक बनते थे और इस धातु को मेथिलीकरण (methylation) की प्रतिक्रिया होते समय छोड़ दिया जाता था। बारबिए ने इस धातु के स्थान पर मैग्नीशियम का प्रयोग किया। फल संतोषजनक थे और आपने ग्रिनयार्ड से इस शोध कार्य का विस्तार करने के लिए कहा। ग्रिनयार्ड ने यह देखा कि ईथर डाले जाने के बाद मैग्नीशियम, मेथिल आयोडाइड से खूब अच्छी तरह प्रतिक्रिया करता है; इस प्रक्रिया में जल के सूक्ष्मांशों को भी हटाना पड़ता है। एक बार यौगिक

बन जाने के बाद आपने ईथरीय विलयनों से बिना पृथक् किये हुए ही उसका अन्य प्रतिक्रियाओं के लिए फ़ौरन प्रयोग किया।

१९०१ में डाक्टर की उपाधि के लिए लिखी गयी थीसिस में आपने अपने अन्वेषणों को प्रकाशित किया। इस नयी विधि में अनेक लोगों ने बड़ी रुचि दिखायी। कार्बनिक मैग्नीशियम पर शीघ्र ही अनेक प्रकाशन निकले; १९०५ में ही प्रकाशनों की संख्या लगभग २०० थी और ग्रिनयार्ड की मृत्यु तक तो यह संख्या ६००० हो गयी। आप लियन्स में १९०६ में आचार्य हो गये, उसके बाद नैन्सी में आप आचार्य हुए और युद्ध-काल में कभी रहे और कभी नहीं रहे। प्रशासन संबंधी अधिक कार्य होने पर भी आपने युद्ध-काल में भारी तैलों के भंजन से टालुईन (toluene) के उत्पादन पर कार्य किया।

ग्रिनयार्ड नोबुल पुरस्कार समिति के निर्णय से बिलकुल संतुष्ट नहीं थे; आपके अनुसार सबैशिएकोसेन्डर्न्स (पृ० ५०) के साथ पुरस्कार मिलना चाहिए था और उसके बाद वाला पुरस्कार आपमें और आपके पूर्व अध्यापक बारबिए में बँटना चाहिए था।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[1] का विवरण

"कार्बनिक मैग्नीशियम ईथरों की तैयारी साधारण रूप से बड़ी सरल है। गोल पेंदी वाले फ्लास्क एक अच्छे उठाऊ (ascending) धारित्र (condenser) से और रोधनी (stopcock) युक्त पृथक्कारी कीप से जुड़ा होता है। बस, इतना ही यंत्र काफ़ी है, किन्तु इसके बिलकुल शुष्क हुए बिना काम नहीं चल सकता।

"महीन रेतन के रूप में मैग्नीशियम के एक परमाणु-भार को फ्लास्क में रख दिया जाता है। दूसरी ओर, उपयोग में आनेवाले हेलोजनयुक्त हाइड्रोकार्बन—उदाहरणतया मेथिल आयोडाइड—के एक अणु-भार को उतने ही आयतन के पूर्णरूप से शुष्क ईथर में घोल लिया जाता है। यह २५–३० घन-सेंटीमीटर मिश्रण मैग्नीशियम पर डाला जाता है। तब २५०–३०० घ० से० ईथर डाल दिया जाता है और प्रतिक्रिया उपर्युक्त मिश्रण के बूंद-बूंद गिरते रहने से चलती रहती है। आवश्यकता पड़ने पर थोड़ा गरम करके प्रतिक्रिया की पूर्ति की जाती है। इन परिस्थितियों में मैग्नीशियम पूर्ण रूप से गायब हो जाता है। साधारण रीति से, स्पष्ट अथवा थोड़ा रंगीन विलयन प्राप्त होता है। मैग्नीशियम में अशुद्धि रूप में उपस्थित लोह के बहुत महीन कण क्षण भर के लिए इसमें स्लेटी रंग के बादल-से बनाते हैं।

1. "Le magnesium en Chimie Organique" Bulletin de la Societe Chemique de France Vol XIII. (1913) के पृष्ठ १ से अनूदित।

"इस प्रकार बनाये गये यौगिक में कार्बनिक-धातु के यौगिक के सब लक्षण दिखाई देते हैं; वह शीघ्र ही हवा में बदल जाता है; आक्सिजन और कार्बन-द्वि-आक्साइड का अवशोषण करता है, जल द्वारा शीघ्र ही विच्छेदित हो जाता है और लगभग सभी क्रियाशील समूहों के साथ प्रतिक्रिया करता है। ये सब प्रक्रियाएँ साधारणतया बिना किसी यंत्र-परिवर्त्तन के ही की जा सकती हैं। पृथक्कारी कीप द्वारा प्रतिक्रिया करने वाले यौगिक को जल की उपयुक्त मात्रा में घोल करके डालने से सब काम चल जाते हैं। इस प्रकार या तो विलयन या तेलीय पदार्थ या केलास प्राप्त होते हैं। प्रति-क्रिया को आवश्यकता पड़ने पर कभी-कभी देर तक गरम करके पूरा किया जाता है। इसके बाद यौगिक का केवल जल-विश्लेषण करना पड़ता है।"

पाल सबैशिए (Paul Sabatier)

(१८५४–१९४१)

"कार्बनिक यौगिकों के अति महीन कणों वाली धातुओं की उपस्थिति में हाइड्रोजनीकरण के लिए।"

(१९१२ का पुरस्कार विक्तर ग्रिनियार्ड के साथ दिया गया था;
पीछे देखिए पृ० ४७)

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

दक्षिणी फ्रांस में कारकेसाने में पाल सबैशिए का जन्म हुआ था। प्रसिद्ध इकोल नार्मल से आप स्नातक हुए। यहाँ आपने भौतिकी का अध्ययन किया था। स्नातक होने के बाद पेरिस में आप मार्सेलिन बर्थेलो (Marcelin Berthelot) के उप-सहकारी हो गये। डाक्टर की उपाधि के लिए लिखी गयी आपकी थीसिस में धातुओं के गंधक यौगिकों की चर्चा थी। आप तूलूस में आचार्य होकर अकार्बनिक रसायन पर कार्य करते रहे। पहले वहाँ आप भौतिकी पर भाषण करते थे। भौतिकी और रसायन के मिलेजुले क्षेत्र में आपकी बड़ी रुचि थी। रासायनिक प्रतिक्रियाओं से संबंधित ऊष्मा पर आपने जो अन्वेषण किये हैं उनमें पुराने अध्यापक बर्थेलो का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। ऐसा कार्य आपकी हाइड्रोजन की प्रतिक्रिया संबंधी शोध में भी पाया जाता है। बर्थेलो ने ज्ञात किया कि ऐलकोहल का वाष्प, लोह की रक्त ऊष्मित सतह से प्रतिक्रिया करके स्थायी रूप से एक गैस बनाता है। इसका नाम आपने ऐसिटिलीन रखा था। इसमें केवल दो हाइड्रोजन परमाणु, दो कार्बन परमाणुओं

के साथ होते हैं। जब कार्बन को रासायनिक रूप से हाइड्रोजन द्वारा संपृक्त कर दिया जाता है तो एक कार्बन परमाणु चार हाइड्रोजन परमाणुओं से संयोग करता है, जैसा मेथेन, CH_4, में होता है। जब दो कार्बन परमाणु जुड़ते हैं, जैसा एथेन (ethane) में होता है तो हाइड्रोजन परमाणुओं की संख्या ६ होती है, जैसे C_2H_6। ऐसिटिलीन इस प्रकार पर्याप्त रूप से असंतृप्त है जैसा कि सूत्र C_2H_2 से दिखाई देता है। इसमें हाइड्रोजनीकरण नामक प्रतिक्रिया से हाइड्रोजन जोड़ कर एथेन बनाया जा सकता है; इसके बीच में आंशिक रूप से संतृप्त यौगिक एथिलीन, C_2H_4 बनती है। १८९७ में सबैशिए और आपके साथी आबे जीन-बापटिस्टे सेन्डर्न्स (Abbe Jean Baptiste Senderens) १८५६–१९३६) ने यह देखा कि अति सूक्ष्म कण रूप में धातु, असंतृप्त यौगिकों की हाइड्रोजन से प्रतिक्रिया को बढ़ाती है। धातु को उसकी आक्साइड अथवा उसके लवण से ताज़ा तैयार करना पड़ता है, क्योंकि धातु की सतह का विशेष प्रभाव दिखाई देता था। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं में बेंज़ीन पर हाइड्रोजन का प्रभाव बड़ा रोचक है। बेंज़ीन मेथेन श्रेणियों से भिन्न है। इसमें ६ कार्बन परमाणु षड्भुज रूप में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और प्रत्येक कार्बन परमाणु एक हाइड्रोजन परमाणु से जुड़ा हुआ है। हाइड्रोजनीकरण से निकल (Nickel) की उपस्थिति में बेंज़ीन के ६ कार्बन परमाणुओं में ६ और हाइड्रोजन परमाणु जुड़ जाते हैं और कार्बन-कार्बन परमाणुओं के बंधक टूटते अथवा खुलते नहीं हैं।

सबैशिए ने मोआयसाँ के उत्तराधिकारी बन कर सारबाने जाने से इनकार कर दिया। आप तूलूस में रहे और आपने कार्बनिक रसायन में उत्प्रेरण एवं कृषि-रसायन पर पुस्तकें प्रकाशित कीं।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का विवरण[1]

"मोआयसां (पीछे देखिए) और मेरो (Moureu) ने ज्ञात किया था कि फ़ौरन अवकृत निकल, कोबाल्ट, लोह अथवा प्लैटिनम की उपस्थिति में ऐसिटिलीन तापोज्ज्वलित होने लगती थी। उसके विच्छेदन से कार्बन बनता था और एक गैस बनती थी जिसको मोआयसाँ हाइड्रोजन समझते थे, तथा बेंज़ीन एवं अन्य गंधित पदार्थयुक्त द्रव संघनत (condensate) बनता था।

"मैंने विचार किया और मेरा अब भी विचार है··कि सरन्ध्र प्लैटिनम की उत्प्रेरण-क्रिया का वास्तविक कारण भौतिक संघनन (condensation) की सरल

1. Les Prix Nobel en 1912 से अनूदित।

प्रक्रिया नहीं है, जिससे उस स्थान पर ताप में वृद्धि होती है। यह वस्तुतः स्वतंत्र गैस के साथ रासायनिक संयोग के कारण होती है।

"धातु की बंधुता या तो स्वयं ऐसिटिलीन से हो सकती है या उसके अवयवों—कार्बन और हाइड्रोजन–से, जो इस ऊष्माशोषक यौगिक से आसानी से टूट सकते हैं। मोआयसां और मूरो के प्रयोग में मैंने ऐसिटिलीन के विच्छेदन का यही कारण बताया।

"जब मुझे यह निश्चित रूप से ज्ञात हुआ कि मोआयसां इस प्रतिक्रिया का और अध्ययन नहीं करना चाहते तो मैंने स्वयं इसका अध्ययन आरम्भ किया। सबसे पहले मैंने सेन्डर्न्स के साथ एथिलीन का इसी प्रकार प्रयोग किया।

"तत्काल अवकृत एवं लगभग ३००° सें० ताप पर रखे हुए निकल, कोबाल्ट अथवा लोह के ऊपर जब एथिलीन की धारा प्रवाहित की जाती है तो धातु की दीप्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इसके साथ-साथ एथिलीन के विनाश से बहुत अधिक मात्रा में कालिख जमने लगती है। यंत्र के बाहर जो गैस निकलती है, वह हाइड्रोजन नहीं होती; अधिकतर इसमें एथेन होती है।

"एथेन केवल अविनष्ट एथिलीन के हाइड्रोजनीकरण से बन सकती है और निर्विवाद रूप से यह हाइड्रोजनीकरण धातु के कारण हुआ था।

"फलतः एथिलीन और हाइड्रोजन के मिश्रण को यदि अवकृत निकल के स्तंभ से चलाया जाय तो एथिलीन एथेन में परिवर्त्तित हो जाती है; धातु अनिश्चित काल तक इस परिवर्तन में सहायक हो सकती है (जून १८९७)।

"१९०० के अंत में निश्चित सफलता प्राप्त हुई। मैंने सेन्डर्न्स के साथ यह देखा कि १८०° सें० पर रखे निकल के संस्पर्श से बेंज़ीन का साइक्लोहेक्सेन (Cyclo-hexane) में पूर्ण परिवर्तन किया जा सकता है। तब से इस विधि की व्यापकता में मेरा पूर्ण विश्वास हो गया है। इस विधि के इस सिद्धांत की घोषणा १९०१ में की गयी। अधिक हाइड्रोजन के साथ पदार्थ के वाष्प को तत्काल अवकृत एवं सुगम ताप (१५०–२००° सें०) पर रखे गये निकल पर चलाओ।

"वसीय अम्लों (ओलीक अम्ल) के द्रव के बाष्प के इस प्रकार सीधे हाइड्रोजनीकरण से ठोस अम्ल (stearic acid) प्राप्त हो सकते हैं। यह भी ज्ञात किया गया है कि यह प्रतिक्रिया सीधे तैलों के साथ भी उत्प्रेरक धातु को आलम्बित (suspension) अवस्था में रखकर हाइड्रोजन गैस की उपस्थिति में की जा सकती है; इससे द्रव-तैल ठोस में परिवर्त्तित हो जाते हैं। इसका वस्तुतः इंग्लैण्ड और जर्मनी के बड़े व्यवसायों में उपयोग हो रहा है।"

सिद्धान्त और व्यवहार पर प्रभाव

ग्रिनयार्ड और सबैशिए दोनों की विधियों में जो अब लगभग ५० वर्ष पुरानी हो गयी हैं, कार्बनिक यौगिकों की प्रतिक्रिया के लिए धातु का प्रयोग होता है। ग्रिनयार्ड की विधि में मैग्नीशियम हेलोजनयुक्त कार्बनिक यौगिक से संयुक्त होता है। धातु, जिसकी क्लोरीन, ब्रोमीन अथवा आयोडीन से काफ़ी बंधुता होती है और जो उसके साथ जुड़े होते हैं, कुछ अनिच्छापूर्वक कार्बनिक मूलक को स्वीकार करती है। ईथर की उपस्थिति से यह प्रतिक्रिया सरल हो जाती है क्योंकि मैग्नीशियम को ईथर के आक्सिजन के साथ जुड़ने का अवसर मिलता है, यद्यपि यह आक्सिजन-परमाणु ईथर के अणु में कार्बन के परमाणुओं से मज़बूती से जुड़ा होता है। जब अधिक सक्रिय आक्सिजन परमाणु मिलता है तो ग्रिनयार्ड प्रतिकर्मक का मैग्नीशियम यौगिक शीघ्रता से उससे मिल जाता है; इस प्रक्रिया में कार्बनिक मूलक बच जाता है जो अब दूसरी प्रतिक्रियाओं में भाग ले सकता है। इस प्रकार, मैग्नीशियम–कार्बनिक यौगिक पदार्थों की उपस्थिति में कार्बन परमाणुओं की अनेक प्रकार की बंधकताओं के संयोग संभव हो जाते हैं। कार्बन-द्वि-आक्साइड एक हाइड्रोकार्बन में शीघ्र ही प्रवेश कर जाती है और उसका अनुरूप अम्ल बनाती है। दूसरी ओर वसाओं के कार्बनिक अम्लों को जो ग्लिसरीन से संयुक्त अवस्था में रहते हैं अवकृत करके ऐलकोहल बना लिया जाता है। जब इन अनेक संयोगों के नियम बने तो बनने वाले पदार्थों की रचना को पहले से ही बताकर अनेक नये पदार्थों का उत्पादन संभव हो सका। नये पदार्थों में औषधियाँ थीं, सुगंधित द्रव्य थे और परिमार्जक थे।

सबैशिए की विधि में हाइड्रोजन और असंतृप्त पदार्थ का निकल के साथ अस्थायी संबंध हो जाता है; इसके फलस्वरूप हाइड्रोजन स्थायी बंधक प्राप्त कर लेता है। इस खोज के बाद शीघ्र ही कम क्वथनांक वाली वसाओं का अधिक संतृप्त, उच्चतर क्वथनांक वाले और इस प्रकार सख़्त किये गये पदार्थों के बनाने में उपयोग किया गया। इस प्रकार ये पदार्थ मक्खन का काम दे सके।

मैग्नीशियम और निकल ही इन दोनों विधियों में प्रमुख रहे हैं, यद्यपि यह प्रश्न कई बार उठ चुका है कि क्या दूसरी धातुएँ कुछ दशाओं में विशिष्ट उपयोगी नहीं सिद्ध हो सकतीं। मैग्नीशियम के स्थान पर लिथियम के प्रतिस्थापन से वही प्रभाव होते हैं। निकल की मिश्रधातुएँ और सिलिसिक कैरियरों (Silicic carriers) के विभाजन में मिश्रण का टेक्निकल उपयोग होने लगा है। ग्रिनयार्ड और सबैशिए, दोनों प्रतिक्रियाओं का शोध-कार्य तथा औद्योगिक उत्पादन दोनों में, खूब उपयोग होता है।

१९१३

आल्फ्रेड वर्नर (Alfred Werner)

(१८६६-१९१९)

"अणुओं में परमाणुओं की कड़ियों (links) पर किये गये कार्य की प्रशंसा में यह पुरस्कार दिया गया; इससे पुरानी समस्याओं पर नवीन प्रकाश पड़ा और शोध-कार्य के, विशेषकर अकार्बनिक रसायन के, नये क्षेत्र खुल गये।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

आल्फ्रेड वर्नर ने आस्ट्वल्ड और बाएर की भाँति आरंभिक अवस्था से ही रासायनिक प्रयोग में विशेष रुचि उत्पन्न कर ली थी। अपने माता-पिता की जायदाद में मिले म्हूलहाउज़ेन (अलसास) के अन्न-भण्डार में ही आपने अपनी प्रयोगशाला का निर्माण किया। आपका रसायन का अध्ययन कार्लसरुहे में आरम्भ हुआ और जूरिख में चलता रहा। वहाँ आर्थर हांट्ज्श (Arthur Hantzsch) ने कुछ नाइट्रोजन-युक्त कार्बनिक यौगिक निकाले थे, जिनके विश्लेषण से रचना एक ही प्रकार की मालूम पड़ती थी, किन्तु उनके गुणधर्मों में विभिन्नता थी। डाक्टर उपाधि के लिए लिखी गयी अपनी थीसिस (१८९०) में वर्नर ने इस प्रकार की विशिष्ट समावयवता (isomerism) की व्याख्या का विकास किया था। आपने वैंट हाफ़ के चतुष्फलकीय (terrahedral) कार्बन परमाणु वाले सिद्धांत का विस्तार किया; नाइट्रोजन के लिए उसमें थोड़ा परिवर्तन करना पड़ा।

वर्नर के "अकार्बनिक यौगिकों के रचना संबंधी प्रकाशनों" का आरम्भ १८९३ में हुआ। आपने इस पर लगभग २० प्रबंध प्रकाशित किये। संकुल (complex) यौगिकों के भौतिक मापन से उनके प्रकाश एवं विद्युत् अंतरों का पता चला और इससे उन अणुओं की आंतरिक रचना स्पष्ट हुई। इन बनावटों का मानसिक चित्र बनाने के लिए ज्यामितीय नमूने (models) उस समय भी सहायक सिद्ध हुए, यद्यपि ये

नमूने पहले की अपेक्षा काफ़ी कठिन थे। वर्नर को इन नमूनों की आवश्यकता नहीं थी। आप इन पदार्थों की रचना में इतना मग्न रहते थे कि उनके संबंधों और उनकी प्रकृति को आप केवल देख कर कर ही समझ लेते थे।

कुछ धातुओं, जैसे कोबाल्ट (Co) क्रोमियम (Cr) अथवा र्‌होडियम (Rh) के आक्सैलिक अम्ल के अवशेष ($C_2 O_4$) के साथ संकुल यौगिकों के दर्पण प्रतिबिम्बों को एक प्रकार का नहीं होना चाहिए। इन पदार्थों का असममित होना इनका विशेष लक्षण था। वैंट हाफ़ ने इन यौगिकों द्वारा ध्रुवीयित (polarized) प्रकाश के तल में परिवर्तन का यही कारण बताया था। जब वर्नर ने प्रकाश-सक्रिय संकुल यौगिकों को, जिनमें उपर्युक्त तत्त्वों में से एक तत्त्व केन्द्र में रहता था, ज्ञात किया, तो आपका सिद्धांत अद्‌भुत रूप से दृढ़ हो गया।

३० वर्ष की अवस्था के पहले ही (१८९५ में) वर्नर पूर्ण रूप से आचार्य पद पर पहुँच गये। डाक्टर की उपाधि पाने के लिए, आपकी संरक्षता में कभी-कभी २५ विद्यार्थी तक आपकी छोटी प्रयोगशाला में काम करते थे। १९०९ में ज़ूरिख में आपके लिए एक नये रसायन इंस्टीट्यूट का निर्माण किया गया। घातक रोग के लक्षण प्रकट होने के पूर्व आप १९१५ तक वहीं पढ़ाते और कार्य करते रहे।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[1] का विवरण

"संयोजकता के पुराने सिद्धांत के दृष्टिकोण से संतृप्त तत्त्वों के परमाणुओं में दूसरे परमाणुओं अथवा परमाणु-समूहों के साथ जो स्वयं संतृप्त प्रतीत होते हैं, बंधकता बनाने की काफी क्षमता रहती है। इस प्रकार नये परमाणुओं सेनि श्चित प्रकार के अन्य यौगिक बनते हैं। बहुत-से आणव (molecular) यौगिकों पर प्रयोग करके यह नियम अब इतना दृढ़ हो गया है कि आगे के शोध-कार्य के लिए इसको आधार बनाया जा सकता है।

"इस सम्बन्ध में सबसे पहला प्रश्न यह उठता है कि संकुल यौगिक के केन्द्र वाले धातु परमाणु में सीधे बँध जा सकने वाले परमाणुओं की संख्या कितनी है। यह देखा गया है कि यह संख्या संयोग करने वाले तात्त्विक परमाणुओं की प्रकृति पर निर्भर होती है। इसको अधिकतम समपदस्थापन (coordination) संख्या की संज्ञा दी गयी है। अब तक यह संख्या ४, ६ और ८ पायी गयी है। सैद्धांतिक रूप से सममित व्यवस्था बनाने के लिए (जिसमें केन्द्रीय परमाणु से वे सब बिन्दु एक ही दूरी पर

1. Les Prix Nobel en 1913 से अनूदित।

रहें) जिस संख्या की आवश्यकता होती है उससे यह संख्या मिलती है। तब भी संकुल रासायनिक यौगिकों की रचना सदैव इस प्रकार की नहीं होती, जिससे अधिकतम समपदस्थापन संख्या मेल खा सके क्योंकि जिस प्रकार संयोजकता–असंतृप्त परमाणु होते हैं, उसी प्रकार समपदस्थापन–असंतृप्त परमाणु भी होते हैं।

"हाल के ही अन्वेषणों से ज्ञात हुआ है कि मुख्य संयोजकता principal valences (जिससे प्रथम श्रेणी के बंधक बनते हैं) और सहायक संयोजकता (auxiliary valences) में (मेरे द्वारा रखा गया संकुल यौगिकों को बनाने वाली संयोजकता का नाम) कोई विशेष भेद नहीं होता। अणु में जिस मज़बूती से परमाणु जुड़े होते हैं, उसके लिए इन दोनों संयोजकताओं का महत्त्व बिलकुल एक है।

"अभी तक हमने संकुल यौगिक के परमाणुओं की बंधुता के संबंधों पर विचार किया है, अणुओं में इन परमाणुओं के सापेक्ष स्थान पर अभी विचार नहीं किया गया है। प्रश्न यह है कि ६ समूह (क) केन्द्रीय धातु परमाणु (धा) से (देश में) किस प्रकार की व्यवस्था करके संकुल मूलक धा का ६ बनाते हैं। इस प्रश्न का उत्तर वस्तुतः पायी गयी समावयवताओं (isomerisms) की विभिन्न देशीय व्यवस्थाओं की तुलना करके प्रायोगिक विधि से दिया गया है।

"समावयवता पहले प्लैटिनम श्रेणी में पायी गयी और बाद में कोबाल्ट श्रेणी में। समावयवता की व्याख्या के लिए कई वर्षों तक कार्य करना पड़ा। आज हमें समावयवता के वर्णन सहित कोबाल्ट की २० विभिन्न श्रेणियाँ ज्ञात हैं। क्रोमियम के लिए इसी प्रकार की समावयवता पी० फ़ाइफ़र द्वारा सिद्ध की गयी है। समावयव यौगिकों के गुण-धर्मों में विभिन्नता इतनी अधिक है कि कभी-कभी उनको केवल देखकर ही पहचाना जा सकता है।

"यदि केन्द्रीय धातु परमाणु से संयोग करने वाले ६ समूह एक से नहीं होते तो दर्पण-प्रतिबिंब से न मिलने वाली विभिन्न आणव रचनाओं को बनाया जा सकता है। इन रचनाओं को देखकर यह आशा की जा सकती है कि इन समावयवों को प्रकाश-सक्रिय दर्पण प्रतिबिंब रूप में मिलना चाहिए।

"फलतः हमने ऐसे यौगिकों को प्रकाश-सक्रिय समावयवों में पृथक् करने का प्रयास किया। कई दशाओं में वस्तुतः ऐसा किया जा सका। अभी हाल में ही हमने सक्रिय रूपों को पृथक् किया और इस प्रकार धातु–तृ-आक्सैलिक अम्लों के साधारण सूत्रों को निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया—

$[Co(C_2O_4)_3]\ R_3$; $[Cr\ (C_2O_4)_3]\ R_3$; $[Rh\ (C_2O_4)_3]\ R_3$"
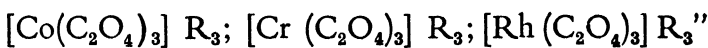
सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

रसायन के कुछ प्रत्यय बड़े दृढ़ बन चुके थे। वर्नर के सिद्धांतों ने इनसे ऊपर उठकर रसायन-ज्ञान में वृद्धि की। कुछ परिस्थितियों में, जैसा आपने प्राथमिक एवं सहायक संयोजकता के भेद करने में किया, आपको समझौता करना पड़ा। जब आपने रूढ़ि अनुसार एक संयोजक हाइड्रोजन परमाणु की कई संयोजकताएँ मानीं तो उस समय के केवल इने-गिने रसायनज्ञ ही आपकी बात मानने को तैयार थे। हाल के अन्वेषणों से वर्नर का सिद्धांत एक दूसरी दिशा से सिद्ध हुआ है। लाइनस पाउलिंग (Linus Pauling) के शब्दों में—"हाल के कुछ वर्षों में यह ज्ञात हुआ है कि कुछ परिस्थितियों में हाइड्रोजन का एक परमाणु एक परमाणु नहीं, प्रत्युत दो परमाणुओं की ओर तीव्र बल से आकृष्ट होता है। इसलिए इसको दोनों परमाणुओं का बंधक समझना चाहिए। यह 'हाइड्रोजन' बंधक कहलाता है।

"अकार्बनिक रसायन के ढाँचे पर ही कार्बनिक रसायन का विकास हुआ है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अकार्बनिक रसायन में जो विशेष रुचि दिखायी जाती थी वह शताब्दी के अंत तक प्रायः समाप्त हो चुकी थी। वर्नर के कार्य से इस क्षेत्र में नये कार्य के लिए काफ़ी प्रेरणा मिली और शीघ्र ही कार्बनिक रसायन ने अपनी बहिन अकार्बनिक रसायन की सहायता की। अंतरिक्ष (space) में रखे अणु में परमाणुओं की व्यवस्था विन्यास समावयवता (stereochemistry) का विषय है। अकार्बनिक रसायन में यह एक नया विभाग बन गया।

नये प्रायोगिक अनुभव से अनेक खनिजों में संकुल यौगिक पाये गये। अकर्बनिक रसायन में नये प्रत्ययों के विकास द्वारा खनिजों से तत्त्वों को निकालने की नयी विधियों को ज्ञात किया गया। स्वर्ण और प्लैटिनम धातुओं को बनाने की विधियों में भी संशोधन हुआ।

१९१४

थियोडोर विलियम रिचर्ड्स (Theodore William Richards)

(१८६८-१९२८)

"अनेक रासायनिक तत्त्वों के बिलकुल ठीक परमाणु-भार को ज्ञात करने के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

थियोडोर विलियम रिचर्ड्स का जन्म जर्मन टाउन पा में हुआ था। आपके पिता चित्रकार थे और आपकी माता कवयित्री। बालक शीघ्र ही रासायनिक प्रयोगों का चित्रकार सिद्ध हुआ। आपने हार्वर्ड में अध्ययन किया, जहाँ प्रोफेसर जोसियाह पार्सन्स कुक (Josiah Parsons Cooke) ने आक्सिजन का परमाणु-भार फिर से ज्ञात करने का सूक्ष्म एवं कठिन कार्य आपको सौंपा। आपने इसके लिए १५.८६९ का मान निकाला, इसमें हाइड्रोजन को इकाई मानने पर धन अथवा ऋण ०.००१७ की त्रुटि हो सकती थी। डाक्टर की उपाधि के लिए १८८८ में लिखी गयी थीसिस का यही विषय था। आपने जर्मनी में अध्ययन पूरा किया। १८९४ में सहायक आचार्य होकर आप हार्वर्ड लौट आये। १९०१ में गाटिन्गेन विश्वविद्यालय ने आपको आचार्य बनाना चाहा, पर आपने उसे अस्वीकार कर दिया। इस पर हार्वर्ड विश्वविद्यालय ने ही आपको आचार्य बना दिया। अब आपको अध्यापन में कम समय देना पड़ता था।

परमाणु-भार निकालने एवं दहन तथा निराकरण के उष्मा-मान को उच्चतम यथार्थता से निकालने के कारण पहले के स्वीकृत मापनों में अनेक परिवर्त्तन हुए। जब म्यूनिख में के० फ़ायां (K. Fajans) को साधारण खनिजों से एवं यूरेनियम तत्त्वांतरण (transformation) से प्राप्त सीसे के परमाणु-भार की तुलना की आवश्यकता पड़ी तो आपने (१९१३) में रिचर्ड्स को उनके सैम्पुल (sample) भेजे। रिचर्ड्स ने इस अन्वेषण का विस्तार विभिन्न स्रोतों एवं भूगर्भ की विभिन्न पृष्ठभूमि से प्राप्त तत्त्वों के परमाणु-भार को निकाल कर किया। आपके ही शब्दों में "बिलकुल यथार्थ रासायनिक अथवा भौतिक रासायनिक मापन की सफलता के लिए

यह आवश्यक है कि पदार्थ और विधि का चयन इस प्रकार किया जाये कि (जहाँ तक सम्भव हो सके) उसी प्रकार के समान प्रयोगों को करके भौतिक अथवा रासायनिक त्रुटियों को अधिकतम बचाया जाये। ऐसा चयन करने के लिए काफ़ी पढ़ना पड़ता है और काफ़ी दिमाग़ भी लगाना पड़ता है। सावधानियाँ भी ऐसी होनी चाहिए जिनसे कि प्रायोगिक सूक्ष्मता एक स्तर की रह सके। परिस्थितियों का सोच समझ कर ठीक चुनाव प्रयोग को यांत्रिक विधि से करने की अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यक है, यद्यपि प्रयोग करना भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।"

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[1] का विवरण

"जलयोजित केलासों के अवस्थान्तर (transition) ताप के निर्धारण के लिए सोडियम ब्रोमाइड को बहुत अधिक शुद्ध रूप में तैयार किया गया है। यह अवस्थान्तर ताप, विशेषकर ऐसे पदार्थ का जिसकी अवस्थान्तर ऊष्मा कम है, थोड़ी-सी ही अशुद्धि से बहुत बदल जाता है। प्रयोगशाला के निश्चित कार्यक्रम के अनुसार इस सोडियम ब्रोमाइड का, जो बिलकुल स्थिर अवस्थान्तर बिन्दु देती थी, विश्लेषण किया गया। स्टास द्वारा दिये गये परमाणु-भार से जितनी ब्रोमीन निकलनी चाहिए थी उससे कहीं अधिक ब्रोमीन निकली। इससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। इसकी युक्तिसंगत व्याख्या केवल एक थी और वह यह कि स्टास द्वारा दिये गये सोडियम के परमाणु-भार का मान बहुत अधिक था। इस प्रकार के क्रांतिकारी निष्कर्ष को निकालने के पहले इस तथ्य का दूसरी विधियों से दृढ़ करना आवश्यक था। विशेषतया, स्टास का सोडियम क्लोराइड वाला प्रयोग अवश्य दुहराना चाहिए था, क्योंकि सोडियम क्लोराइड मुख्य पदार्थ था, जिस पर आप द्वारा दिया गया सोडियम का परमाणु-भार आधारित था। इस पर शोध-कार्य सरल नहीं था क्योंकि इसके लिए संपूर्ण रसायन क्षेत्र में अधिकतम सावधानियों से किये गये प्रयोगों के परिणामों का बहिष्कार करना पड़ता था। अतः अति सावधानी और असाधारण होशियारी से ये प्रयोग करने पड़ते थे। इसकी कहानी लम्बी है और उसको यहाँ केवल संक्षेप में ही सुनाया जा सकता है। हमने ज्ञात किया कि केवल सोडियम के परमाणु-भार में ही नहीं, प्रत्युत क्लोरीन के परमाणुभार में भी त्रुटि थी; वस्तुतः क्लोरीन की त्रुटि अंशतः सोडियम के कारण ही थी, क्योंकि स्टास ने जिस रजत का प्रयोग किया था उसमें अप्रत्याशित रूप से कुछ अशुद्धियाँ थीं। फलतः दी हुई धातु से आपको जितनी रजत क्लोराइड मिलनी चाहिए थी, उसकी

1. Les Prix Nobel en 1914-18 से अनूदित।

अपेक्षा कम मिलती थी। इससे क्लोरीन का परमाणु-भार आपने काफ़ी कम निकाला; स्पष्ट है कि सोडियम और रजत का परमाणु-भार काफ़ी अधिक हो गया होगा। स्टास की विधि में रजत क्लोराइड का अवक्षेपण गलित सोडियम क्लोराइड को रजत नाइट्रेट के घोल में रख कर किया गया था। इससे अवक्षेप में अशुद्धि की वृद्धि हो जाती थी; अतः रजत के लिए मान और बढ़ जाता था। किन्तु ये तो प्रयोग की सूक्ष्म बातें हैं दूसरों ने कई विधियों से क्लोरीन के परमाणु-भार के अधिक मान को ठीक ठहराया है।

"मेरे दूसरे कार्य की एक नयी विधि थी और समस्या भी कुछ-कुछ नयी थी। मैंने लिथियम पर क्लोरेट के विश्लेषण द्वारा लिथियम और रजत की सीधे आक्सिजन से तुलना की और लिथियम क्लोराइड से रजत द्वारा सीधे रजत क्लोराइड प्राप्त की। इन दोनों प्रक्रियाओं से क्लोरीन और आक्सिजन की तुलना की नयी विधि निकली— इस विधि को ज्ञात करने की मैं बड़ी कोशिश में था, क्योंकि अनेक परमाणु-भार रजत की सहायता से प्राप्त किये जाते हैं; किन्तु उनका मान आक्सिजन के सापेक्ष मानों से व्यक्त किया जाता है।

"वर्षों पूर्व मेरे साथी ग्रिगरी पी० बैक्स्टर (Gregory P. Baxter) और मैंने पार्थिव (terrestrial) लोह के परमाणु-भार पर कार्य किया था। उस समय हम लोगों ने इसका जो मान निकला था वह उस समय के स्वीकृत मान से कम था। हम लोग यह जानने के लिए सदैव उत्सुक रहते थे किप रमाणु-भार सदैव स्थिर होते हैं या नहीं, इस कौतूहल में कभी कमी नहीं हुई। मैं सोचा करता था कि उल्काओं में पाये जाने वाले लोह का, जिसकी उत्पत्ति कदाचित् इस सौर परिवार के बाहर हुई हो, परमाणुभार यहाँ के लोह के परमाणुभार से मिलता है या नहीं। बैक्स्टर ने कृपा करके इस पर अन्वेषण करना स्वीकार किया। पृथ्वी पर पिघलाये लोह के परमाणु-भार निर्धारण में काम आयी उन्हीं विधियों को उल्काओं के लोहे में लगाने से आपने बिलकुल सरलतापूर्वक दिखाया कि दोनों के परमाणु-भार बिलकुल एक होते हैं। इसका निष्कर्ष जो आशा के विपरीत नहीं है, यह है कि सारा ब्रह्मांड एक है। जो इस विचार के महत्त्व को कुछ अनुभूति के साथ समझते हैं उनके लिए इस तथ्य का ज्ञान बड़ा रोचक है और इससे उनमें रोमाञ्च होने लगता है।

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

रिचर्ड्स महोदय ने विधियों को अधिक यथार्थ बनाकर तीन दशमलव तक बिलकुल ठीक परमाणु-भार ज्ञात किये। यहाँ कदाचित् यह विचित्र जान पड़े कि उपर्युक्त

कार्य ऐसे समय में किया गया था, जबकि परमाणु-भार की पूर्ण स्थिरता के विचार का कोई अर्थ न था। यह विज्ञान के इतिहास में ऐसा उदाहरण था जब कि इस प्रत्यक्ष विरोध के महत्त्वपूर्ण परिणाम हुए। जब तक प्रयोग इस दशा पर पहुँचता है कि उससे एक वैज्ञानिक विचार की भली प्रकार से जाँच की जा सके तब तक उस विचार में ही कभी-कभी परिवर्त्तन हो जाते हैं। क्योंकि रिचर्ड्स बड़ी सूक्ष्मता एवं विश्वसनीयता से परमाणु-भार निर्धारण में सफल हुए थे, अतः यह सिद्ध किया जा सकता था कि एक तत्त्व के परमाणु कई प्रकार के हो सकते हैं, भार के अतिरिक्त इनके सब गुणधर्म एक होते हैं। यूरेनियम के रेडियमधर्मी रूपान्तर से प्राप्त तत्त्व का परमाणुभार २०६ होता है। यह २०७.२१ परमाणुभार वाले सीसे से रासायनिक रूप से मिलता है। इस प्रकार का सीसा उसका समस्थानिक (isotope) (देखिए पृ० ८३) होता है।

रिचर्ड्स के अन्वेषणों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अन्वेषण हाइड्रोजन और आक्सिजन संबंधी था। जब १९२९ में यह ज्ञात हुआ कि आक्सिजन के समस्थानिक होते हैं तो बिलकुल ठीक विधियों से ज्ञात हाइड्रोजन के परमाणु-भार के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला गया कि भारी हाइड्रोजन का भी अस्तित्व है (१९३४ का विवरण)।

अंतर्देशीय वैज्ञानिक सहयोग के लिए सबसे पहली बार परमाणु-भार के लिए अंतर्देशीय समिति बनी। यह परमाणु-भारों के आलोचनात्मक पुर्नविचार के लिए बनायी गयी थी, जिससे एक मान वाले परमाणु-भारों की तालिका बनायी जा सके। यह संघटन स्वीकृत मानों को तालिका रूप में प्रति वर्ष प्रकाशित करता है। बाद में, इस तालिका में समस्थानिक भी जोड़ लिये गये। यह संघटन दो विश्व-युद्धों के बाद आज भी जीवित है।

१६१५

रिचर्ड विल्सटैटर (Richard Willstatter)

(१८७२–१६४२)

"वनस्पति-जगत् में रंग द्रव्यों, विशेषतया क्लोरोफ़िल की शोध के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

रिचर्ड विलसटैटर का जन्म कार्ल्सरुहे, बादेन, जर्मनी में हुआ था। आपने वहीं के और न्यूरेम्बर्ग के स्कूल में शिक्षा प्राप्त की। गणित, साहित्य, भाषाओं–सब विषयों में आप तेज थे। अपनी जीवनी में आपने अपने बारे में लिखा है, "एक विषय की ओर स्वाभाविक योग्यता, विशेष करके एकमुखी स्वाभाविक योग्यता की, मुझमें कमी थी, मुझे महत्वपूर्ण दशकों (decades) में एकमुख होकर कार्य करने की क्षमता का आंशिक विकास करना पड़ा।" अध्ययन के लिए आपने रसायन-विज्ञान चुना। कायिकी और औषध-विज्ञान में आपकी विशेष रुचि का परिचय आपके बाद के कार्य में मिलता है। म्यूनिख़ में कोर्स समाप्त करने के पश्चात् एलकेलाइड रसायन की ओर आल्फ़्रेड आइनहार्न (Alfred Einhorn) द्वारा आपका ध्यान आकर्षित किया गया। बहुत वर्षों तक शोध करके विलसटैटर ने ट्रोपीन की, जो ऐट्रोपीन के अणु का मुख्य भाग है, रासायनिक रचना को स्पष्ट किया। आपने बेंज़ीन और नैपथलीन के यौगिकों के आक्सीकरण से प्राप्त बीच के थोड़ी देर के लिए स्थायी यौगिकों को पृथक् करने की विधियाँ ज्ञात कीं। इससे आप ऐनिलिन के आक्सीकरण से प्राप्त काले रंग की रासायनिक व्याख्या करने में समर्थ हुए।

१९०२ में आप म्यूनिख में सहायक आचार्य हुए। १९०५ में जूरिख के आचार्य पद को स्वीकार करने के लिए आपने म्यूनिख़ छोड़ दिया। यहाँ आपने क्लोरोफ़िल पर कार्य करना आरम्भ किया। पहले धीरे-धीरे अम्ल द्वारा और बाद में क्षार द्वारा इसके अणुको तोड़ना आपका मुख्य ध्येय था। इस प्रकार से बने हुए यौगिकों को प्राप्त करके आप उनका परिचय प्राप्त करना चाहते थे। क्लोरोफ़िल में लगभग तीन

प्रतिशत मैग्नीशियम प्राप्त हुआ। यह रासायनिक बंधकों से नाइट्रोजन के चार परमाणुओं से जुड़ा हुआ था। ये परमाणु कार्बन परमाणुओं के साथ स्वयं घेरा बनाते थे। विल्सटैटर ने बाद में ज्ञात किया कि रक्त के लाल रंग द्रव्य के अणु–हीमोग्लाबिन–में लोह परमाणु इसी प्रकार व्यवस्थित था।

यदि पौधे के सब मुख्य अवयवों का वास्तविक रासायनिक अध्ययन करना है तो जीवित पौधे को प्रयोगशाला में लाना आवश्यक है। अन्वेषण विधियों को सूक्ष्म बनाना था जिनसे पौधे द्वारा किये गये रासायनिक परिवर्तनों की नक़ल की जा सके। विल्सटैटर ने इस सिद्धांत की घोषणा की और रंग द्रव्यों तथा एंज़ाइम पर किये गये अपने कार्य में इसी का अनुसरण किया।

प्रथम विश्व-युद्ध के कारण इस कार्य में कुछ व्याघात हुआ। १९११ में बर्लिन-डाह्लेम के विलहेल्म इंस्टीट्यूट में कैसर द्वारा बुलाये जाने पर विल्सटैटर वहाँ चले गये। १९१६ में आप म्यूनिख़ लौट आये। इस बीच में आप केवल २० मास तक ही शोध-कार्य कर सके। आपने गैस से अच्छी तरह से बचने के लिए तीन पर्तों के अवशोषक वाली एक गैस नक़ाब (Gas mask) निकाली। यह १९११–१९१६ तक किये गये कार्य की अद्भुत सफलता थी।

१९१७ के बाद के शोधित विषयों में ऐसिमिलेशन (स्वीकरण) की विधि से आपने कार्य आरम्भ किया। अब आपने एन्ज़ाइम प्रक्रिया के रसायन को समझने का प्रयास किया। इसका क्रमबद्ध अध्ययन आपने ज़ूरिख में ही आरम्भ कर दिया था। शर्करा को तोड़ने वाला एन्ज़ाइम–सैकेरेज़–शुष्क यीस्ट, जिसमें वह पाया जाता था, की अपेक्षा ४००० गुना अधिक शुद्ध दशा में प्राप्त किया गया। सूखे पौधे की जड़ से प्राप्त आक्सिजन को तोड़ने वाले एन्ज़ाइम–पर–आक्सिडेज़ को पौधे की सक्रियता से १२००० गुना अधिक सक्रिय रूप में प्राप्त किया गया। जीवशास्त्र के अनुसार कुछ अस्पष्ट, किन्तु प्रचलित व्याख्या का इस प्रकार का रासायनिक ज्ञान प्राप्त करना विल्सटैटर की महान् सफलता थी।

१९२४ में आचार्य पद (म्यूनिख़) से आपने विश्वविद्यालय की सेमिटिक विरोधी शक्तियों के प्रतिरोध में त्यागपत्र दे दिया। तब भी रासायनिक उद्योग संबंधी शोध में और व्यावसायिक संघटनों की सहायता में आप संलग्न रहे। आपने औषध-उपयोगी निद्राजनक एर्वाटिन को निकाला। नात्सी शासन की कठिनाइयों ने आपका हृदय विदीर्ण कर दिया और १९३९ में आप जर्मनी छोड़ कर स्विट्ज़रलैंड चले गये।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[1] का विवरण

"जिन लक्षणों से किसी प्रकार की पत्ती के रंग-द्रव्यों की तुलना की जाती है उन्हीं की सहायता से हम यह जानने में समर्थ हुए कि प्रयोग-शाला में बनायी गयी क्लोरोफ़िल के अणु में सूक्ष्म परिवर्तन होते हैं या नहीं। अतः ये लक्षण क्लोरोफिल को शुद्ध और अहानिकर रूप में बनाने के, एवं उसके विश्लेषण से प्राप्त पहले के अन्वेषणों द्वारा ज्ञात उन यौगिकों के निष्कर्ष को दृढ़ करने के, आधार थे। कई अमिश्र्य (immiscible) विलायकों जैसे पेट्रोलियम ईथर और जलीय ऐलकोहल के बीच में वितरण (distribution) की विधियों से विलयनों की शुद्धता के अंश धीरे-धीरे बढ़ाये जाते थे और इनको जानने के लिए रंगमापी (colorimetric) मापनों का विश्वास करना पड़ता था। इस विधि से पत्तियों के पीले रंग और मिश्रित रंगहीन द्रव्यों को पृथक् किया गया। ये पीले रंग, जो कैरोटिन्वायड (carotinoid) कहलाते हैं, आक्सिजन से काफ़ी बंधुता दिखाने के कारण स्पष्ट हो जाते हैं। इन रंगों के पत्ती के हरे रंग के साथ होने से कायिकी में इनका विशेष महत्त्व जान पड़ता है। फलतः इन पीले पदार्थों को भी शुद्ध रूप में तैयार किया गया और इनका विश्लेषण किया गया। पौधे के हर हरे भाग में और अनेक पीले भागों में आसानी से केलास बनने वाले नाइट्रोजन रहित दो रंगद्रव्य पाये जाते हैं। एक तो बहुत समय से ज्ञात गाजर के कैरोटीन से मिलता है। इसका सूत्र $C_{40}H_{56}$ है। इसका साथी पर्णपीत (xanthophyll) पदार्थ रूप में पहले ज्ञात नहीं था यद्यपि यह पत्तियों में अधिकांश रूप में पाया जाता है। रचना और गुणधर्मों के अनुसार यह कैरोटीन का आक्साइड $C_4O\ H_{56}O_2$ है। केवल फ़ियोफायसी में कैरोटीन और पर्णपीत के साथ एक तीसरा कैरोटिन्वायड, फ्यूकोज़ैंथिन होता है। इसके कारण पहले दो रंगद्रव्य दब से जाते हैं। फ्यूकोज़ैंथिन को केलास रूप में प्राप्त किया गया है। इसका सूत्र $C_{40}H_{56}O_6$ है।

"क्लोरोफ़िल के भार से ८–१५ गुना अधिक अन्य पदार्थ पौधे के सार (extract) में होते हैं। किन्तु विभाजन (partition) विधियों से ७० प्रतिशत शुद्ध क्लोरोफ़िल वाले सार को बनाया जा सकता है। यहाँ पर एक आश्चर्यजनक परीक्षण हुआ। इससे समस्या हल करने में सुविधा हुई। जब यह पदार्थ शुद्धता के विशेष अंश तक पहुँच जाता है तो इसके सच्चे विलयन संबंध प्रकट हो जाते हैं। ये संबध पहले के मिश्रित पदार्थों की उपस्थिति में अस्पष्ट रहते हैं। शुद्ध क्लोरोफ़िल पेट्रोलियम ईथर में विलेय

१. Les Prix Nobel en 1914--1918 से अनूदित।

नहीं है और ऐलकोहलीय विलयन में ऐलकोहल को धोने पर पृथक् हो जाती है। इस विधि से सूखी अथवा ताजी पत्तियों से, पौधे के अन्य पदार्थों, जैसे शर्करा अथवा ऐलकेलाइड की भाँति, शुद्ध क्लोरीफ़िल को काफ़ी मात्रा में तैयार किया जा सकता है।

"इस प्रकार प्राप्त शुद्ध क्लोरोफ़िल अब भी समांग (uniform) पदार्थ नहीं हैं। (इसमें नीली-हरी क्लोरोफ़िल—क—और पीली हरी क्लोरोफ़िल—ख— के क्रमशः ३ और १ अणु होते हैं।)

"क्लोरोफ़िल अर्थात् उसके दोनों अवयव कलिल (colloid) दशा में कार्बन-द्वि-आक्साइड के साथ संयुक्त-यौगिक बनाते हैं। यह यौगिक विच्छेदित हो सकता है। इस परीक्षण से ऐसिमिलेशन के नये सिद्धांत का आधार बन सकता है। इसके अनुसार प्रकाश अवशोषित होकर क्लोरोफ़िल अणु के साथ स्वयं कार्य करता है, इस अणु में कार्बन—द्वि—आक्साइड मैग्नीशियम संकुल के साथ आंशिक रूप से पहले ही जुड़ चुकी होती है। कार्बन-द्वि-आक्साइड की संयोजकता की पुनर्व्यवस्था से रासायनिक प्रक्रिया होती है। इससे स्वतः विच्छेदन होता है; यह इस प्रकार होता है जिससे कार्बन-द्वि-आक्साइड की सारी आक्सिजन, गैस रूप में निकल आती है।

"ऐन्थोसायेनिनों का शुद्ध रूप में पृथक्करण और उनका विश्लेषण उनकी मूल प्रकृति पर आधारित है। यह अच्छे केलासीय लवणों को हाइड्रोक्लोरिक अथवा पिकरिक अम्ल की सहायता से तैयार करके संभव हो सका है। इसके अम्लीय यौगिक लाल होते हैं और क्षारीय यौगिक नीले। इसके बैंजनी उदासीन यौगिकों को उनके आंतरिक लवण (inner salts) फ़िनोल बिटेन्स समझना चाहिए। इन्हीं यौगिकों के विभिन्न मात्राओं में होने से पुष्पों के विविध रंग होते हैं।

"ऐन्थोसायेनिन ग्लूकोसाइड सिद्ध हुए, जिनमें वास्तविक रंग-द्रव्य फ़िनालिक हाइड्राक्सिल समूह के यौगिक एक या दो (कभी-कभी और अधिक) शर्कराओं, जैसे द्राक्षाशर्करा, गैलेक्टोज़ और र्‌हैमोज़ से जुड़े होते हैं।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

रंग-द्रव्यों को पत्तियों से नयी विधियों द्वारा पृथक् किया गया। उनकी अणु-रचना के अन्वेषण से रासायनिक रचना के नये सिद्धांत प्रकट हुए। इनमें से एक विधि मिखाइल स्वेट (Mikhail Tswett) के पूर्व-आविष्कार पर आधारित थी। स्वेट ने पत्ती के सार वाले विलयन को कैलसियम कार्बोनेट चूर्ण से भरी एक शीशे की नली में से छाना और यह देखा कि छनित में केवल कैरोटीन आये, बाकी सब विलेय पदार्थ

चूर्ण की सतह पर ही रुक गये। अधिशोषण की सूक्ष्म शक्तियों का प्रयोग करके मिश्रण के पृथक्करण के लिए यह एक नयी विधि थी। विल्सटैटर ने इस विधि को और सूक्ष्म बनाया। अधिशोषण करने वाले नये द्रव्य बनाये गये और ऐसे विलायकों का चयन किया गया जिनसे सबसे अच्छे परिणाम निकलते थे। प्रयोगशाला और उत्पादन के साज़-सामानों में आज कल इस विधि—क्रोमैटोग्राफ़ी—के बिना काम नहीं चलता।

क्लोरोफ़िल की विशिष्ट संवेदनशीलताओं (sensitivities), अशुद्धियों का उसकी विलेयता पर प्रभाव, पत्ती में उपस्थित विशेष एन्ज़ाइम के वातावरण में एथिल ऐलकोहल के साथ उसकी प्रतिक्रिया, दूसरी धातुओं द्वारा मैग्नीशियम को जिस सरलता से हटाया जा सकता है और उसका प्रतिस्थापन हो सकता है—इन सबके ज्ञान से इस पदार्थ की टेक्निकल तैयारी की विधि का संशोधन किया जा सका है। इसके व्यापारिक उत्पादन के समय इस पदार्थ के विशेष उपयोगी गुणधर्मों की, जिनका औषध रूप में बड़ा महत्त्व है, रक्षा की जा सकी है।

जब तक यह नहीं मालूम हुआ कि विटामिन ए से इसका निकट संबंध है तब तक कैरोटिन्वायड प्रयोगशालाओं की केवल कौतूहलता रही। वृद्धिवर्धक इस विटामिन के बनने के पहले गाजर में पायी जाने वाली एक कैरोटीन बनती है और मानव प्राणियों में वृद्धि-वर्धक के रूप में इसका प्रयोग होता है।

विलयनों की अम्लीय अथवा क्षारीय प्रकृति को बताने के लिए फूलों की पँखुड़ियों के सार का रंग-परिवर्तन के कारण प्रयोगशाला में उपयोग होता था। विल्सटैटर के कार्य से इस उपयोग का रासायनिक आधार स्पष्ट हुआ और इसके साथ-साथ फूल के रंगद्रव्यों—ऐन्थोसायेनिन—का व्यापक रूप भी स्पष्ट हुआ।

(१९१६–१९१७)

कोई पुरस्कार नहीं दिया गया

१९१८

फ्रिट्ज़ हाबेर (Fritz Haber)

(१८६८--१९३४)

"नाइट्रोजन और हाइड्रोजन तत्वों से अमोनिया के संश्लेषण के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

अपनी जन्मभूमि ब्रेसलाऊ में अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् फ्रिट्ज़ हाबेर ने अपने पिता के व्यापार को चलाने का असफल प्रयास किया। तब एक मित्र के कहने पर आप कार्ल्सरूहे चले गये। वहाँ के टेक्नीशे होखशूले नामक विश्वविद्यालय में टेक्निकल पदों के लिए विद्यार्थियों को तैयार किया जाता था। उद्योग और विज्ञान के इस संबंध को आपने पसंद किया। १८९३ में आपने उच्च ताप विश्लेषण (Pyrolysis) द्वारा कार्बनिक यौगिकों के विच्छेदन पर कार्य आरम्भ किया। उस समय के अग्रतम फ्रांसीसी रसायनज्ञ मार्सेलिन बर्थेलो (Marcelin Berthelot) इस पर काम कर चुके थे। विशेष अध्ययन से आपने बर्थेलो के स्वेच्छाचारी (arbitrary) व्यापक सिद्धांतों में सुधार किया। उच्चताप विश्लेषण वाली प्रतिक्रियाओं पर आप जीवन-पर्यंत कार्य कर सकते थे तथापि कार्बनिक पदार्थों पर विद्युत्-प्रभाव की ओर आप आकर्षित हुए। कार्य के इन दो क्षेत्रों में गैस-प्रतिक्रियाओं और रासायनिक ऊर्जा विज्ञान (energetics) द्वारा संबंध स्थापित होता था। वालथर नर्न्सट (Walther Nernst) ने उन्हीं दिनों में इस सिद्धांत का विकास किया था—जब गैसें निकलती हैं तो वैद्युत रासायनिक चालक बल, (electrochemical driving force) विद्युदग्र (धातु जिससे विलयन में विद्युत्-धारा प्रवेश करती है) की चारों ओर की गैस के प्रभावात्मक (effective) सांद्रण पर निर्भर होता है। इस चालक बल वोल्टता, विशेषतया रासायनिक प्रतिक्रियाओं को नियमित करके यह दिखाया गया कि ये प्रतिक्रियाएँ कई क्रमों (steps) में होती हैं। नाइट्रोबेंज़ीन का ऐनिलिन में अवकरण (reduction) जिसमें नाइट्रोबेंज़ीन के दो आक्सीजन परमाणु दो हाइड्रोजन

परमाणुओं से क्रमशः बदल जाते हैं, ऐसा उदाहरण है जो टेक्निकल दृष्टिकोण से उपर्युक्त प्रक्रिया का द्योतक है।

इस सफलता के पश्चात् हाबेर ने टेक्निकल विद्युत्-रसायन के पूरे क्षेत्र और उसके वैज्ञानिक आधार पर एक पुस्तक लिखी। इसी प्रकार गैस प्रतिक्रियाओं में ऊर्जा संबंधों पर पुस्तक लिखकर आपने विज्ञान और टेक्निकल ज्ञान को मिलाया।

अपने कार्य की ख्याति की हाबेर को बहुत समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी; अपने होखशूले (Hochschule) में ही आप १९०६ में आचार्य हो गये। इस समय तक आप उसके तत्त्वों के विश्लेषण से अमोनिया के संश्लेषण की संभावना पर कार्य आरम्भ कर चुके थे। कार्ल एंग्लर ने (Karl Engler), जो उस समय के टेक्निकल रासायनिक विज्ञान के अग्रतम पुरुष थे, पास के लुडविग्सहाफ़ेन में स्थित बाडिशे ऐनिलिन उंड सोडा फ़ाब्रीक को (जो बाद में आई० जी० बनी) इस विषय में रुचि लेने को कहा। २ जुलाई १९०९ को कार्ल बाश (Carl Bosch) (दे० १९३१ का विवरण) और अल्विन मिट्टाश (Alvin Mittasch) (जन्म १८६९, बी० ए० एस० एफ० के डायरेक्टर) कार्ल्सरूहे में हाबेर और उसके सहायकों द्वारा किये गये १०० ग्राम अमोनिया के संश्लेषण को देखने आये।

जब रसायन के लिए क़ैसर विल्हेल्म इंस्टीट्यूट स्थापित हुआ तो हाबेर उसके पहले डायरेक्टर निर्वाचित हुए। १९११ से लेकर घातक वर्ष १९३३ तक आप बर्लिन-डाह्लेम में रह कर इंस्टीट्यूट के कार्यों का विस्तार और युद्ध-वर्षों में रासायनिक युद्ध के लिए संगठन करते रहे। १९१५ में आपने सबसे पहले गैस (जो क्लोरीन थी) के उपयोग का निर्देशन किया। उसके बाद वाले वर्ष में फ्रांसीसी सेना ने इसका जवाब मृत्युकारक फ़ासजीन से दिया।

१९१९ में हाबेर को याद आयी कि एर्हीनियस (Arrhenius) ने यह गणना की थी कि समुद्र से ८० खरब टन स्वर्ण प्राप्त किया जा सकता है। कुछ थोड़ा स्वर्ण प्राप्त करने के लिए आपने एक यात्रा की आयोजना की; आपने आशा की थी कि रसायन की सहायता से इस प्रकार जर्मनी अपनी क्षति-पूर्त्ति कर सकेगा। किन्तु नतीजा बिलकुल निराशा-जनक हुआ। हृदयविदीर्ण हाबेर ने, रिचर्ड विल्सटैटर के इस असफलता को रोचक पुस्तक में परिवर्त्तित करने के मैत्रीपूर्ण परामर्श को भी ठुकरा दिया।

बाद में आप अपने पुराने काम पर फिर वापस आ गये। उच्चताप और उत्प्रेरकों के प्रभाव द्वारा रासायनिक क्रियाश्रृंखला (chain reactions) संबंधी कार्य को आपने प्रयोगों और विचारों द्वारा अधिक गहन बनाया।

विस्तृत ज्ञान, तीव्र सूक्ष्मदृष्टि और महान् विचारों के अपूर्व सम्मिलन से आप इंस्टीट्यूट में विविध प्रकार के शोध कार्य कराने में समर्थ हुए। आप युवा वैज्ञानिकों में विशेष रुचि लेते थे, जर्मन रसायन के युद्ध पश्चात् पुनरुद्धार में इससे बड़ी सहायता मिली। तब भी १९३३ के जाग्रत जर्मनी में आपके लिए स्थान न था क्योंकि आपका जन्म यहूदी वंश में हुआ था। इससे आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया और आपकी आत्मा का हनन हो गया। देश-निर्वासित के रूप में स्विट्ज़रलैंड में आपका देहावसान हुआ।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[1] का विवरण

"तत्त्वों द्वारा अमोनिया की तैयारी में मेरे साथियों की जो विशेष रुचि है, उसका कारण यह है कि असाधारण विधि से सरल फल की प्राप्ति होती है। अनेक लोगों की इसमें रुचि होने का कारण यह है कि यह विधि आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए इस समय कुछ उपयोगी, वस्तुतः अधिकतम उपयोगी है। जब मैंने ये प्रयोग आरम्भ किये थे तो इस प्रकार की व्यावहारिक उपयोगिता पर मेरा ध्यान नहीं गया था। मेरा निस्संदेह विचार था कि मेरी प्रयोगशाला के कार्य से प्रयोग करने के यंत्रों का ज्ञान और उसके वैज्ञानिक सिद्धांतों का आधार तो प्राप्त हो सकता है, किन्तु व्यापारिक रूप में इसको सफल बनाने के लिए इस ज्ञान में और वृद्धि होनी चाहिए थी।

"संतुलन संबंधी शोध के दौरान में मैंने अमोनिया संश्लेषण पर अपने युवा मित्र एवं सहायक राबर्ट लि रोसिगनाल (Robert Le Rossignol) के साथ १९०८ में कार्य करना आरम्भ किया। ३ वर्ष पूर्व मैंने यह कार्य अधूरा छोड़ दिया था। इस कार्य के आरम्भ के बिलकुल पूर्व ही मैं वायु के द्रवण से परिचित हो चुका था। इसके साथ-साथ मैं फ़ार्मेट उत्पादन के उद्योग से भी परिचित था, जिसमें ताप और दाब से क्षार के साथ बहती हुई कार्बन-एक-आक्साइड (Carbon monoxide) की प्रतिक्रिया होती थी। फलतः उच्च दाब और उच्च ताप में अमोनिया के संश्लेषण को मैं असंभव नहीं समझता था। इस विषय के विशेषज्ञों ने इस संबंध में उलटी सम्मति दी थी। इस कारण इस विषय में टेक्निकल रुचि को जाग्रत करने के लिए पहले प्रभावशाली प्रगति करना आवश्यक थी।

"आरम्भ में यह स्पष्ट था कि उच्च दाब पर प्रतिक्रिया करने से लाभ हो सकता है। इससे संतुलन में अच्छी स्थिति हो जाती थी और इसके साथ-साथ प्रतिक्रिया के वेग में वृद्धि भी होती थी। जो दाबक (compressor) हमारे पास था उससे

1 Les Prix Nobel en 1914--1918 से अनूदित।

गैसों का घनत्व २०० वायुमंडलों तक हो जाता था। इससे यह भी पता चलता था कि प्रयोग की बड़ी श्रेणियों में कितने दाब पर काम करना चाहिए। जिन धातुओं से संतुलन के मापन के समय हम परिचित हो चुके थे—पहले मैंगनीज़ और बाद में लोह से—उनकी उपस्थिति में लगभग इतने ही दाबों पर एवं ७००° सें० पर नाइट्रोजन और हाइड्रोजन तेजी से संयोग करते थे। इसको और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक था कि प्रतिक्रिया ५०० और ६००° सें० के बीच में की जाय। हम लोगों ने आवर्त सारणी के ६ठें, ७वें एवं ८वें समूह में से धातु-उत्प्रेरकों को खोजने का विचार किया। इन समूहों के ऊपर वाले तत्त्व क्रोमियम, मैंगनीज़, लोह, निकल और कोबाल्ट बड़े अच्छे उत्प्रेरक हैं। यूरेनियम और आस्मियम में हमको इच्छित उत्प्रेरक प्राप्त हुआ। इनकी सहायता से २०० वातावरण दाब पर उन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी जिनको हम टेक्निकल दृष्टिकोण से सफल प्रयोग के लिए आवश्यक समझते थे; पहली आवश्यकता का संबंध अमोनिया में (गैस की) मात्रा का था और दूसरी का संपर्क-स्थान (contact space) के प्रति घन सेंटीमीटर में प्रति घंटे बनी अमोनिया की मात्रा से था। १९०५ के पुनश्चक्रीय (recycling) यंत्र में ५ प्रतिशत मात्रा रखकर केवल संयोग विधि को ही नहीं, अपितु अमोनिया तैयारी की एक नवीन विधि को प्रदर्शित किया जा सका। जब कई ग्राम अमोनिया प्रति घंटे की तथा तापित उच्च दाब वाले कई घन सेण्टीमीटर स्थान की उत्पत्ति होती थी तो इस स्थान का विस्तार इतना कम होता था कि हम लोगों के विचार से उद्योग वालों को इस विधि में किसी प्रकार की कमी नहीं दिखाई देनी चाहिए।

"अंततः एक ऐसे पुनश्चक्रीय यंत्र के निर्माण की आवश्यकता पड़ी जो टेक्निकल कार्य के लिए नमूना बन सके।

"जिन विशेषताओं को हमने अपनी प्रयोगशाला में निकाला, उनमें से ये विशेषताएँ अब भी बड़ी मात्रा वाले उत्पादनों में काम में लायी जाती हैं—२०० वातावरण का कामचलाऊ दाब; ५००° से०—६००° सें० तक का कामचलाऊ ताप; उच्च दाब पर ही गैस को फिर से चलाना; और काम में आ चुकी गैस द्वारा काम में आने वाली गैस को ताप देना।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

अठारहवीं शताब्दी के अंत में जब यह ज्ञात हुआ कि अमोनिया, नाइट्रोजन और हाइड्रोजन का यौगिक है, तब से उसके संश्लेषण के लिए प्रयास किये जा रहे थे। नये

प्रयासों से भी इसमें सफलता नहीं मिलती, किन्तु रासायनिक प्रतिक्रियाओं में ऊर्जा सिद्धांत के ज्ञान से केवल इसके संश्लेषण की संभावना ही नहीं प्रकट हुई अपितु इसकी परिस्थितियों को, जिनमें यह प्रतिक्रिया हो सकती थी, पहले से बताना भी संभव हुआ। जब परिस्थितियों वाली भविष्यवाणी ठीक सिद्ध हुई तो इस सिद्धांत की व्यावहारिक उपयोगिता भी स्पष्ट हो गयी। विशेष पात्रों, नलियों, वाल्वों आदि की इसके लिए आवश्यकता थी; अतः ऊँचे दाब की प्रतिक्रियाओं वाली कल-निर्माण-कला (Engineering) एक महत्त्वपूर्ण विषय बन गयी।

हाबेर द्वारा १०० ग्राम संश्लेषित अमोनिया के उत्पादन का प्रदर्शन होने के ४ वर्ष पश्चात् उसका औद्योगिक उत्पादन ६५०० टन (मीटर मान) प्रति वर्ष था। प्रत्येक वर्ष यह संख्या पहले की अपेक्षा दुगुनी होती चली गयी। १९१८ में २००,००० टन अमोनिया बनती थी।

इस संश्लेषण विधि के विकास के आरम्भ से ही इसका दो विभिन्न दिशाओं में उपयोग हुआ—जीवन चलाने में और उसको नष्ट करने में। पौधों के लिए खाद बनाने में अमोनिया का मूल रूप से प्रयोग होता था; इससे अनाज की पैदावार बढ़ी और खाद्य-उत्पादन में भी वृद्धि हुई। नाइट्रिक अम्ल के उत्पादन का भी यह मूल पदार्थ थी; अतः संश्लेषित अमोनिया से बड़े विस्फोटक पदार्थों का बड़ी मात्रा में उत्पादन संभव हुआ—इन पदार्थों का उपयोग खानों के खोदने और खोजने में हुआ; उसके साथ युद्ध-सामग्री के रूप में इससे विनाश भी हुआ।

फ्रांस, इटली और यूनाइटेड स्टेट्स में हाबेर की विधि में महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन होते रहे। इन सब विधियों की सहायता से १९४८ में ५५ लाख टन नाइट्रोजन अमोनिया में परिवर्तित की गयी।

१९१९

कोई पुरस्कार नहीं दिया गया।

१६२०

वाल्थर नर्न्स्ट (Walther Nernstt)

(१८६४-१६४१)

"ऊष्मा-रसायन (Thermochemistry) संबंधी कार्य के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

पश्चिमी प्रशा के ब्रीसेन नगर में वालथर नर्न्स्ट का जन्म हुआ था। १८८७ में वुर्ज़बुर्ग से स्नातक होने के पूर्व आपने भौतिकी और गणित का कई विश्वविद्यालयों में अध्ययन किया। स्नातक होने के लिए आपने ऊष्मित धातु पट्टिकाओं पर चुंबकन द्वारा उत्पादित विद्युत्चालीय (electromotive) बल पर थीसिस लिखी। १८८७ में ग्राज़ में विलहेल्म आस्ट्रवल्ड (पृ० ३६) से मिलने के पश्चात् आपने विद्युत् एवं ऊष्मीय ऊर्जा के संबंध का रासायनिक बंधुता तक विस्तार किया। बाद में आप आस्ट्वल्ड के साथ ही कार्य करने लगे। १८०१ में जब वोल्टा महोदय ने आविष्कार किया था तब से विद्युत् रासायनिक बैटरी के विद्युत्-विभव (potential) अथवा वोल्टता की किस प्रकार व्याख्या की जाय—यह एक विवादास्पद विषय था। नर्न्स्ट ने इसकी बिलकुल स्पष्ट व्याख्या की। आप ने धातु विद्युदग्र को विद्युत् चार्ज युक्त धातु के परमाणुओं का, जिनको फ़ैरडे ने आयन कहा था, भाण्डार (reservoir) समझा। इन आयनों पर धातु का कुछ दाब रहता है। इसको "विलीनीकरण (dissolution) का वैद्युद्विश्लेषिक दाब" कहते हैं। धातु के चारों ओर के विलयन में वही आयन उपस्थित रहते हैं और रसाकर्षण दाब स्थापित करते हैं। जब धातु घुलती है तो विलीनीकरण के दाब से आयन तब तक फैलते हैं जब तक यह दाब विलयन में आयनों के सांद्रण से उत्पन्न रसाकर्षण दाब के बराबर हो जाता है। वोल्टता का यही कारण है और घुलते हुए आयनों के चार्ज से विद्युत्-धारा का प्रवाह होता है।

१८९१ में नर्न्स्ट ने ओ० डेमर की अकार्बनिक रसायन संबंधी पुस्तक की भूमिका के लिए सैद्धांतिक रसायन का सर्वेक्षण या पर्यालोकन (Survey) किया। २ वर्ष बाद आपने इसका पुस्तक रूप में विस्तार किया। पुस्तक का विशेषता सूचक

शीर्षक था—Theoretische Chemie von Standpunkte der Avogadroschen Regel und der Thermodynamik (अवोगाड्रो के नियम एवं ऊष्मा-गतिकी के दृष्टिकोण से सैद्धांतिक रसायन) । आपका विचार था, जैसा कि आपने पुस्तक के प्राक्कथन में लिखा है, भौतिक-रसायनज्ञ वैज्ञानिक के लिए शांत अपितु सफल कार्य-सम्पादन का अब समय आ गया है; अब केवल विचार ही नहीं प्राप्त हैं, किन्तु उनसे निश्चित निष्कर्ष भी प्राप्त किये जा सकते हैं। इस पुस्तक के १९२१ के दसवें संस्करण में आपने लिखा कि आपका विचार ग़लत नहीं था, "सैद्धांतिक भौतिकी से एक ओर तो काफ़ी स्थायी सामग्री मिलती है; दूसरी ओर कुछ ऐसे अनुमान होते हैं जिनमें एक दिन बाद भी परिवर्त्तन किया जा सकता है। मैं या तो स्थायी सामग्री की प्रतीक्षा करता हूँ अथवा अनुमानों को मानने से बिलकुल इनकार कर देता हूँ।" अपनी बड़ी पाठ्य पुस्तक के पहले संस्करण में आपने एम० बर्थेलो (M. Berthelot) द्वारा १८६७ में प्रतिपादित अधिकतम कार्य के सिद्धांत का वर्णन किया था, "बिना बाहरी ऊर्जा की सहायता के जितनी भी रासायनिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं उन सबमें ऐसे पदार्थों के उत्पादन की प्रवृत्ति होती है जिनसे ऊष्मा की अधिकतम मात्रा प्राप्त हो सके।" ऊष्मा-गतिकी के तथाकथित इस तृतीय सिद्धांत को इस समीकरण द्वारा समझाया जा सकता है—यदि 'अ' अधिकतम कार्य है और 'क' प्रतिक्रिया की ऊष्मा तो अ=क। ऊर्जा के दो पुराने सिद्धांतों से स्पष्ट है कि 'अ' और क्रम (system) की संपूर्ण ऊर्जा 'य' के परिवर्त्तन में कुछ भेद अवश्य होना चाहिए और इस प्रकार य=अ—क। नर्न्स्ट ने निष्कर्ष निकाला कि बर्थेलो का सिद्धांत निम्नतम संभावित ताप अर्थात् 'परम शून्य' या-२७३° सें० पर ठीक प्रकार से लगता है। आपने इस सिद्धांत में एक ऐसा 'बीज' देखा, जिसके आवरण को भविष्य में पृथक् किया जा सकता था। १३ वर्ष पश्चात् आपकी यह भविष्यवाणी ठीक सिद्ध हुई; १९०६ में और १९०७ के सिलीमान भाषणों में ऊष्मा के नवीन प्रमेय का विकास हुआ।

"विलयनों के रसायन संबंधी शोध-कार्य संपीड्यता (compressibility)" एवं परमाणु-आयतन के संबंध पर एवं अन्य विषयों के शोध-कार्य में आप टेक्निकल आविष्कारों की अपेक्षा अधिक सफल रहे। नर्न्स्ट लैंप में आपने मिट्टी के पात्र का उपयोग किया था। यदि टैंटेलम एवं टंगस्टन लैंपों का विकास न हुआ होता तो इसकी उपयोगिता बहुत अधिक होती। आपके विद्युतीय पियानो को (जिसमें रेडियो प्रवर्धक को ध्वनिपट — Sounding board — के स्थान में लगाया गया था) गायकों ने नहीं पसंद किया।

१९०५ से आप बर्लिन विश्वविद्यालय में आचार्य रहे; १९२४–१९३३ तक बर्लिन के प्रायोगिक भौतिकी के इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर रहे। इन दोनों पदों पर आपने उद्योग से काफ़ी संपर्क रखा। आप अपनी वैज्ञानिक प्रतिभा से औद्योगिक विकास को भी समझने में समर्थ होते थे। आपका विचार था कि यदि रंटजन ने अपने आविष्कारों को पेटेंट करा लिया होता तो उन्होंने विज्ञान और उद्योग दोनों की और अधिक सेवा की होती।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[1] का विवरण

"अपने शोध-कार्य में सबसे पहले मुझे रासायनिक संतुलन की दशा एवं किसी प्रतिक्रिया में ऊष्मा उत्पादन के संबंधों का स्पष्ट ज्ञान.हुआ, किन्तु ये तभी सत्य होते थे जब ऐसी प्रतिक्रियाओं में तुलना की जाती थी, जिनमें अणुओं की संख्या में परिवर्तन नहीं होता। उदाहरणतया इन दो निम्नलिखित प्रतिक्रियाओं के लिए यह परिवर्तन एक प्रकार का है—

$$Cl_2+H_2=2HCl;\ 2NO=N_2+O_2$$
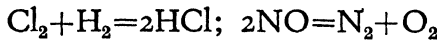
"इन दोनों प्रतिक्रियाओं में अणुओं की संख्या में परिवर्त्तन नहीं होता। सौभाग्यवश, उपर्युक्त दो प्रतिक्रियाओं में ऊष्मा की लगभग समान मात्रा का उत्पादन होता है और इस प्रकार संतुलन की अवस्था भी लगभग एक प्रकार की होती है। जब ऐसी दो प्रतिक्रियाओं की तुलना की जाती है, जिनमें अणुओं की संख्या में परिवर्त्तन हो जाता है, जैसे—

$$2H_2+O_2=2H_2O$$
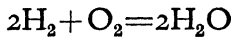
तो उपर्युक्त संबंध इनमें ठीक नहीं ठहरते। ये संबंध पुनः स्थापित हो जाते हैं यदि जल-वाष्प के विच्छेदन की कार्बन-द्वि-आक्साइड के विच्छेदन से तुलना की जाय।

"मैंने इन प्रश्नों के उत्तर के लिए लम्बी और कठिन गणनाएँ कीं और मेरा विचार है कि मैंने "ऊष्मा मापन से रासायनिक संतुलनों की गणना (१९०६) — Calculation of Chemical Equilibria from Thermal Measurements" द्वारा उनको स्पष्ट भी किया। उस समय मैंने जो सीधा नियम निकाला उसको इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है—सब दशाओं में निम्न तापों पर बंधुता और ऊष्मा-उत्पादन एक ही हो जाती है। यह ध्यान रहे कि बंधुता और ऊष्मा-उत्पादन धीरे-धीरे कम होकर परम शून्य पर पहुँच कर एक मान के नहीं होते, प्रत्युत परम शून्य तक पहुँचने

१. Les Prix Nobel en 1920 से अनूदित।

के पहले ही वे बराबर हो जाते हैं; दूसरे शब्दों में इन दोनों के वक्र परमशून्य बिन्दु के पास एक दूसरे से स्पर्श (tangential) करते हैं।

"इस नियम को व्यापक बनाने पर—अर्थात् रासायनिक प्रतिक्रियाओं में ही नहीं, अपितु सब प्रतिक्रियाओं के लिए—हमें एक नवीन ऊष्मा प्रमेय (theorem) मिलता है, जिससे अनेक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं—

"(१) एक प्रक्रम —process— से प्राप्त अधिकतम कार्य की गणना उस प्रक्रम में ऊष्मा-उत्पादन से हो सकती है यदि ऊष्मा-उत्पादन का ज्ञान बहुत निम्न तापों तक है।

"(२) इसको इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है कि किसी एक ताप पर ऊष्मा-उत्पादन और बहुत निम्न तापों के परास (range) में प्रक्रम में काम आने वाले पदार्थों की विशिष्ट ऊष्मा का ज्ञान होना चाहिए।

"(३) विशिष्ट ऊष्माओं को निम्न तापों पर बिलकुल संकलनीय (rigorously additive) होना चाहिए; दूसरे शब्दों में, निम्न तापों पर ऊष्मा-उत्पादन का ताप से कोई संबंध नहीं होना चाहिए।

"प्रकृति का विधान ऐसा है कि उपर्युक्त नियम सब प्राकृतिक प्रक्रमों में लगते हैं, किन्तु रासायनिक प्रतिक्रियाओं के लिए ये विशेष रूप से उपयोगी हैं। जैसा कि भली-भाँति मालूम है बर्थेलो ने यहीं पर कहा था, कि ऊष्मा-उत्पादन रासायनिक बंधुता के बराबर होता है; तथापि यह कल्पना (assumption) सब जगह यथार्थ नहीं है यद्यपि कई दशाओं में यह ठीक है। अब हमें उन दशाओं का स्पष्ट ज्ञान हो सकता है जिनमें बर्थेलो की कल्पना ठीक से लागू होती है। बहुत अधिक ऊष्मा मानों के लिए और केवल संघनित (condensed) अवस्था में विशिष्ट ऊष्मा का प्रभाव अपेक्षाकृत कम हो जाता है और बर्थेलो का नियम काफी सन्निकटता के साथ लगता है, जब ताप बहुत ऊंचा नहीं होता। यह उन प्रक्रमों में प्रायः बिलकुल नहीं लगता जब ऊष्मा-उत्पादन थोड़ा होता है—उदाहरणार्थ, पिघलने के प्रक्रम में।

"अन्त में मैं इस ओर संकेत कर देना चाहता हूँ कि एगर्ट (Eggert), साहा (Saha) और अन्य वैज्ञानिकों ने नक्षत्र-भौतिकी के प्रश्नों के उत्तर निकालने में मेरे प्रमेय को सफलतापूर्वक लगाया है।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

नर्न्स्ट के प्रमेय को पढ़ कर ऐसा लगता है कि यह केवल उन ताप-परासों में लगता है, जिनका प्रयोग वैज्ञानिक और औद्योगिक कार्यों में साधारणतया नहीं होता।

साधारण परिस्थितियों के लिए यह अनावश्यक जान पड़ता है कि—२७३° सें० पर प्रत्येक पदार्थ की एन्ट्रापी (entropy) शून्य होती है या आयतन एवं तलतनाव (surface tension) का ताप से कोई संबंध नहीं रहता। तथापि किसी प्रक्रम से प्राप्य अधिकतम कार्य और उस प्रक्रम में उत्पादित ऊष्मा का संबंध व्यावहारिक दृष्टिकोण से बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इस बात का ज्ञान कि जैसे-जैसे ताप परम शून्य तक गिरता जाता है, वैसे-वैसे ऊष्मा-उत्पादन और कार्य के मानों में समानता आती है—यह व्यावहारिक परिस्थितियों की सीमाओं तक लग सकता है। इसके लिए सावधानी से मान-निर्धारण करना पड़ता है; इसके लिए परम शून्य का उसके सापेक्ष प्रतिभाग (counterpart) में परिवर्तन भले ही एक चाल (trick) क्यों न लगे। इस मान-निर्धारण से अमोनिया संश्लेषण (दे० पृ० ६७) के कार्य में निश्चित सफलता मिली। पहले जो परिणाम निकले वे नये सिद्धांत के दृष्टिकोण के विपरीत थे; इससे पुनःपरीक्षण करना पड़ा। इसके फलस्वरूप ऐसे अंक प्राप्त हुए जो टेक्निकल दृष्टिकोण से अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते थे।

विद्युत्-रासायनिक अन्वेषणों में भी, जो टेक्निकल प्रक्रमों के लिए मौलिक रूप से महत्त्वपूर्ण थे, नये सिद्धांत और मापनों में भेद निकला। हाइड्रोकार्बनों—उदा० गैसोलीन—के दहन से उत्पादित अधिकतम कार्य की नये सिद्धांत से गणना की जा सकती थी। परमाणु की नाभि के गुणधर्मों के लिए नया सिद्धांत बड़े ऊँचे तापों की भविष्यवाणी करता है, इन तापों पर गुरुत्वाकर्षण और रेडियमधर्मिता दोनों ही पर ताप का प्रभाव होना चाहिए, जो साधारणतया नहीं होता।

ऊर्जा-विज्ञान के द्वितीय नियम में जो अनिश्चितता है वह नर्न्स्ट के प्रमेय से दूर होती है और इस प्रकार साधारण ऊष्मा-भौतिकी का क्षेत्र विस्तृत होता है।

१९२१

फ्रेडरिक साडी (Frederick Soddy)

(१८७७--)

"रेडियमधर्मी पदार्थों के रसायन की ज्ञानवृद्धि के लिए एवं समस्थानिकों की उत्पत्ति एवं उनके स्वरूप की गवेषणा के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

ईस्टबूर्न, ससेक्स में फ्रेडरिक साडी का जन्म हुआ था। आप १८९९ में आक्स-फ़ोर्ड विश्वविद्यालय छोड़कर मान्ट्रियल चले गये, जहाँ आपने मेक्गिल विश्वविद्यालय में अरनेस्ट रदरफ़ोर्ड (दे० पृ० ३१) के साथ कार्य आरम्भ किया। तीन वर्षों के मिलकर सतत सफल प्रयास से रेडियमधर्मी विघटन का एक नया सिद्धांत निकला। इसके अनुसार परमाणु एक धनात्मक नाभिक का बना हुआ था और इस (नाभिक) के चारों ओर ऋणात्मक इलेक्ट्रान थे। इसके अस्थायित्व के कारण ही रेडियमधर्मिता होती है।

जब आप १९०२ में इंग्लैण्ड वापस आये, तो आप में और रदरफ़ोर्ड में कुछ होड़-सी चल पड़ी, विशेषतया रेडियमधर्मी रसायन पर एक पुस्तक के प्रकाशन के संबंध में। फिर मित्रवत् समझौता हो गया और साडी ने अपनी पुस्तक तब तक नहीं छपायी जब तक रदरफ़ोर्ड महोदय की पुस्तक छप न गयी।

उस समय नये रेडियमधर्मी तत्त्वों को रसायन में उपयुक्त स्थान देने के लिए काफ़ी कार्य हो रहा था। उस समय तक ज्ञात तत्त्वों को उनके परमाणु-भार के अनुसार क्रम में रख दिया गया था; रासायनिक समताओं के आधार पर उनके समूह भी बना दिये गये थे। इस प्रकार के क्रम आवर्त वर्गीकरण में रेडियमधर्मी तत्त्वांतरण से प्राप्त कुछ नये तत्त्वों के लिए कोई स्थान न था। इस प्रकार के नये तत्त्वों के गुणधर्म साधारण तत्त्वों के बिलकुल समान थे, अतः इनको पृथक् करने की भी कोई विधि ज्ञात न थी। साडी ने निष्कर्ष निकाला कि ये तत्त्व आवर्त वर्गीकरण में पुराने तत्त्वों के स्थान

पर ही रखे जा सकते हैं; इस गुणधर्म के कारण इनको समस्थानिक कहा गया, जिसका अर्थ है कि उनका आवर्त-वर्गीकरण में एक ही स्थान है।

विज्ञान के अभ्युदय के लिए साधारण परिस्थितियों में सुधार करने में साडी काफ़ी रुचि रखते थे। एबर्डीन में (१९०९–१९१९) जब आप आचार्य थे तो आपने अपने भाषणों को एक पुस्तक का रूप दिया, जिसका शीर्षक 'विज्ञान और जीवन' ("Science & Life"—London 1920) है।

साडी १९१९ में आक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय में आचार्य बने। इस प्रसिद्ध संस्था से आपने १९३६ में अवकाश ग्रहण किया।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[1] का विवरण

"आउएर फ़ान वेल्सबाख (Auer Von Welsbach) ने १९१० में जोशिम्स्थाल पिचब्लेंड के ३०,००० किलोग्राम से रेडियम का व्यापारिक उत्पादन करते समय उसके हाइड्रेट प्रभाजन (hydrate fraction) से आयोनियम और ऐक्टीनियम को बड़ी सुंदरता से पृथक् किया था। इस प्रकार आपने आयोनियम को एक बड़े सांद्र रूप में बनाया। इसके वर्णक्रम और परमाणुभार पर बाद के शोधकर्ताओं ने काफ़ी गवेषणा की। कई नवीन विधियों को उपयोग में लाने पर भी आप आयोनियम को थोरियम से पृथक् करने में असफल रहे।

"हर्शफिंकेल (Herschfinkel) ने भी रेडियम डी (रेडियमधर्मी सीस) को सीसे से पृथक् करने के लिए कई विधियों का प्रयोग किया, पर आप पूर्ण असफल रहे। तीन वर्ष बाद पैनेथ (Paneth) और फ़ान हेवेसी (Von Hevesy) ने भी लगभग २० विधियों से इनको पृथक् करने का प्रयास किया, पर आप भी असफल रहे। अपनी इस असफलता से लाभ उठाकर उन्होंने बड़ी खूबसूरती से इन रेडियमधर्मी तत्त्वों का सूचक (indicator) के रूप में प्रयोग किया। उदाहरणतया, इसी प्रयोग में उन्होंने सीस के काफ़ी अविलेय यौगिकों की विलेयता निकाली। रेडियम डी को इन यौगिकों में डाल दिया गया और तब रेडियमधर्मी विधियों से तोली न जा सकने वाली मात्रा में इन यौगिकों की रेडियमधर्मिता नापी गयी। इससे इनकी विलेयता ज्ञात की गयी। इस विधि का अनेक रासायनिक विधियों में उपयोग किया गया है।

"अधिक व्यापक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण से विचार करने पर और आवर्त वर्गीकरण में रेडियमधर्मी तत्त्वों के क्रम के लिए बिना किसी प्रकार का विस्तार किये हुए,

1. Lex Prix Nobel en 1921 से अनूदित।

में उन्हीं निष्कर्षों पर पहुँचा जिन पर स्ट्रोमहोल्म (Stromholm) और स्वेदबर्ग (Svedberg) पहले पहुँचे थे। (ये निष्कर्ष इस प्रकार थे—मेंडलीफ़ की योजना केवल एक सन्निकट (apprroximate) नियम है, जहाँ तक तत्त्वों के परमाणुभार का संबंध है। प्राकृतिक नियम की भाँति इसमें यथार्थता नहीं है। फलतः हमें इस पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए; यदि ये तत्त्व एक ही प्रकार के गुणधर्म वाले बिलकुल मिलते-जुलते कई समांग तत्त्वों के मिश्रण हों।)

"यह निश्चित था कि रेडियमधर्मी इन तत्त्वों के परमाणुभार पूर्णांक हों और उनके परमाणुभार का अंतर भी पूर्णांक हो। इस प्रकार, मुख्य (parent) तत्त्व और उसमें से अल्फ़ाकण निकलने पर बने हुए तत्त्व—आयोनियम (२३०) एवं रेडियमधर्मी थोरियम (२२८) में क्रमशः ठीक उसी प्रकार के रासायनिक थोरियम (२३२) से २ एवं ४ इकाइयों का अंतर होना चाहिए। एक बार एक सज्जन ने पूछा कि तत्त्वों की वास्तविक समांगता का रासायनिक समांगता से पृथक् एवं स्पष्ट कौन-सा प्रमाण है। इससे यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि पूर्णांक से बदलते हुए क्रमिक परमाणुभार वाले कई तत्त्वों के निश्चित अनुपात में मिलने से साधारण तत्त्व बनते हैं; अब तक के रसायनज्ञ अपनी विधियों से इन तत्त्वों को पृथक् न करने के कारण इनसे अनभिज्ञ थे।

"जब परमाणु के नाभिक में से दो धन चार्ज अल्फ़ाकण के रूप में निकल जाते हैं और इसके पश्चात् जब दो ऋण चार्ज β–कण के रूप में निकल जाते हैं, तो तत्त्व आवर्त वर्गीकरण में अपने मौलिक स्थान पर पुनः आ जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि आवर्त वर्गीकरण में तत्त्व की स्थिति से उसके पूर्ण नाभिक चार्ज का ज्ञान होता है—यह चार्ज नाभिक में धन एवं ऋण चार्ज के अंतर के बराबर होता है। इस प्रकार रासायनिक रूप से एक प्रकार के तत्त्व—अथवा समस्थानिक, जैसा कि मैंने १९१३ में सबसे पहली बार 'नेचर' (Nature) में लिखे गये पत्र में उनको कहा था, क्योंकि आवर्त वर्गीकरण में उनका एक स्थान होता है,—ऐसे तत्त्व होते हैं, जिनका नाभिकीय घनात्मक चार्ज एक होता है, पर नाभिक में धन (+) एवं ऋण (—) चार्ज की संख्या भिन्न होती है। परमाणु का सांद्र धनात्मक चार्ज परमाणु की संहति के अधिकतर भाग को बनाता है, क्योंकि धनात्मक विद्युत् परमाणुभार से कम भार वाले परमाणु पर नहीं देखी गयी है। इस प्रकार, समस्थानिक का परमाणुभार उसके नाभिक के धनात्मक चार्ज की संपूर्ण (total) संख्या का फलन (function) होता है; उसके रासायनिक लक्षण वास्तविक (net) संख्या के फलन होते हैं।"

सिद्धांत एवं व्यवहार पर प्रभाव

अठारहवीं शताब्दी के अंत में तत्त्वों की जिस रासायनिक परिभाषा का विकास हुआ था, उसके अनुसार उनको अविनाशी एवं पदार्थ की अटूट इकाई माना जाता था। पहले लक्षण को तो उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में ही छोड़ देना पड़ा था, जब कि रेडियमधर्मी विघटन के विचार का विकास हुआ था; दूसरे लक्षण में भी समस्थानिकों के ज्ञान के अनुसार बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में परिवर्तन करना पड़ा। शीघ्र ही यह दिखाया गया कि समस्थानिकों का अस्तित्व केवल रेडियमधर्मी विधि से प्राप्त तत्त्वों तक ही सीमित नहीं है। ऐस्टन (दे० पृ० ८२–८५) ने इसको भली भाँति प्रदर्शित कर दिया।

येल विश्वविद्यालय के बी० बी० बोल्टवुड (१८७०–१९२७) महोदय ने सबसे पहले यह सिद्ध किया कि आयोनियम और थोरियम को रासायनिक विधि से पृथक् नहीं किया जा सकता। आपने इस विचार का भी विकास किया कि इन नवीन गवेषणाओं से चट्टानों की भूगर्भीय आयु (geological age) बतायी जा सकती है। साडी ने अपनी "विज्ञान और जीवन" पुस्तक में इसको बड़े स्पष्ट ढंग से बताया है—"आज हमको यह ज्ञात है कि रेडियमधर्मी खनिज वस्तुतः भूगर्भीय घड़ियाँ (geological clocks) हैं। वे जिन चट्टानों में पाये जाते हैं, उनकी आयु का बड़ी यथार्थता से रेकार्ड रखते हैं। अन्य किसी भी विधि से यह सम्भव नहीं हो पाता। उदाहरणतया, यूरेनियम खनिज में यदि उसकी मात्रा के अनुसार १ प्रतिशत सीस पाया जाता है, तो वह ८०,०००,००० वर्षों के युग का मान कराता है।...... इसके विपरीत, यूरेनियम खनिज में जब १ घन सेंटीमीटर हीलियम गैस प्रतिग्राम यूरेनियम में पायी जाती है, तो उससे ९,०००,००० वर्षों के युग का मान होता है। इस दशा में हीलियम आरम्भ में उपस्थित नहीं होती; उसकी मात्रा में गैस निकल जाने के कारण कमी ही हो सकती है। अतः इस प्रकार ज्ञात भूगर्भीय आयु कम-से-कम हो सकती है। सीस से ज्ञात भूगर्भीय आयु अधिकाधिक हो सकती है। इस विधि से कार्बोनीफ़ेरस (Carboniferous) चट्टानों की आयु ३५०,०००,००० वर्ष की मालूम होती है और सबसे पुरानी आर्चियन (Archean) चट्टानें १,५००,०००,००० वर्षों से अधिक आयु की जान पड़ती हैं।"

१९२२

फ्रान्सिस विलियम ऐस्टन (Francis William Aston)

(१८७७-१९४५)

"संहति वर्णक्रम लेखक (Mass spectrograph) **की सहायता से अनेक रेडियम-विधर्मी** (non-radioactive) **तत्त्वों के समस्थानिकों की खोज के लिए एवं पूर्णांक नियम** (whole number rule) **की गवेषणा के लिए।"**

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

फ्रांन्सिस विलियम ऐस्टन का जन्म हार्बोर्न, इंग्लैण्ड में हुआ था। जब आपने १८९३ में हाईस्कूल की परीक्षा पास की तो आपको गणित में उच्चतम सम्मान मिला और विज्ञान में आप अपनी कक्षा में सर्वप्रथम हुए। इसके पश्चात् आप मेसन कालेज में पढ़ने लगे; यह उसी वर्ष बर्मिंघम विश्वविद्यालय बन गया। आपने पी० एफ० फ्रैंकलैंड (P. F. Frankland) के साथ, जो बर्मिंघम में प्रोफ़ेसर थे, संकुल कार्बनिक पदार्थों के प्रकाश-गुणधर्मों (Optical properties) पर कार्य किया और १९०१ में अपने पहले वैज्ञानिक लेख में उसको प्रकाशित किया। इसके पश्चात् आपने ऐलकोहल बनाने की कंपनी में नौकरी की। इस समय आपने बड़ी चतुरता से स्वयं बनाये यंत्र के साथ प्रयोग करना जारी रखा। अपने आप बनाये गये स्वचालित टापलर (Toepler) मेल के पंप से निकाली गयी हवा वाली नली में विद्युत्-विसर्जन (electrical discharge) इतना रुचिकर सिद्ध हुआ कि आप अपने अन्वेषणों पर और कार्य करने के लिए विश्वविद्यालय वापस लौट आये। १९१० में विशेष विसर्जन नली से, जिसको टामसन महोदय ने विकसित किया था, कार्य करने के लिए आप ट्रिनिटी कालेज के जे० जे० टामसन (J. J. Thomson) के पास चले गये। इस नली में मुख्यतया एक हवा निकाला हुआ शीशे का बल्ब होता था। इसके एक ओर धनाग्र (विद्युत् का धनात्मक ध्रुव) होता था और दूसरी ओर संकीर्ण नली में ऋणाग्र होता था। धनात्मक चार्ज वाले कण इसमें से एक चुंबकीय क्षेत्र में से होकर बहुत निम्न

दाब वाली नली में जाते थे। यहाँ उनका पथ (path) एक फोटोग्राफिक फ़िल्म पर अंकित हो जाता था। ऐस्टन ने इस व्यवस्था में परिवर्तन किया। आपने ऐसी योजना की जिससे फोटोग्राफिक फिल्म पर पहुँचने वाले कण अपनी सापेक्ष संहति के अनुसार पूर्ण रूप से पृथक् हो जाते थे; जिस प्रकार प्रकाश-वर्णक्रम में विभिन्न तरंग-दैर्घ्य वाली प्रकाशकिरणें पृथक् हो जाती हैं। अतः इस यंत्र का नाम 'संहति वर्णक्रम लेखक' (Mass spectrograph) रखा गया।

युद्ध में वायुयान इंजीनियर की भाँति कार्य से छुट्टी पाकर ऐस्टन ने जो पहला यंत्र बनाया उससे फ़ौरन सफलता मिली। १९१९ में बने इस संहति वर्णक्रम लेखक से सापेक्ष संहति को १:१००० की यथार्थता तक जाना जा सकता था; १९२७ में बने तीसरे यंत्र से यथार्थता १:१००,००० तक हो गयी। परमाणु-संहति के इस यथार्थ ज्ञान के फलस्वरूप परमाणु-नाभिक के अध्ययन करने वाले रसायनज्ञ तत्त्वों को उसी प्रकार तैयार करने लगे, जैसे अन्य रसायनज्ञ तात्त्विक पदार्थों से यौगिक तैयार करते हैं; ऐसी भविष्यवाणी ऐस्टन ने १९३६ में की थी।

ऐस्टन का मनोरंजन यात्रा और खेल में होता था। संगीत में आपकी रुचि इतनी अधिक थी कि कैम्ब्रिज रिव्यू (Cambridge Review) में आप संगीत-आलोचक का काम करते थे। मृत्यु पश्चात् रायल सोसायटी द्वारा प्रकाशित निबंध में (रायल सोसायटी, लंडन की Proceedings) आपके लिए लिखा गया—"ऐस्टन का जीवन निर्बाध सफलताओं की एक शृंखला था।"

पुरस्कार-प्राप्त कार्य[1] का वर्णन

"जब नीआन को यंत्र में लाया गया, तो १०, ११, २० और २२ पर चार नयी रेखाएँ दिखाई दीं। पहली दो द्वितीय श्रेणी की रेखाएँ थीं और अन्य दो की तुलना में काफ़ी अस्पष्ट थीं। चारों रेखाएँ इतनी अच्छी तरह से बनी थीं कि उनकी तुलना स्टैन्डर्ड (standard) रेखाओं से की जा सकती थी। अनेक मापनों से यह ज्ञात हुआ कि १:१००० की यथार्थता में नीआन के समस्थानिकों का भार क्रमशः २० और २२ था। यदि बाद वाला समस्थानिक केवल १० प्रतिशत हो, तो नीआन का परमाणुभार २०. २० हो जाता है; यह स्वीकृत मान है। इस प्रकार नीआन की समस्थानिकीय (isotopic) रचना निःसंदेह रूप से सिद्ध हो गयी।

"स्वभावतः क्लोरीन दूसरा तत्त्व था, जिसका विश्लेषण किया गया। इसके

१. Les Prix Nobel en 1922 से अनूदित।

भिन्नात्मक परमाणु-भार की व्याख्या पहली फोटोग्राफिक फिल्म से ही की जा सकी। इसके संहति वर्णक्रम में लाक्षणिक रूप से ४ प्रथम श्रेणी की ३५, ३६, ३७ और ३८ रेखाएँ होती हैं। ३५.४६ रेखा का किसी प्रकार का भी चिह्न नहीं मिला। इसकी सरलतम व्याख्या यह हो सकती है कि ३५ और ३७ वाली रेखाएँ क्लोरीन के कारण थीं और ३६ एवं ३८ वाली रेखाएँ उनकी संगत (corresponding) हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के फलस्वरूप थीं।

"इन मापनों का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम यह है कि हाइड्रोजन के अतिरिक्त मापे गये सभी तत्त्वों और फलतः लगभग सारे तत्त्वों के परमाणु-भार प्रायोगिक यथार्थता की सीमा में, अर्थात् १:१००० की यथार्थता में पूर्णांक होते हैं।

"इससे संहति के हमारे विचारों में एक दम बिलकुल सरलता आ जाती है। प्राउट (Prout) ने १८१५ में एक मौलिक अनुमान बनाया था। इसके अनुसार सारे तत्त्वों के परमाणु एक आनुमानिक तत्त्व प्रोटाइल (Protyle) से मिलकर बने होते हैं। आपने इस आनुमानिक तत्त्व को हाइड्रोजन सिद्ध करने का प्रयत्न किया था। यह अनुमान अब फिर से पुष्ट हो गया है। इसमें अंतर केवल यह है कि मौलिक परमाणु दो प्रकार के हैं—प्रोटान और इलेक्ट्रान, जो धन और ऋण विद्युत् के परमाणु हैं।

"हमको आइंस्टीन के सापेक्षवाद सिद्धांत के अनुसार ज्ञात है कि संहति और ऊर्जा का एक दूसरे में परिवर्तन किया जा सकता है और स. ग. स. पद्धति में संहति (म) को विश्राम के समय ऊर्जा की मात्रा $मस^{२}$ में लिखा जा सकता है, जहाँ स प्रकाश के वेग को व्यक्त करता है। संहति की थोड़ी-सी मात्रा भी अत्यधिक ऊर्जा के बराबर होती है।

"हाइड्रोजन के १ ग्राम परमाणु का उदाहरण लीजिए। इतनी हाइड्रोजन ९ धन-सेंटीमीटर जल में होती है। यदि यह पूर्ण रूप से हीलियम में परिवर्तित हो जाय, तो $०.००७७ \times ९ \times १०^{२०} = ६.९३ \times १०^{१८}$ अर्ग ऊर्जा निकलेगी। ऊष्मा के रूप में यह १.६६×१०^{११} कैलरी के बराबर होगी और कार्य के रूप में २००,००० किलोवाट घंटे के बराबर होगी। इस रूप में ऊर्जा का यह स्रोत सूर्य की ऊष्मा का कारण बताने के लिए भी पर्याप्त हो सकता है।

"यदि भावी शोध-कर्ताओं ने इसी ऊर्जा को इस प्रकार नियंत्रित करने की विधि ज्ञात कर ली जिससे कि उसका जीवन में उपयोग हो सके तो मनुष्य को ऊर्जा का ऐसा स्रोत मिल जायगा जो वैज्ञानिक कहानीकारों की सीमा के भी परे है। किन्तु इसकी संभावना में हमको संदेह होना चाहिए, क्योंकि एक बार ऊर्जा निकलने पर यह पूर्णरूप

से अनियंत्रित होगी और इसकी तीव्र घातकता से पड़ोस के सभी पदार्थ नष्ट हो जायेंगे। ऐसे समय संसार की सारी हाइड्रोजन कहीं हीलियम में परिवर्तित न हो जाय। तब हमारे इस प्रयोग का पता सारे ब्रह्मांड को लग जायगा क्योंकि पृथ्वी तारा बन जायेगी।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

फ़ोटोग्राफ़िक फ़िल्म की छोटी-सी पट्टी पर कुछ धब्बे दिखाई देते हैं और इनसे निष्कर्ष यह निकलता है कि हमारी पृथ्वी कहीं अग्नि लौ को उगलता हुआ तारा न बन जाय। इस फ़ोटोग्राफिक पट्टी का ठीक आयोजन और उससे प्राप्त निष्कर्ष केवल कुछ दशक वर्षों के ही, रसायन, भौतिकी एवं गणित के अद्भुत गवेषणाओं के फलस्वरूप हुई थी। परमाणु-भार का मापन ऐस्टन के केवल १०० वर्ष पूर्व ही आरम्भ हुआ था। ऐस्टन की विधि से विभिन्न संहति वाले परमाणुओं को इतनी यथार्थता से पहचाना जा सका कि उनसे इतने महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकले। कदाचित् ये निष्कर्ष १९२२ के रसायनज्ञों को दूर भविष्य के मालूम पड़े हों, क्योंकि उनका विश्वास था कि ये व्यावहारिक एवं औद्योगिक रसायन को, जिनमें वे रुचि रखते थे, प्रभावित नहीं करते; तथापि इससे परमाणु-ऊर्जा के विकास की नींव पड़ी। संहति-वर्णक्रम-लेखक से क्रमशः जटिल पदार्थों के विश्लेषण किये जाने लगे।

१९१८ में ए० जे० डेम्प्स्टर (A. J. Demspster) महोदय ने शिकागो में एक 'संहति-वर्णक्रम-लेखक' का विकास किया था। इसमें एक तापदीप्त प्लैटिनम प्लेट से गवेषणा किये जाने वाले लवण वाष्प में परिवर्त्तित हो जाते थे और तब उनको स्थिर वैद्युत चुंबकीय क्षेत्रों में लाया जाता था। १९३५ के डेम्प्स्टर के यंत्र में विद्युत् चिनगारी से ही तत्त्वों के आयन बन जाते थे। इस विधि से १७ तत्त्वों के ३३ नये समस्थानिकों का ज्ञान सम्भव हुआ। आज संहति-वर्णक्रम लेखकों को यंत्र-व्यापारियों से खरीदा जा सकता है और इनका अनेक प्रयोगशालाओं में अति सूक्ष्म एवं अति कुशल हथियार के रूप में प्रयोग होता है। उदाहरणतया, इससे प्राकृतिक गैस और खनिज तैल प्रभाजनों में पाये जाने वाले पदार्थों के जटिल मिश्रण का विश्लेषण किया जा सकता है।

१९२३

फ़्रिट्ज़ प्रेग्ल (Fritz Pregl)

(१८६९–१९३०)

"कार्बनिक पदार्थों के माइक्रोविश्लेषण (microanalysis) **की विधि के आविष्कार के लिए।"**

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

फ़्रिट्ज प्रेग्ल का जन्म, लाइबाख, आस्ट्रिया में हुआ था। पहले आपकी रुचि ओषधि-विज्ञान की ओर थी और आप १८९३ में ग्राज़ विश्व-विद्यालय से औषध के डाक्टर (Dr. Med.) हो गये। जब आप कायिकी (फिज़िओलोजी) एवं औतिकी (Histology) में सहायक के पद पर कार्य कर रहे थे, तो आपने रसायन का भी अध्ययन किया। १९०४ में आपने जर्मनी की यात्रा की। थोड़ा समय वहाँ आपने आस्ट्वल्ड के साथ लाइपज़िग में बिताया, किन्तु अधिकतर समय बर्लिन में बीता, क्योंकि आप एमिल फ़िशर से प्रभावित हो चुके थे।

दूसरे वर्ष जब आप ग्राज़ लौटे तो आपने कायिकी पर शोधकार्य आरम्भ किया, विशेषतया पित्त अम्लों (bile acids) पर। शुद्ध पदार्थ इतनी कम मात्रा में बनते थे कि आपको यह सोचना पड़ा कि प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में पदार्थों को लेकर आरम्भ किया जाय अथवा बने हुए इन बहुमूल्य पदार्थों की सूक्ष्म मात्राओं का ही विश्लेषण किया जाय। आपने सूक्ष्म मात्रा में विश्लेषण के लिए निश्चय किया।

१९००–१३ के बीच में जब आप इन्सब्रुक में प्रोफ़ेसर थे तब आपने कार्बनिक पदार्थों की सूक्ष्म मात्राओं का होशियारी से दहन करके कार्बन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन के निर्धारण (determination) की विधि को यत्न द्वारा सम्पादित किया। १९१३ से लेकर मृत्यु के समय तक आप ग्राज़ विश्वविद्यालय में ही रहे, क्योंकि आप इसे वियना के बड़े विश्वविद्यालय की अपेक्षा अधिक पसंद करते थे। आप अपनी विधि की बारीकियों का क्रमशः संस्कार करते रहे और बाद में आप दहन को स्वतःचालित बनाने

में सफल हुए। आपने इस माइक्रोविश्लेषण विधि का अपने एन्ज़ाइम, जलवत् भाग (Sera) एवं पित्त अम्ल सम्बन्धी कार्य में खूब उपयोग किया। आपने अपनी इस विधि का महत्त्व फारेन्ज़िक (Forensic) विश्लेषण में भी दिखाया जिसमें जहरीले ऐलकेलाइडों की न्यूनातिन्यून मात्राओं का सापेक्ष सरलता से मापन किया जा सकता था।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का विवरण[1]

"कार्बनिक पदार्थ के अणु में तत्त्वों की समानुपातिक मात्रा को जानने के लिए उसका ऐसी परिस्थितियों में दहन किया जाता है, जिससे उसका सारा कार्बन कार्बन डाइ-आक्साइड में, और सारा हाइड्रोजन जल में परिवर्त्तित हो जाय। कार्बन डाइ आक्साइड को पोटासियम हाइड्राक्साइड अथवा चूने एवं सोडे के मिश्रण में और जल का कैलसियम क्लोराइड में पूर्ण अवशोषण कर लिया जाता है। अवशोषक पदार्थों के भार में जो वृद्धि होती है उसके द्वारा दहन से बने पदार्थों की मात्रा ज्ञात हो जाती है और इससे विश्लेषित पदार्थ में कार्बन और हाइड्रोजन का अनुपात ज्ञात किया जा सकता है। दहन एक ऊँचे ताप पर पिघलने वाले शीशे की नली में किया जाता है। उसकी लम्बाई इतनी होती है जिससे उसमें विश्लेषण किये जाने वाले पदार्थ के साथ ताम्र आक्साइड एवं दहन को पूर्ण करने वाले अन्य पदार्थ रखे जा सकें। जहाँ पर अवशोषण होता है, वहाँ जल एवं कार्बन डाइ आक्साइड के अतिरिक्त और कोई पदार्थ नहीं जाने दिया जाता। जब पदार्थ में नाइट्रोजन, गंधक एवं फ़ास्फ़ोरस भी होते हैं तो इनका मापन पृथक् रूप से किया जाता है। पदार्थ की तात्त्विक रचना को जान लेने के बाद तत्त्वों के समूहों का निर्धारण होता है—जैसे, कार्बाक्सिल समूह, जो पदार्थ के अम्लीय लक्षणों के लिए उत्तरदायी होता है; अथवा मेथाक्सिल समूह, जो मेथेनाल का अवशेष होता है और अपने आक्सिजन परमाणु की सहायता से अणु में जुड़ा होता है; अथवा मेथिल-इमाइड, जिसमें मेथेनाल का आक्सिजन समूह अमोनिया के अवशेष से, जिसका सूत्र NH होता है, हटा दिया जाता है।

"जब विश्लेषण किये जाने वाले पदार्थ में नाइट्रोजन, हेलोजन अथवा गंधक होती है तो उसके दहन से कुछ गैसीय पदार्थ बनते हैं, जिनको भूल से कार्बन डाइ आक्साइड के रूप में तोल लिया जाता है और उनकी गणना भी उसी रूप में हो जाती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि ये पदार्थ कार्बन डाइआक्साइड के अवशोषक सोडे-चूने के मिश्रण

1. Lex Prix Nobel en 1923 से अनूदित।

से अवशोषित हो जाते हैं। इन परिस्थितियों में इन पदार्थों को अवशोषक यंत्र के पास हरगिज़ नहीं पहुँचने देना चाहिए।

मैक्रो विश्लेषण के समय दहन नली में विभिन्न पदार्थों के संघटन (composition) के अनुसार कई प्रकार के पदार्थ रखे जा सकते हैं। किन्तु मैं एक ऐसे पदार्थ को निकालना चाहता था, जो कार्बन डाइ आक्साइड एवं जल के अतिरिक्त सब गैसीय पदार्थों को सोख ले। मैं इसको सब प्रकार के दहन में दहन-नली में भरा जा सकने वाला पदार्थ कहता हूँ। यह ताम्र आक्साइड और सीस-क्रोमेट का मिश्रण होता है, जिसके दोनों ओर चाँदी का भाग होता है और अंत में सीस सुपर आक्साइड और १८०° तक तपित अदह (asbestos) होता है।

"सब परिस्थितियों पर ध्यान देने से २–४ मिलीग्राम पदार्थों से बिलकुल यथार्थ विश्लेषण किये जा सकते हैं। कम-से-कम १ मिलीग्राम पदार्थ का प्रयोग किया गया। इसमें भी जो त्रुटि हुई वह स्वीकृत त्रुटि सीमा के अंदर ही थी। इस प्रकार हमने विश्लेषण के लिए आवश्यक पदार्थ की मात्रा में अभूतपूर्व कमी कर दी है और जब हम यह विचार करते हैं कि लीबिग आधा ग्राम और कभी-कभी १ ग्राम पदार्थ को लेकर विश्लेषण करते थे तथा पिछली शताब्दी के अंत में यह मात्रा ०.१५ से ०.२ ग्राम तक हो गयी, तो हम यह कह सकते हैं कि इन दस वर्षों के भीतर ही हमने मैक्रो-विश्लेषण के लिए आवश्यक पदार्थ की मात्रा के सौवें भाग से ही माइक्रो-विश्लेषण किया है और इसमें यथार्थता की बिलकुल कमी नहीं हुई है। मैं यह कह सकता हूँ और मैं इसे अपने विद्यार्थियों के साथ देखता भी हूँ कि माइक्रोविश्लेषण विधि से अधिक यथार्थता आ सकती है, क्योंकि मैक्रोविश्लेषण की अपेक्षा इसमें आवश्यक परिस्थितियाँ अधिक होती हैं और उनकी पूर्त्ति अधिक अच्छी विधि से होती है। इसके अतिरिक्त दो और लाभ भी हैं। एक तो इससे गैस और प्रतिकर्मक बचते हैं और दूसरे समय भी बचता है, जो कदाचित् अधिक महत्त्वपूर्ण है। मैक्रो-विश्लेषण की अपेक्षा तिहाई समय में ही इससे परिणाम प्राप्त हो जाते हैं।

"एक कार्बनिक पदार्थ में तत्त्वों के परिमाणात्मक (Quantitative) मापन के साथ-साथ उसके कुछ तत्त्व समूहों का परिमाणात्मक निर्धारण भी बहुत आवश्यक है। फलतः मैंने अम्लमितीय विधि से फ़िनोल्फ़थैलीन का सूचक रूप में प्रयोग करके कार्बाक्सिल समूहों के मापन में भी शोधन किया है और मेथाक्सिल तथा मेथिल इमाइड समूहों के निर्धारण पर भी ध्यान दिया है।

"इसके साथ-साथ मैंने क्वथनांक निर्धारण से अणु-भार निकालने की विधि को

माइक्रो-विश्लेषण रीति से करना बताया है। हम लोग ७ मिलीग्राम पदार्थ की मात्रा से ही विश्वसनीय मानों को बता सकते हैं।''

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

बहुत सूक्ष्म मात्राओं में पदार्थों का परिचय प्राप्त करने की विधियाँ रसायन में नवीन नहीं हैं। लगभग एक शताब्दी पूर्व बुन्सन (Bunsen) और किरशाफ़ (Kirchhoff) ने गणना की थी कि वे एक मिलीग्राम के हजारवें भाग में उपस्थित सोडियम अथवा दूसरे तत्त्वों का, जो लौ को रंग देते हैं, परिचय प्राप्त कर सकते हैं। कुछ शर्कराएँ और प्रोटीन विशेष प्रतिकर्मकों से रंगीन विलयन बनाती हैं और इनकी सहायता से उनका परिचय भी प्राप्त किया जा सकता है। तथापि कुछ मिलीग्राम कार्बनिक पदार्थ को लेकर उसका विश्लेषण करना एक नवीन सफलता थी। कायिकी-रसायन पर जो शोध-कार्य हो रहा था, उसमें इससे बड़ी सहायता मिली। पौधे एवं पशुओं में सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ जीवन-रसायन के दृष्टिकोण से बड़े उपयोगी सिद्ध हुए। ये पदार्थ टनों कार्बनिक पदार्थों से केवल कुछ ग्राम की मात्रा में बन पाते थे। रंग द्रव्य, विटामिन और हार्मोन पर शोध-कार्य के लिए माइक्रो-विश्लेषण विधि की नितांत आवश्यकता थी।

रेडियम-धर्मिता मापन द्वारा इनसे भी सूक्ष्म मात्रा में पदार्थों की उपस्थिति का ज्ञान हो सकता है। अतः मैक्रो से माइक्रो-विश्लेषण और अंततोगत्वा अतिमाइक्रोविश्लेषण (Ultramicroanalysis) की ओर रसायन अग्रसर हो उठा।

माइक्रो मात्राओं को तोलने के लिए पहले प्राचीन सिद्धान्तों पर आधारित तुलाओं का ही प्रयोग होता था; उदाहरणतया, क्हूलमान (Kuhlaman) तुला से प्रेग्ल का कार्य सम्भव हो सका। अति-माइक्रो रूप से तोलने के लिए तुला बनाने में अन्य सिद्धांतों का उपयोग करना पड़ा।

१६२४

कोई पुरस्कार नहीं दिया गया

१९२५

रिचर्ड जिगमांडी (Richard Zsigmondy)

(१८६५-१९२९)

"कलिलीय (colloidal) विलयनों की विषमांग प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए और इस संबंध में उन विधियों को निकालने के लिए, जो आधुनिक कलिल रसायन के लिए आधारस्वरूप बन गयी हैं।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

रिचर्ड जिगमांडी का जन्म वियेना में हुआ था, जहाँ आपके पिता डाक्टर थे और जर्राही (surgical) यंत्रों के आविष्कारक थे। रिचर्ड आरम्भ से ही भौतिकी और रसायन में रुचि दिखाने लगे। आपने वियेना और म्यूनिख़ में अध्ययन किया। जो समय आपने ए० कुन्ड्ट (A. Kundt—१८३९–१८९४) के साथ उनके सहायक के रूप में बिताया वह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। जिन विषयों पर कुन्ड्ट ने शोध-कार्य किया, उनमें से एक विषय था—अप्रकृत वर्णक्रम, जो उन पदार्थों से प्राप्त होता है जो प्रकाश का उच्च विशिष्ट अवशोषण करते हैं। कुन्ड्ट ने ज़िगमांडी का उन चमकीले रंगों की ओर ध्यान आकर्षित किया जो पोर्सिलेन पर फैलाये स्वर्ण मिश्रणों के कार्बनिक पदार्थों द्वारा होता है। जो पदार्थ स्वर्ण से मिलाये जाते हैं उनका रंगों के ऊपर विशेष प्रभाव होता है और ये रंग तब बनते हैं जब पोर्सिलेन को गरम किया जाता है। जब जिगमांडी आस्ट्रिया लौटे और उन्होंने ग्राज़ विश्वविद्यालय की फ़ैकल्टी में प्रवेश किया, तो आपने स्वर्ण रंगों का क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा की। यह एक पुराना विषय था। पहले के कीमियागर भी इस विषय में रुचि रखते थे। १६७९ में जोहैन कुन्कल (Johann Kunckel) ने स्वर्ण बनाना आरम्भ किया, किन्तु इसके बनाने के बजाय आप माणिक्य शीशे के आविष्कार में सफल हुए। इसकी विधि गुप्त रखी गयी। एक दूसरे कीमियागर, एन्ड्रियास कैसियस (Andreas Cassius) ने एक आश्चर्यजनक बैंजनी रंग द्रव्य निकाला। यह स्वर्ण विलयन में स्टैनिक क्लोराइड

के विलयन को मिलाने से अवक्षेपित होता था। १८५७ में अंग्रेज रसायनज्ञ माइकेल फ़ैरडे ने माणिक्य शीशे की व्याख्या उसको छितरित (dispersed) स्वर्ण बता कर की। आपने स्वर्ण लवणों के साथ भी प्रयोग किया और इनमें ईथर में विलीन फ़ास्फ़ोरस को डाला। इससे खूब गहरे रंग वाले धातु के छितरन (dispersion) बन गये। इन सूक्ष्म छितरनों को कलिलीय कहा गया। इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग ग्रैहम (Graham) ने उन विलयनों के लिए किया था, जो पशु से प्राप्त गोंद अथवा जिलेटिन से बनते हैं और कहा था कि ये एक पृथक् प्रकार के विलयन हैं।

ज़िगमांडी (Zsigmondy) ने जब १८९७ में जीना (Jena) की शीशे की फ़ैक्टरी में पद ग्रहण किया, तब भी आप इस विषय पर कार्य करते रहे। १९००–१९०३ तक आप अपनी व्यक्तिगत प्रयोगशाला में भी इस पर कार्य करते रहे। जान टिंडल (John Tyndall) ने १८८१ में अतिसूक्ष्मदर्शीय (Ultramicroscopical) रूप से छोटे कणों के देखने के लिए परीक्षण की रेखा से समकोण तल से कणोंको प्रकाशित करने की बात बतायी थी। इसी को ज़िगमांडी ने आधार बनाया और १९०३ में भौतिकीज्ञ सीडेनटाप्फ़ (Siedentohf) के साथ अति सूक्ष्मदर्शी का आविष्कार किया। यह कलिलों के बारीक परीक्षण के लिए सब प्रकार से उपयोगी यंत्र है।

१९०७ के उपरांत आप गाटिन्जन (Gottingen) विश्वविद्यालय के अकार्बनिक रसायन के इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर रहे।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का विवरण

"मैंने माणिक्य-शीशे और कुछ मिट्टी संबंधी रंगों पर अन्वेषण किया, जो स्वर्ण की बारीकतम छितरन के फलस्वरूप बनते हैं। मुझे यह ध्यान आया कि रासायनिक रूप से एक दूसरे से मिलते-जुलते यौगिक इन रंगों के उत्पादन में काफी भिन्न प्रभाव दिखाते थे। यह परीक्षण और अधिक आश्चर्य-जनक हुआ जब हमने यह देखा कि एक दूसरे से विपरीत गुणधर्मी वाले यौगिक का बारीकतम छितरन रूप में स्वर्ण के रंगों पर प्रभाव कभी-कभी एक प्रकार का होता है।

"रसायन के पूर्व अनुभवों से यह ज्ञान पृथक् था। फलतः मैंने इन परीक्षणों के कारण को उन विधियों से जानने की चेष्टा की जो शुद्ध रूप से रासायनिक नहीं थीं। सबसे पहले मैंने कैसियस के बैंजनी रंग पर विशेष रूप से कार्य किया। उस समय गहरे लाल कलिलीय स्वर्ण को बनाने की सबसे निश्चित विधि यह थी कि फार्मेल्डीहाइड (formaldehyde) का उपयोग किया जाय। इस विधि से मैंने काफी मात्रा में

शुद्ध, गहरा लाल कलिलीय रंग बना लिया। इस स्वर्ण से मैंने कैसियस के बैंजनी रंग के संश्लेषण की चेष्टा की और जब मुझ इस प्रयोग में सफलता मिली तो यह विचार सिद्ध हो गया कि कैसियस का बैंजनी रंग बारीक रूप से बँटे स्वर्ण और कलिलीय स्टैनिक अम्ल का मिश्रण था। किन्तु, इसके विपरीत जैसा बर्ज़ीलियस महोदय पहले ही देख चुके थे, यह पूर्ण रूप से रासायनिक पदार्थ की भाँति कार्य करता है। इससे मुझे कलिलीय अवक्षेपणों को समझने में बड़ी सहायता मिली। त्रुटियों से बचने के लिए यह आवश्यक है कि कलिलीय पद्धतियों की व्याख्या के लिए इस अनुभव पर भी विचार किया जाय। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कुछ परिस्थितियों में कलिलीय मिश्रण एक रासायनिक यौगिक की भाँति कार्य कर सकता है और इसको भूल से यौगिक समझा जा सकता है।

"स्वर्ण की एक ही मात्रा वाले द्रव आम तौर से देखने पर विभिन्न मालूम पड़ सकते हैं; इसके विपरीत, जो विलयन साधारण रूप से देखने पर साफ़ मालूम पड़ते हैं उनमें प्रकाश के फ़ैरडे—टिंडल कोन (Faraday Tyndall Cone) की तीव्रता में अन्तर हो सकता है।

"कुछ समस्याओं के लिए सूक्ष्मदर्शी के नीचे केवल प्रकाश के कोन का परीक्षण पर्याप्त नहीं था। फलतः, मैंने अधिकतम यथार्थता से प्रकाश कोन के परीक्षण के लिए एक सूक्ष्मदर्शी का विकास किया।

"जीना में एच० सीडेनटाप्फ़ (H. Siedentopf) के साथ मैंने इस विधि का संस्कार किया। बड़ी दक्षता (efficiency) वाला एक यंत्र बनाया गया। यह दीर्घ छिद्र-अति सूक्ष्मदर्शी (Slit ultramicroscope) था। इससे एक मिलीमीटर के करोड़वें अंश वाले स्वर्ण कण को भी सूर्य के प्रकाश में देखा जा सकता था।

"कलिलीय विलयनों में अनेक अनुत्क्रमणीय (irreversible) कलिलों के कणों की भाँति स्वर्ण के कणों पर ऋणात्मक विद्युत् का चार्ज होता है। उनके स्थायित्व के लिए इन कलिलों पर विद्युतीय चार्ज का होना बहुत आवश्यक है। यदि कणों पर से चार्ज हटा लिया जाय—उदाहरणतया लवण डाल करके—तो कण आपस में फ़ौरन जुड़ जाते हैं और कलिल में स्कंदन (coagulation) हो जाता है। कलिलीय स्वर्ण में यह दिखाई पड़ता है तब उसका रंग लाल से नीले में परिवर्तित हो जाता है। अति सूक्ष्मदर्शी से केवल प्रत्येक कण के रंग में परिवर्त्तन ही नहीं दिखाई देता, अपितु उससे कणों की संख्या में अद्भुत परिवर्त्तन होता हुआ भी दिखाई देता है।

"संरक्षक (protective) कलिलों को डाल करके स्कंदन में हस्तक्षेप किया

जा सकता है। इस प्रकार स्कंदनकारी को डाल कर कुछ निश्चित समय के पश्चात् प्रत्येक बार अतिसूक्ष्मदर्शी में दिखाई देने वाले कणों की संख्या ज्ञात की जा सकती है, और इस प्रकार स्कंदन के वेग को नापा जा सकता है।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

पदार्थ की तीन अवस्थाएँ बहुत पहले से मानी जाती थीं—गैस, द्रव और ठोस। एक शताब्दी पूर्व चतुर्थ अवस्था ने भी अपनी ओर रसायनज्ञों का ध्यान आकर्षित कराया, यह अवस्था बारीक छितरन की थी। इस अवस्था में पदार्थ तीन अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था में हो सकता है। बहुत सारे पदार्थ इस कलिल अवस्था में पाये जाते हैं। धातु, लवण, कार्बनिक पदार्थ अति बारीक छितरित रूप में कुहरा अथवा फेन (foam) या द्रव अथवा ठोस घोल की भाँति पाये जा सकते हैं। वे वायुमंडल में, प्राकृतिक जलों में, चट्टानों में और जीवाणुओं में पाये जाते हैं। उनका ओषधि रूप में, लेप के रूप में उपयोग होता है; टेक्निकल कार्यों में भी उनका उपयोग होता है, जैसे सिलिका जेल का। उनकी बड़ी सतहों पर विद्युतीय चार्ज रहता है और उन पर विशिष्ट रासायनिक क्रियाएँ हो सकती हैं; तथापि यह कलिलीय अवस्था काफ़ी नाजुक होती है; जब इसमें संरक्षक कलिल नहीं होते, तब इसको आसानी से विनष्ट किया जा सकता है। किसी दूसरे प्रकार के कलिल को बहुत थोड़ी मात्रा में मिलाने से कलिल पद्धति में स्थायित्व आ जाता है, क्योंकि वे संरक्षक का कार्य करते हैं; दूसरे पदार्थों का प्रभाव इसका उलटा भी हो सकता है।

जितनी टेक्निकल कार्य विधियों में कलिलीय छितरनों को प्राप्त करने की मांग होती है, लगभग उतनी ही संख्या में ये हानिकर भी होते हैं। उदाहरणतया, यद्यपि अनेक प्रकार के तैल पायस (emulsions) बड़े प्रयास से बनाये जाते हैं, तथापि तैलों का पायस में से पृथक्करण भी प्रायः आवश्यक होता है। कलिलीय छितरनों को बनाने अथवा बिगाड़ने में, उनके गुणधर्मों का ज्ञान बड़ा सहायक होता है। फलतः अति सूक्ष्मदर्शी में कई विधियों से सुधार किये गये हैं। सीडेन्टाप्फ़ ने हृदय रूपी संघनित्र (cardioid condenser) को उसमें जोड़ा, इससे वस्तु में प्रकाश इस प्रकार के कोण पर सांद्रित होता है, जिससे केवल कलिलीय कणों से परावर्तित प्रकाश ही उपनेत्र तक पहुँचता है।

१९२६

थियोडार स्वेदबर्ग (Theodor Svedberg)

(१८८४-)

"छितरित पद्धतियों (disperse systems) **पर कार्य के लिए।"**

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

थियोडार स्वेदबर्ग का जन्म वैल्बो, स्वीडेन में हुआ था। आपने उप्पसल विश्व-विद्यालय में अध्ययन किया। डॉक्टर उपाधि प्राप्त करने के हेतु लिखी गयी थीसिस में आपने उच्च आवृत्ति वाली विद्युत्-धाराओं के प्रभाव से धातुओं को छितरा कर कलिलीय विलयनों को बनाने की नयी विधि का वर्णन किया। जब इस प्रकार की धाराएँ स्वर्ण अथवा निकल विद्युदग्रों के बीच में चलायी जाती हैं, तो धातु जल में छितरा जाती है। अति सूक्ष्मदर्शी में परीक्षण करने पर धातु के महीन कण दिखाई पड़ते हैं। स्नातक होने के एक वर्ष बाद १९०९ में आपने इन विधियों का लगभग ५०० पृष्ठ वाली एक पुस्तक में वर्णन किया। सूक्ष्म रूप से छितरित कण सदैव गति अथवा कंपन की दशा में रहते हैं। स्काटलैंड के वनस्पति-वैज्ञानिक रा० ब्राउन (R. Brown) ने इसका परीक्षण आलम्बित परागों में किया था। स्वेदबर्ग ने इस ब्राउनीय गति (Brownian Movement) का अध्ययन किया और कुछ मोटे कलिलीय कणों पर स्वयं उन अणुओं की गति के प्रभाव को देखा, जो उनसे टकराते हैं। इन प्रायोगिक अध्ययनों का प्रकाशन अणुओं का अस्तित्व (The existence of the Molecules) शीर्षक रूप में १९१२ में हुआ।

उसी वर्ष उप्पसल में स्वेदबर्ग प्रोफ़ेसर बन गये। तब आपने अपना ध्यान कलिलीय कणों पर गुरुत्व के कर्षण (pull) में वृद्धि पर जमाया। यह वृद्धि सेन्ट्रीफ्यूज में उसको उच्च वेग से घुमाने पर की जा सकती है। स्वेदबर्ग ने एक अति सेन्ट्रीफ़्यूज (ultra-centrifuge) का विकास किया। यह कार्य अंशतः उस समय हुआ जब आप मैडिसन वीस (Madison, Wis.) में १९२२–२३ तक अतिथि बनकर

शोधकर्त्ता और लेक्चरर के रूप में रहे थे। जिन पदार्थों का अणु बहुत बड़ा होता है—जैसे प्रोटीन, ऐसे कार्बनिक पदार्थों के विलयनों पर शोधकार्य करने के लिए अति-सेन्ट्रीफ़्यूज बनाया गया था। उप्पसल विश्वविद्यालय में भौतिक रसायन के इंस्टीट्यूट में डायरेक्टर रह कर अब भी आप यह कार्य कर रहे हैं।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"इस विधि का आधार यह तथ्य था कि.........अति सूक्ष्मदर्शी में कल्कन संतुलन (Sedimentation equilibrium) के मापन से भारी अणुओं की संहति का निर्धारण सम्भव होना चाहिए।

"जब एक बन्द पात्र में किसी विलयन को काफ़ी देर तक सेन्ट्रीफ़्यूज किया जाता है तो अंततोगत्वा एक संतुलन की अवस्था आ जाती है और तब कल्कन और विसरण (sedimentation diffusion) एक दूसरे के बराबर हो जाते हैं। उस समय अणु-भार के निर्धारण के लिए केवल घूर्णन केन्द्र से $स_१$ और $स_२$ सेंटीमीटर दूरी पर दो बिन्दुओं पर विलयन के सांद्रण के अनुपात के मापन की आवश्यकता होती है; ताप, सेन्ट्रीफ़्यूज के वेग एवं विलयशील के आंशिक विशिष्ट आयतन (partial specific volume) तथा विलायक के घनत्व का भी ज्ञान होना चाहिए।

"यह सूत्र केवल तनु विलयनों के लिए लागू होता है। सांद्र विलयनों के लिए अणुभार निकालने वाले सूत्र में विलायक की आंशिक विशिष्ट स्वतंत्र ऊर्जा (partial specific free energy) का भी ध्यान रखना चाहिए।

"अध्ययन किये जाने वाले विलयन की थोड़ी मात्रा —०.०१ से ०.२५ घन सें०— को एक शीशे अथवा स्फटिक (quartz) के पात्र में रख दिया जाता है। पात्र में समतल समांतर दीवारें होती हैं और उसको स्थिर ताप पर रख कर विशेष सेन्ट्रीफ़्यूज़ में घूर्णित किया जाता है। जब सेन्ट्रीफ़्यूज का बल गुरुत्व से ५००० गुना हो जाता है, तो इस सेन्ट्रीफ़्यूज का फ़ोटो ले लिया जाता है। जब संतुलन की अवस्था आ जाती है और पात्र की फ़ोटो ले ली जाती है, तो विभिन्न सांद्रण वाले विलयनों की श्रेणी (series) की उसी पात्र में सेन्ट्रीफ़्यूज को थोड़ी देर चला कर ही फोटो ले ली जाती है, अर्थात् उस समय जब कि कल्कन प्रायः आरम्भ नहीं होता। तब एक प्लेट

१. "A Method for the Determination of the Molecular Weight of the Proteins", Journal of the American Chemical Society, Vol. XLVIII 1926 के पृष्ठ ४३० से अनूदित।

पर विलयन की सब फ़ोटो लगा ली जाती हैं—कल्कन संतुलन की ओर जाते समय की, उस अवस्था के पहुँचने के बाद की और विभिन्न सांद्र वाले विलयनों की। तब स्वतः अंकित माइक्रोफ़ोटोमीटर (self registering microphotometer) की सहायता से प्लेट रिकार्ड कर ली जाती है। इस प्रकार के रेकार्ड को प्राप्त करने पर एक वक्र बनता है। इससे विलयन के सांद्रण और घूर्णन केन्द्र से उसकी दूरी का सम्बन्ध सरलता से स्थापित हो जाता है।

"हेमोग्लाबिन रक्त की श्वास प्रक्रियात्मक शक्ति के सूत्र के लिए आवश्यक गुणनखंड है, और इसका कायिकी-महत्त्व विख्यात है। इन कारणों से इसका अणुभार ज्ञात करना अति आवश्यक है।......अणुभार ज्ञात करने के लिए हिमांक अथवा बाष्प-दाब के निर्धारण की जो साधारण विधियाँ हैं वे इतने अणुभार वाले पदार्थ में स्वभावतः नहीं लग पातीं और इसीलिए हेमोग्लाबिन के अणुभार के मापन के लिए जो पहले कार्य हुआ है, उसमें अर्ध पारगम्य झिल्ली (semi permeable membrane) द्वारा उसके रसाकर्षण दाब के मापन का ही वर्णन है।

"हमने जो पहले प्रयोग किये, उनमें डायालाइज (dialyze) किये हुए आक्सी हेमोग्लाबिन के शुद्ध जलीय विलयन और १% पोटैसियम क्लोराइड विलयन का प्रयोग किया गया। इनसे हेमोग्लाबिन का जो अणुभार निकला वह उसके न्यूनातिन्यून मान–१६,७००–से ३–४ गुना अधिक था।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

गुरुत्व की प्रक्रिया से अणुओं का उनके विलयनों में पृथक्करण, अणुभार ज्ञात करने की सबसे सीधी और सरल विधि जान पड़ती है। किन्तु इसमें अनेक बातें आ जाती हैं और उन पर विचार तथा तुलनात्मक डेटा (Data) के दृष्टिकोण से उनका मूल्यांकन करना चाहिए। गुरुत्व के प्रभाव की जो गणना की जाती है उसमें अणुभार केवल एक ही गुणनखंड है; पदार्थ के आकार और उसकी सापेक्ष गुरुता पर भी विचार करना चाहिए; विलायक के बंधकों पर भी विचार करना चाहिए और ये विलायक की अम्लीयता अथवा क्षारीयता के अंश (degree) पर तथा लवणों की उपस्थिति पर आधारित होते हैं। घूर्णन के उच्च वेग को प्राप्त करने के लिए बनाये यंत्र में कई विधियों से परिवर्तन करना पड़ा। जिस पदार्थ से घूर्णक बनाया गया, उसके भार एवं उसकी मजबूती के अनुसार, उसका चयन किया गया। विद्युत्-शक्ति से यंत्र को नहीं चलाया गया। उसके स्थान पर घिर्री (Turbine) लगायी गयी। परीक्षण और कल्कन की

फ़ोटो लेने के लिए जो प्रबन्ध किया गया उस पर भी काफ़ी ध्यान लगाना पड़ा। बहुत छोटे सेन्ट्रीफ़्यूजों को जिनके घूर्णक का व्यास केवल एक सेंटीमीटर होता है, १० लाख घूर्णन प्रति मिनट के हिसाब से चलाया जा सका। इसके विपरीत बड़े—२० सेंटीमीटर तक—व्यास के घूर्णक वाले सेन्ट्रीफ़्यूज से गुरुत्व से ३४,८०० गुना अधिक बल, केवल १८,००० घूर्णन प्रति मिनट के वेग से लगाया जा सका।

प्रोटीन, वायरसों और संश्लिष्ट रेजीनों के अणुभार को अति सेन्ट्रीफ़्यूज से ज्ञात किया गया। उच्च रीढ़ जन्तुओं में हेमोग्लाबिन का अणुभार ६८,००० होता है; कुछ जीवाणुओं में यह ३४,००० होता है और निम्न रीढ़ जन्तुओं में केवल, १७,०००। दूसरे रक्त रंगद्रव्य हीमोसायेनिब का अणुभार ९० लाख निकला। मापनों की कुछ विधियों से सेल्युलोज़ में फलशर्करा की २००० इकाइयाँ जान पड़ती हैं। अति सेन्ट्री-फ़्यूज में इससे कम आणव इकाइयों का परीक्षण हो सकता है; इनमें फलशर्करा की केवल १०० इकाइयाँ हो सकती हैं। उच्च बहुअंशी (highly polymeric) संश्लिष्ट रेजीनों के व्यापारिक उत्पादन के समय सेन्ट्रीफ़्यूज के बड़े बल को लगाकर कल्कन पर अन्वेषण किया जा सकता है और इससे अणुओं के आकार और रूप का ज्ञान हो सकता है; यह ज्ञान बड़े औद्योगिक महत्त्व का है।

१९२७

हाइनरिश वीलैंड (Heinrich Wieland)

(१८७७)

"पित्त अम्लों और उनके सदृश यौगिकों पर शोध-कार्य के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

हाइनरिश वीलैंड का जन्म फ़्रोरज़्हाइम, बादेन में हुआ था। आपके पिता रसायनज्ञ थे। हाइनरिश ने जर्मनी के कई विश्वविद्यालयों में रसायन का अध्ययन किया। १९०१ में आपने म्यूनिख विश्वविद्यालय से डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। वहीं १९१३ में आप कार्बनिक रसायन के प्रोफेसर बन गये। कैसर विल्हेल्म इंस्टीट्यूट में हाबेर के के साथ १९१७-१८ तक युद्ध-कार्य करने के बाद आपने १९२१ में फ़ाइबुर्ग में शिक्षा संबंधी कार्य एवं शोध आरम्भ की। १९२६ के उपरांत आपने म्यूनिख में विल्सटैटर के उत्तराधिकारी के रूप में कार्य किया।

इस शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में जीवन-रसायन का जो नवीन रूप बना था, उसकी ओर वीलैंड बहुत आर्कषित हुए। अपने प्रथम म्यूनिख काल में आपने जीवन में आक्सीकरण के केन्द्रीय प्रक्रम पर काफ़ी मौलिक कार्य किया था। हम श्वास लेकर रक्त को आक्सीजन देते हैं; यही आक्सीजन श्वास निकालते समय कार्बन से संयोग करके कार्बन डाइ आक्साइड के रूप में एवं हाइड्रोजन से संयोग करके जल रूप में बाहर आती है। आक्सीकरण की जो सबसे सरल व्याख्या है, वह आक्सीजन से संयोग है। किन्तु वीलैंड ने हाइड्रोजन के कार्य पर भी जोर दिया और कहा कि जो आम तौर से आक्सीकरण जान पड़ता है, वह महत्त्वपूर्ण दशाओं में डिहाइड्रोजनीकरण (dehydrogenation) भी हो सकता है। जब किसी धातु का आक्सीकरण होता है—उदाहरणतया लोहे में जंग लगना—तो निश्चित रूप से आक्सीकरण की विधि में हाइड्रोजन का विनाश होता है, क्योंकि धातु और जल में एक मध्यवर्ती (intermediary) यौगिक बनता है।

$$Fe + H_2O \rightarrow Fe\,(H_2O) \rightarrow FeO + H_2$$
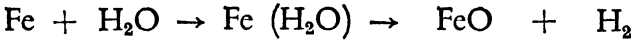
लोह जल हाइड्रेट आक्साइड हाइड्रोजन

जीवाणु में मध्यवर्त्ती यौगिक के आक्सीकरण से, यौगिक का हाइड्रोजन किसी हाइड्रोजन-ग्राही से संयोग करता है।

ऐलकेलाइडों, पित्त अम्लों और बड़े विषैले जीवन संबंधी पदार्थों पर कार्य हुआ। जब आपके मित्र विनडाउस (Windaus) (देखिए पृ०) डिजीटैलिस ग्लूकोसाइड्स (digitalis glucosides) पर कार्य कर रहे थे तो वीलैंड ने पशु-शरीर में निर्मित हृदय के विषों की रासायनिक रचना को स्पष्ट किया, विशेष रूप से स्थल मेंढक (toad, भेक) द्वारा उत्पादित एक विष का। सी० शोएप्फ़ (C. Schopf) के साथ आपने तितलियों के परों पर रंगद्रव्यों की रासायनिक रूपरेखा का विकास किया और मछली की चमड़ी पर उसके सदृश पदार्थों को प्राप्त किया। जिगर में एनीमिया नाशक (anti-anemic) पदार्थों पर शोध-कार्य के लिए यह बिलकुल पृथक् विषय बड़ा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[१]

नोबेल पुरस्कार प्राप्त करते समय वीलैंड ने उस विधि का वर्णन किया जिससे आप पित्त से प्राप्त सबसे महत्त्वपूर्ण अम्ल—कोलिक अम्ल—के अणु में आक्सिजन का उपयुक्त स्थान बताने में समर्थ हुए थे। इस विधि में अनेक स्थलों पर रुकना पड़ता था; इन विभिन्न स्थलों पर पित्त से, जो आरंभिक पदार्थ था, निकले हुए विभिन्न पदार्थों को विभिन्न पित्तीय नाम देने पड़ते थे। एक साधारण योजना को बनाना था; २४ कार्बन परमाणुओं को निश्चित संख्या दी गयी, क्योंकि ऐसा समझा जाता था कि ये परमाणु एक दूसरे के बाद आते हैं और चार घेरों (rings) में तथा उनसे संयुक्त निश्चित स्थानों पर पार्श्वश्रृंखला में व्यवस्थित होते हैं। तब अणु को सीधा बनाकर समझना था; यह अच्छी प्रकार से नियंत्रित करके अणु के आंशिक विनाश से किया जाता था, अथवा कभी-कभी अणु को और अधिक जटिल बनाना पड़ता था—उदाहरणतया हाइड्राक्सिल समूहों की ग्रिनयार्ड प्रतिकर्मक से रक्षा करके। उस समय कुछ अनिश्चितता रह गयी, किन्तु अणु में जो कृत्रिम परिवर्तन किये गये थे, उनसे उसकी आंतरिक रचना को स्पष्ट रूप से समझने में बड़ी सफलता मिली।

१. Lex Prix Nobel en 1927 से अनूदित।

"कोलिक अम्ल के सूत्र से एक ऐसे आकार का ज्ञान होता है जिसमें कार्बन के चार संघनित घेरे हैं और उनमें तीन पार्श्व श्रृंखलाएँ लगी हुई होती हैं।

"कार्बाक्सिल समूह, जो अम्लीयता के लिए उत्तरदायी है, एक पार्श्व श्रृंखला पर होता है। कोलिक अम्ल के और तीन आक्सिजन परमाणु ऐलकोहलीय हाइड्राक्सिल समूह के रूप में वितरित होते हैं; कोलिक अम्ल में वे तीसरे, सातवें एवं बारहवें कार्बन परमाणु पर होते हैं। डेसाक्सीकोलिक (desoxycholic) अम्ल, C_{24} H_{40} O_4 में १२वें कार्बन परमाणु पर हाइड्राक्सिल समूह नहीं होता और लिथोकोलिक (litho-cholic) में एक हाइड्राक्सिल समूह तीसरे कार्बन परमाणु से बँधा होता है। एक कोलिक अम्ल को, C_{24} H_{20} O_4 जो डेसाक्सी-कोलिक अम्ल का समावयव है, मैंने विनडाउस के साथ कई जीवाणुओं के पित्ताशय (विशेषकर हंस, ढोर (cattle) एवं मनुष्य के) से पृथक् किया है। इस कोलिक अम्ल को चीनोडेसाक्सी-कोलिक (Chenodesoxy-cholic) अम्ल और ऐन्थ्रोपो-डेसाक्सीकोलिक (anthropo-desoxycholic) अम्ल कहकर व्यक्त किया जाता है। यद्यपि हम दोनों शोधकर्त्ताओं में आपस में बड़ा सामंजस्य है, तथापि नामकरण के संबंध में हम लोगों में कोई बात तय नहीं हो पायी है। इस अम्ल में दो हाइड्राक्सिल समूह ७वें एवं १२वें कार्बन परमाणु पर स्थापित होते हैं। जैसा स्पष्ट है, ये चारों कोलिक अम्ल एक दूसरे से काफ़ी मिलते-जुलते हैं; केवल उनका आधारभूत ढाँचा ही एक नहीं है, परन्तु उनमें हाइड्राक्सिल समूह का वितरण भी एक प्रकार का है।

"डेसाक्सीकोलिक अम्ल से आरम्भ करके अणु का पहला भंजन किया जाता है; यह घेरे १ में डाइकीटो अम्ल की भाँति तोड़ा जाता है। इस प्रकार दो समावयव डेसाक्सीबिलैनिक (desoxy-billanic) अम्ल प्राप्त होते हैं।

"डेसाक्सीबिलैनिक अम्ल से प्राप्त चक्रीय (cyclic) कीटोन (ketone) तोड़ कर खोला गया। कई मध्यवर्ती यौगिकों के बनने के पश्चात् हेक्साकार्बोनिक (hexa-carbonic) अम्ल, C_{23}. H_{34}., O_{12} बनता है। इसमें एक घेरा पहले की भाँति ही रहता है और इसलिए इसको सोलनिलिक (solanellic) अम्ल कहा गया। गरम करके सोलैनिलिक अम्ल को तोड़ने पर जो विच्छेदन हुआ उससे एक नया घेरा पेंटानोन (pentanons) का बनता है। इसको और तोड़ने पर एक अम्ल C_{22} H_{32} O_{12} प्राप्त होता है, जिसको बिलायडानिक (biloidonic) अम्ल कहते हैं।

"बिलायडानिक अम्ल से आरम्भ करके अंतिम घेरे में प्रवेश करने के सारे प्रयास असफल रहे।

"यह स्पष्ट हो गया होगा कि जिन प्रयोगों का अभी तक वर्णन किया गया है इनमें बड़े अणु के केवल दो परमाणुओं को स्पष्ट रीति से हटा लिया जाता है। अब तक हम लोग कदम ब कदम चल रहे थे, किन्तु उपयुक्त समय में कार्य पूरा करने के लिए इस नियम को त्यागना पड़ा।

"हम लोगों ने चोलानिक अम्ल $C_{24}H_{40}\ O_2$ के एस्टर से आरम्भ किया। यह सारे समूह का आरंभिक पदार्थ है। इसको ग्रिनयार्ड की प्रतिक्रिया से डाइफ़िनाइल युक्त (diphenylated) कार्बीनोल (carbinol) में परिवर्त्तित किया गया। क्रोमिक अम्ल से इसका आक्सीकरण किया गया। इस प्रकार एक-एक करके कार्बन परमाणुओं को तोड़ा गया। तीसरे कार्बन परमाणु के साथ, चौथा भी टूट गया। इससे सिद्ध हुआ कि इसमें मेथिल-समूह जुड़ा हुआ था। $C_{20}\ H_{32}\ O_2$ अम्ल से आरम्भ करके इस प्रक्रिया में जो नीरसता थी, उसमें एक अद्भुत परिवर्तन हुआ ......चौथे घेरे को भी खोलने में सफलता मिली। इस चौथे घेरे में कार्बन के केवल ५ परमाणु थे। दूसरे घेरे की पार्श्व-श्रृंखला के संबंध से (७वें कार्बन परमाणु के लैक्टा-नोइज़ेशन से एवं डिहाइड्रो–अम्ल के CO–समूह के संघनन से) १८वें कार्बन परमाणु पर पार्श्व-श्रृंखला की स्थिति निश्चित हो जाती है।

"कोलिक अम्ल के सूत्र का जो हमको इस समय ज्ञान है वह केवल अनुमान स्वरूप है, क्योंकि अंतिम दो कार्बन परमाणुओं की स्थिति को अभी निश्चयात्मक रूप से ज्ञात नहीं किया गया है।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

कोलिक अम्ल का चित्र सामने रखने के कुछ समय पश्चात् वीलैंड को उसमें कुछ परिवर्त्तन करना पड़ा। नवीन रासायनिक सादृश्यों द्वारा और एक्स-किरण से प्राप्त चित्रों की सहायता से कार्बन परमाणुओं की दूरी के मापन द्वारा यह पता चला कि १ से १४ तक कार्बन परमाणु तीन बेंज़ीन घेरों में दो कार्बन परमाणुओं से जुड़े हुए थे और उनसे ५ कार्बन परमाणुओं का केवल एक घेरा दो कार्बन परमाणुओं से जुड़ा हुआ था। इस ढाँचे पर विभिन्न पार्श्व-श्रृंखलाओं से विभिन्न पशुओं के विभिन्न पित्तीय अम्लों के पृथक्-पृथक् गुणधर्मों का कारण स्पष्ट होता है। पौधों से प्राप्त स्टीरोल में भी इसी प्रकार का ढाँचा था। स्थल मेंढक ब्यूफ़ो वल गेरिस (Bufo vulgaris) से प्राप्त ब्यूफ़ो विष कुमुदिनी के वर्ग वाले स्क्विल (squill) पौधे से प्राप्त सिलारेन (scill-aren) से रासायनिक रूप से संबंधित था।

खाद्य पदार्थों के पाचन में पित्तीय अम्लों का महत्त्वपूर्ण भाग होता है। उनकी रासायनिक रचना में थोड़े से अंतर से ही ये उपयोगी पदार्थ कभी-कभी विष बन जाते हैं। इसी प्रकार के अन्य रासायनिक पदार्थों का बाद में आविष्कार हुआ। ये सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित होकर मनुष्य और पशु की वृद्धि एवं लैंगिक विकास में निश्चयात्मक प्रभाव डालते हैं। पित्तीय पदार्थों के नवीन ज्ञान से लैंगिक हार्मोनों के रसायन का ज्ञान थोड़ ही समय में प्राप्त हो गया।

१९२८

एडोल्फ़ विनडाउस (Adolf Windaus)

(१८७६)

"स्टीरोल की रचना के अध्ययन के लिए एवं उनका संबंध विटामिनों से स्थापित करने के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

एडोल्फ विनडाउस का जन्म बर्लिन में हुआ था और वहीं आपकी आरंभिक शिक्षा हुई। आपने फ़ाइबुर्ग एवं बर्लिन में औषध का अध्ययन किया। एमिल फ़िशर (Emil Fischer) के व्यक्तित्व और उनके कार्य से प्रभावित होकर आप अन्य लोगों की भाँति रसायन की ओर आकृष्ट हुए। फ़ाइबुर्ग में रसायन को मुख्य विषय लेकर, एवं भौतिकी तथा जन्तुशास्त्र को सहायक विषय लेकर आपने डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। इसके एक वर्ष बाद आप बर्लिन की फिशर कीप्र योगशाला में वापस आ गये। इसके बाद शीघ्र ही आपने कोलस्टीरोल एवं डिजीटैलिस पर कार्य आरम्भ किया।

कोलस्टीरोल शब्द दो ग्रीक शब्दों—पित्त (chole) और ठोस (stereos) से मिलकर बना है। मो० शेवरियूल (M. Chevreul) ने इसकी उपस्थिति को वसा में दर्शाया था। यह वसा का वह भाग है, जो साबुन में सोडे अथवा पोटाश की प्रतिक्रिया से परिवर्त्तित नहीं हो पाता। अनेक पौधों के बीजों एवं फलों से ऐसे असाबुनीकरणीय (unsaponifiable) अवशेष प्राप्त हुए, किन्तु वे कोलस्टीरोल नहीं थे। इन पदार्थों के पूरे समूह के वर्गीकरण के लिए जो कार्य विनडाउस ने किया, उसकी तुलना वालाख़ द्वारा किये गये तारपीनों पर कार्य (देखिए पृ० ४०) से की जा सकती है। कोलस्टीरोल को पित्ताशय में पड़े पत्थरों द्वारा केलासित किया जा सकता है। इसके एक अणु में २७ कार्बन परमाणु होते हैं। हलकी विधि से आक्सीकरण करने पर इसके ८ कार्बन परमाणु अलग हो जाते हैं; ये कार्बन परमाणु, अणु

के बड़े भाग में (जिसमें कार्बन परमाणुओं के चार घेरे होते हैं) लगी पार्श्व-शृंखला को व्यक्त करते हैं।

स्टीरोल और डिजीटैलिस पर शोध-कार्य का संबंध इस प्रकार स्थापित हुआ—डिजीटैलिस पत्तियों में से निकले एक पदार्थ, डिजीटोनिन (digitonin) में कुछ स्टीरोलों के साथ संयोग करके अविलेय अवक्षेप बनाने की क्षमता होती है। विनडाउस ने इस प्रतिक्रिया का अर्गोस्टीरोल के उपविकिरण (irradiation) से प्राप्त पदार्थों को स्पष्ट रूप से पहचानने में उपयोग किया। उस समय आप गाटिन्जेन विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर थे। इन्सब्रूक में व्यावहारिक औषध रसायन के २ वर्ष तक प्रोफ़ेसर रहने के बाद आपने इस पद पर १९१५ से कार्यारम्भ किया था।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"स्वयं कोलस्टीरोल का जीवशास्त्र में क्या महत्त्व है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए अनेक प्रयोगों की आयोजना की गयी है। कई अन्वेषकों ने कोलस्टीरोल के भौतिक विशेषकर कलिल-रासायनिक, गुणधर्मों पर बल दिया है। वे कोलस्टीरोल की वसा के साथ पायस बनाने की, एवं कोशिका में उसकी पारगम्यता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। इन संबंधों का और अधिक स्पष्टीकरण होना चाहिए।

"हाल में एक तथ्य ने रसायनज्ञों एवं कायिकीज्ञों का विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया है और वह है स्टीरोल का रैकिटिस नाशक (antirachitic) विटामिन से संबंध। रैकिटिस के लिए काडलिवर तेल बड़ी अच्छी औषध है और यह विटामिन उस तेल के असाबुनीकरणीय भाग में विशेषरूप से पाया जाता है। जहाँ तक मेरा ख्याल है, जर्मन डाक्टर हुल्डशिन्सकी (Huldschinski) पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने काडलिवर तेल के अलावा रैकिटिस के लिए अति बैंजनी प्रकाश से उपविकिरण का औषध रूप में प्रचार किया। अमरीका के दो वैज्ञानिक—हेस (Hess) और स्टीनबाक (Steenbock)—ने एक दूसरे से स्वतंत्र रूप में बाद को यह ज्ञात किया कि रोगी जीव के उपविकिरण की आवश्यकता नहीं है; उसको दिये जाने वाले भोजन का उपविकिरण पर्याप्त है। उन्हीं वैज्ञानिकों ने और लगभग उसी समय दो अंग्रेज़ों (रोज़ेन हाइम–Rosenheim और वेब्स्टर–Webster) ने लंडन में यह ज्ञात किया कि प्रतिक्रिया-शील पदार्थ खाद्य द्रव्यों के असाबुनीकरणीय भाग में होता है और वे स्टीरोल हैं।

१. Lex Prix Nobel en 1928 से अनूदित।

"पहले यह विश्वास किया जाता था कि पौधों, पशुओं और फफूंदी से प्राप्त सब स्टीरोलों को अति बैंजनी प्रकाश से सक्रिय बनाया जा सकता है। भौतिक मापनों और जीवशास्त्र के प्रयोगों से बाद में यह पता चला कि कोलस्टीरोल और सिटो-स्टीरोल में सूक्ष्म मात्रा में एक अधिमिश्रण होता है और यह सक्रिय यौगिक के निर्माण के लिए उत्तरदायी है। कोलस्टीरोल में से यह अशुद्धि सरलता से पृथक् की जा सकती है। यह दिखा दिया गया है कि फफूंदी से प्राप्त अर्गोस्टीरोल और यह अधिमिश्रण एक ही पदार्थ हैं; या यदि बिलकुल ठीक-ठीक कहा जाय तो इस अधिमिश्रण का अवशोषण वर्णक्रम और उसके कायिकी लक्षण बिलकुल अर्गोस्टीरोल की भाँति होते हैं।

"अर्गोस्टीरोल का रैकिटिस नाशक विटामिन में परिवर्त्तन अतिबैंजनी प्रकाश के २५३–३०२ m μ इकाई के तरंगदैर्ध्य के बीच में होता है; ३१३ m μ से अधिक दीर्घ तरंगदैर्ध्य वाले एवं २४८ से कम तरंगदैर्ध्य वाले प्रकाश से कोई विश्वसनीय प्रभाव नहीं होता।

"सक्रियता—१८३° सें० के निम्न ताप पर भी सफल होती है। जीव-शास्त्रीय रूप से (biologically) पर्याप्त सक्रिय (लगभग १।५०,००० मिलीग्राम) मात्रा के उत्पादन के लिए ७०० से १००० अर्ग की आवश्यकता होती है। बहुत देर तक उपविकिरण से विटामिन डी नष्ट हो जाता है।

"बाद में प्राप्त किये जा सकने वाले उपविकिरण के प्रयोगों के लिए पूर्ण रूप से आक्सिजन का हटाना (जो बहुत कठिन है) ही पर्याप्त नहीं है, किन्तु इसके लिए, जहाँ तक संभव हो सके सारे विलयन का एक प्रकार से (uniformly) उपविकिरण करना चाहिए। पहले हमने पारद लैंप के चारों ओर लिपटे हुए स्फटिक सर्पिल के बीच में नाइट्रोजन दाब युक्त अर्गोस्टीरोल के ०. २५ प्रतिशत ऐलकोहलीय विलयन को सक्रिय बनाने का प्रयास किया।

"बाद में हमने अर्गोस्टीरोल के ईथरीय विलयन को गरम किया जिसमें दुहरी दीवार वाले स्फटिक पात्र में से शुद्ध नाइट्रोजन आती रहती थी और स्फटिक पात्र के अन्दर मैगनीशियम ध्रुवों के बीच में विद्युत् चिनगारियों का उत्पादन होता था।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

यद्यपि विनडाउस के कोलस्टीरोल पर कार्य से लैंगिक हार्मोनों के रसायन (दे० पृ० १६३–६५) की नींव पड़ी और यद्यपि आपकी डिजीटैलिस (digitalis) संबंधी शोधकार्यों से हृदय के लिए टानिकों और प्रशीतकों (sedatives) की टेक्निकल तैयारी

पर प्रभाव पड़ा, तथापि विटामिन डी के उत्पादन के लिए आपकी विधियों का सर्वाधिक उपयोग हुआ। इन अन्वेषणों में विनडाउस ने कार्बनिक रसायन की विधियों का जीव-शास्त्रीय एवं भौतिक विधियों से सामंजस्य स्थापित किया। अवशोषण वर्णक्रम और खिलाने के प्रयोगों का संबंध शुद्ध रासायनिक प्रतिक्रियाओं से स्थापित किया गया। एक समूह रूप में कार्य करने से जो लाभ होते हैं वे सब स्पष्ट हो गये। इन सूक्ष्म शोध-कार्यों से यह ज्ञात हुआ कि उपविकिरण उपयोगी हो सकते हैं, किन्तु उनका सावधानी से नियंत्रण करना चाहिए, क्योंकि अधिक उपविकिरण हानिकर भी हो सकता है। अर्गोस्टीरोल के विटामिन में परिवर्त्तन के लिए थोड़ी ऊर्जा पर्याप्त है; १ ग्राम पेट्रोलियम के दहन से जो ऊर्जा प्राप्त होती है वह १० ग्राम अर्गोस्टीरोल के परिवर्त्तन के लिए पर्याप्त है। जिस विशिष्ट रूप में इस ऊर्जा का उपयोग किया जाता है, वह उत्पादित प्रभाव के लिए निश्चयात्मक होती है। बूरडिलन (Bourdillon) ने इस विटामिन को कैल्सीफ़ेराल (calciferol) कहा। विनडाउस ने विटामिन डी के मिश्रण से पृथक् करने के लिए इसे बाद में विटामिन $डी_2$ कहकर व्यक्त किया। शुद्ध विटामिन का एक औंस ३,००० बालकों की एक वर्ष की विटामिन डी की आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त है। बाद के शोध-कार्यों में खाद्य पदार्थों की विशेषतया दूध की—विटामिन डी की मात्राओं में वृद्धि करने की सुरक्षापूर्ण एवं कुशल विधियाँ प्रतिपादित की गयी हैं। इनमें उन्हीं सिद्धांतों का उपयोग हुआ है जिनको विनडाउस ने बताया था। दुग्ध स्टेनलेस इस्पात की नलियों में नियंत्रित धाराओं के रूप में बहता है। नलियों के बीच में अतिबैंजनी प्रकाश का लैंप होता है। इस प्रक्रिया में से वायु सावधानी से हटा दी जाती है।

जिस कार्य से यह सब विकास हुआ और जिसमें वैज्ञानिक एवं टेक्निकल दृष्टिकोण से उपयोगी अनेक अध्ययन हुए उसका उपयुक्त मूल्यांकन कौन कर सकता है?

१६२६

आर्थर हार्डेन (Arthur Harden)

(१८६५-१६४०)

हन्स फ़ान यूलेर-चेल्पिन (Hans Von Euler Chelpin)

(१८७३)

"शर्करा के किण्वन पर एवं किण्वित एन्जाइमों के अन्वेषण के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

आर्थर हार्डेन का जन्म मैन्चेस्टर, इंग्लैण्ड में हुआ था। आपने १८८८ में जर्मनी के एरलांगेन विश्वविद्यालय से डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। ओवेन्स कालेज, मैन्चेस्टर में (१८८८–९७) तक आप डिमान्स्ट्रेटर और लेक्चरर रहे। इस अवधि में आप अध्यापन में ही व्यस्त रहे। आपने हेनरी रासको (Henry Roscoe–१८३३–१९१५) के साथ पाठ्यक्रम के अनुसार एक बड़ी सुन्दर पुस्तक लिखी और एफ़० सी० गैरेट के साथ व्यावहारिक कार्बनिक रसायन पर एक पुस्तक लिखी। सुरक्षात्मक औषध के जेनर इंस्टीट्यूट में (जो बाद में लिस्टर इंस्टीट्यूट बन गया) आपने १८९७ में प्रवेश किया। वहाँ आपने विभिन्न जीवाणुओं में भेद करने के लिए किण्वन की विधि का अध्ययन करना आरम्भ किया। आपने यीस्ट रसों पर भी कार्य किया। जब यीस्ट को गरम जगह में रखा जाता है तो उसके किण्वों से कोशिकाओं के पदार्थ द्रवित हो जाते हैं। स्वयं-पाचित अथवा आत्म-उत्प्रेरित (autolyzed) यीस्ट रस में तब भी किण्व का एक एन्ज़ाइम-संकुल (enzyme complex) होता है, जिसे ज़ाइमेज़ (zymase) कहते हैं। आत्म-उत्प्रेरित यीस्ट को उबालने से किण्व की सक्रियता नष्ट हो जानी चाहिए; तथापि हार्डेन ने देखा कि उबाली हुई आत्म-उत्प्रेरित यीस्ट को डालने से किण्वन की गति में काफ़ी वृद्धि हो जाती है। इस सक्रियता-कारक किण्व में, जिसे हार्डेन ने सह-ज़ाइमेज़ (Co-zymase) कहा, फ़ास्फ़ोरिक

अम्ल और उसके लवण होते हैं। क्या सक्रियता उनके कारण होती है? आपने बुल्नेर रस (दे० १९०७ का विवरण) एवं शर्करा के मिश्रण में पोटैसियम फ़ास्फ़ेट डाला और देखा कि कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा में बड़ी वृद्धि हो जाती है। प्रयोगों को और अधिक सूक्ष्म बारीकी से करने पर CO_2 और फ़ास्फेट के संबंध को दिखाया जा सका। बाद में शर्करा (हेक्सोज़) और फ़ास्फ़ेट के एक यौगिक का पता चला। स्पष्ट रूप से, अब यह मान लेना चाहिए कि यहाँ कोई विशेष एन्ज़ाइम कार्य कर रहा था। क्योंकि उसकी प्रतिक्रिया फ़ास्फेट पर होती थी, अतः उसको फ़ास्फ़ेटेज़ का नाम दिया गया। बाद के शोध-कार्य से पता चला कि इस प्रक्रिया में कई यौगिक बनते हैं; इनमें शर्करा ऐलकोहल की भाँति कार्य करती है। जिस प्रकार ऐलकोहल और अम्लों के मिलने से यौगिक, जिनको साधारणतया एस्टर कहा जाता है, बनते हैं उसी प्रकार ये शर्करा-फ़ास्फ़ेटेज़ बनते थे।

हार्डेन ने १९३० में लिस्टर इंस्टीट्यूट के जीवन-रसायन भाग के अध्यक्ष पद से अवकाश प्राप्त किया।

अपने व्यावहारिक क्षेत्र में हार्डेन प्रायः अकेले रहते थे, किन्तु बायोकेमिकल जर्नल (Biochemical Journal) के संपादक एवं पुस्तकों के रचयिता के रूप में आप वैज्ञानिक जगत् को काफ़ी देते रहे।

यूलेर-चेल्पिन

हन्स फान यूलेर चेल्पिन का जन्म आग्सबर्ग, बवेरिया में हुआ था। पहले आप कलाकार बनना चाहते थे; विशेषतया, आपने चित्रकला का अध्ययन किया। बाद में रंगों में अधिक रुचि होने के कारण आप भौतिकी एवं रसायन की ओर आकृष्ट हुए। १८९५ में बर्लिन विश्वविद्यालय से स्नातक होने के बाद आपने नर्न्स्ट (Nernst) की प्रयोगशाला में भौतिक-रसायन संबंधी कार्य आरम्भ किया। १८९७ में आप एर्‌ही-नियस (Arrhenius) के भौतिकी में सहायक हो गये। दो ग्रीष्म ऋतुएँ आपने वैंट हाफ़ (Vant Hoff) के साथ बितायी--(१८९९ और १९००)। १९०० तक आप स्टॉकहोम में भौतिक रसायन के लिए निपुण कार्यकर्ता बन चुके थे। १९०६ में साधारण एवं कार्बनिक रसायन के आप वहीं प्रोफ़ेसर बन गये।

भौतिक रसायन की पृष्ठभूमि में आपने जीवन-रसायन संबंधी कार्य किया, जैसा एरहीनियस महोदय ने किया था। जब रासायनिक परिवर्तन के मार्ग (course) संबंधी साधारण नियमों का, एवं एक-एक विशिष्ट गुणधर्म के मापन के लिए भौतिक

सिद्धांतों तथा यंत्रों का जीव में होने वाले और उनके द्वारा किये गये रासायनिक परिवर्त्तनों की जटिलता और उनके रहस्य को समझने में उपयोग किया गया, तो नवीन क्षेत्र खुले। इस प्रकार किण्वन एवं एन्ज़ाइम रसायन का संबंध साधारण रसायन से स्थापित किया जा सका। यूलेर ने इसप द्धति का अपनी पुस्तक (Chemie der Enzyme) 'एन्ज़ाइम का रसायन' में वर्णन किया है। यह १९१० में प्रकाशित हुई थी और बाद में इसके कई संस्करण निकले।

जब यूलेर और उसके साथियों ने यह दिखाया कि एन्ज़ाइम और प्रतिक्रिया किये जाने वाले पदार्थ-सब्स्ट्रेट (Substrate) में जो रासायनिक बंधक होता है, वह वस्तुतः अम्लीय (कार्बाक्सिलिक) समूह एवं क्षारीय (एमीडो) समूह का बंधक होता है तो इस प्रकार की विख्यात रासायनिक बातों से किण्वों की प्रतिक्रिया का रासायनिक अंधकार नष्ट हो गया। आपका विशेष ध्यान सह-एन्ज़ाइमों की ओर गया, जो सहायक के रूप में एन्ज़ाइम के साथ प्रतिक्रिया करते हैं। हार्डेन ने ऊष्मा में स्थायी, अथवा कम-से-कम उबालने पर नष्ट न होने वाले, ज़ाइमेज़ के सहएन्ज़ाइम को पृथक् किया था। यूलेर ने इसका शुद्धीकरण किया और उसकी रासायनिक चीर-फाड़ की। इसका परिणाम यह हुआ कि यह स्पष्ट हो गया कि इस सह-एन्ज़ाइम में शर्करा और फ़ास्फ़ोरिक अम्ल का एक विशेष एस्टर रासायनिक रूप से प्यूरीन से जुड़ा होता है और यह मांसपेशियों में पाये जाने वाले यौगिक से संबंधित होता है। उसकी सक्रियता 'स' प्रति भार इकाई Co द्वारा आपने सह-ज़ाइमेज़ (संक्षिप्त रूप Co) के शुद्ध रूप के लक्षणों का वर्णन किया।

इस सह-प्रतिक्रिया की अथवा इस तथ्य की कि जीवन सक्रिय (bioactive) पदार्थ को एक सहायक की आवश्यकता होती है, तुलना रक्षा विज्ञान (immunology) से की जा सकती है। यूलेर ने इन सहायकों के विपरीत उन पदार्थों को भी देखा, जो कुछ दशाओं में एन्ज़ाइम प्रतिक्रिया में और जहाँ एक-एक पदार्थ के रोकने की क्षमता (inhibiting force) दूसरे निरोधक (inhibitor) के डालने के बाद बिना किसी अनुपात में बढ़ती जाती है वहाँ विष का-सा कार्य करते हैं। इसके विपरीत जीवनोपयोगी बड़े प्रभाव वाले पदार्थों में कुछ प्रतिरोधक (counteracting) पदार्थ भी होते हैं। विटामिन में विटामिन-नाशक होते हैं और साधारण रूप से यदि सक्रिय पदार्थों को अर्गोन (ergones) कहा जाय तो हम विशिष्ट अर्गोन-नाशक पदार्थों को जान सकते हैं।

इन विचारों से, जो सदैव अनेकों प्रयोगों पर आधारित होते थे, यूलेर खमीर विज्ञान

(enzymology) से औषध एवं आनुवंशिकता के प्रश्नों पर आये। आपने एन्ज़ाइमों के रसायन पर जो पुस्तक लिखी उसके प्रथम संस्करण के प्राक्कथन में आपने यह विचार रखा कि इस क्षेत्र में, अन्य क्षेत्रों की भाँति, सिद्धांतों के प्रतिपादन से टेक्निकल आदमियों और डाक्टरों को सहायता मिलेगी। १९२९ में सिद्धांत-प्रतिपादन का व्यावहारिक रूप स्पष्ट हो गया, जब एक नवीन इंस्टीट्यूट, स्टाकहोम विश्वविद्यालय का जीव-रासायनिक (Bio-chemical Institute) इंस्टीट्यूट, आपके कार्य के लिए समर्पित कर दिया गया। तब से यूलेर उस इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर हैं।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन

हार्डेन[1]

"यीस्ट से बने पदार्थों से जो किण्वन किया जाता है उनमें एक आकर्षक विशेषता यह है कि उनके द्वारा किये गये किण्वन का वेग उतनी ही यीस्ट द्वारा किये गये किण्वन के वेग से काफ़ी कम होता है। इस प्रकार, बुख्नेर-रस के किण्व का किण्वन वेग, जिस यीस्ट से वह रस बना हुआ है उसके किण्वन वेग की अपेक्षा १/२०–१/४० होता है।

"जब फ़ास्फ़ेट को इस रस में डाल दिया जाता है, तो किण्वन वेग १० से २० गुना तक बढ़ जाता है। इस तथ्य से मुझे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि यीस्ट से बने पदार्थ में किण्वन संकुल का काफ़ी बड़ा भाग—लगभग आधा भाग—यीस्ट कोशिकाओं की चोट से बच जाता है, किन्तु अकार्बनिक फ़ास्फ़ेट का काफ़ी अंश वहाँ नहीं पहुँच पाता। जीवित यीस्ट से किण्वन करने पर उसके वेग में फ़ास्फ़ेट अथवा आर्सिनेट के डालने से कोई अंतर नहीं होता। इसका कारण यह हो सकता है कि यीस्ट कोशिकाओं में ही अकार्बनिक फ़ास्फ़ेट पर्याप्त मात्रा में हो, किन्तु कुछ संदेह इसलिए हो जाता है, क्योंकि यह सम्भव है कि ये पदार्थ कदाचित् कोशिकाओं की दीवार को स्वतंत्रता से न भेद सकें। तथापि, जैसा सम्भवतः मालूम पड़ता है, यह सत्य है कि यीस्ट-रस इत्यादि बनाने की प्रक्रिया में, फ़ास्फ़ेट के रस में आने की विधि में रुकावट पड़ जाती है; अब प्रश्न यह उठता है कि यह रुकावट किस प्रकार पड़ती है।

"जिस विधि में वृद्धिकारक पदार्थों को निष्क्रिय बनाने की कम-से-कम संभावना है वह कदाचित् बुख्नेर द्वारा प्रयुक्त की गयी थी। किन्तु इसमें भी यह संभावना है कि वह पदार्थ, यदि उपस्थित है, तो अधिक मात्रा में उपयुक्त कीसेलगुर द्वारा अवशोषित हो जाय और इस प्रकार निकल जाय।

1. Les Prix Nobel en 1929 से अनूदित।

"कुछ प्रयोग (अभी तक अप्रकाशित) मेरी प्रयोगशाला में कु० मैकफ़ारलेन (Miss Mcfarlane) द्वारा किये गये हैं। इनमें यह जानने की चेष्टा की गयी है कि किस अवस्था पर यह परिवर्त्तन होता है और क्या पीसने अथवा दबाकर निकालने की विधि में परिवर्त्तन करने से ऐसा रस प्राप्त किया जा सकता है, जिसमें फ़ास्फ़ेटेज़ अधिक मात्रा में हो। इन प्रयोगों से जान पड़ता है कि पीसने की सरल विधि से ही वैसे परिवर्त्तन हो जाते हैं जैसे बुख़्नेर के यीस्ट रस में पाये जाते हैं।

"जब बुख़्नेर द्वारा प्रयुक्त कीसेलगुर के स्थान पर अन्य पदार्थ लिये गये, तो कुछ थोड़े अंतर स्पष्ट हुए। उदाहरणतया, $CaCO_3$ के उपयोग से सबसे अधिक सक्रिय रस प्राप्त किया गया; $BaCo_3$ के उपयोग से पूर्ण रूप से निष्क्रिय रस प्राप्त हुआ।

"जब उपयुक्त परिस्थितियों में अकार्बनिक फ़ास्फ़ेट को डाल कर यीस्ट से बने पदार्थों द्वारा किण्वन किया जाता है, तो ऐलकोहल और CO_2 तीव्र वेग से निकलते हैं और शर्करा का एक फास्फ़ोरिक एस्टर एकत्र होता रहता है। इस रूप में प्राप्त फ़ास्फ़ेट की मात्रा डाले गये फ़ास्फ़ेट के कारण (CO_2/PO_4) के एवं ऐलकोहल तथा कार्बन डाइआक्साइड की वर्द्धित मात्रा के अनुपात से लगभग समानुपातीय होती है। (यह सत्य है कि क्लूईवेर (Kluyver) और स्ट्रुईक (Struyk) ने इससे निम्न अनुपात प्राप्त किये हैं, किन्तु इसमें संदेह नहीं है कि ०.८–१ तक के अनुपातों का प्रायः परीक्षण किया गया है।)

"उत्पादित फ़ास्फ़ोरिक एस्टर में मुख्यतया हेक्सोजडाइफ़ास्फ़ेट होता है; इसका मौलिक वर्णन सबसे पहले मेरे और यंग (Young) द्वारा किया गया था। राबिन्सन और मैंने हेक्सोज़मानोफ़ास्फ़ेट का भी वर्णन किया है; बाद में किये गये राबिन्सन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसमें दोनों फ़ास्फ़ेटों का मिश्रण हो सकता है। सूखी हुई यीस्ट से बनाये गये पदार्थों (और संभवतः अन्य विधियों से तैयार किये पदार्थों) से एक जटिलता और आ जाती है और वह यह कि डाइसैकेराइड फ़ास्फ़ोरिक एस्टर (ट्रिहैलोज़मानोफ़ास्फ़ेट) भी कदाचित् उपस्थित हो सकता है।

यूलेर-चेल्पिन[1]

"एक निश्चित बंधुता के कारण कोई एन्ज़ाइम अपने मूल पदार्थ (Substrate) के साथ संयोग करता है। उदाहरणतया जब अंडे की सफ़ेदी का पाचन होता है, तो उसमें एमीनोअम्लों की लंबी शृंखला बन जाती है, जिनसे मिलकर वह लगभग बनी

1. Les Prix Nobel en 1929 से अनूदित।

है; इसके साथ-साथ दो और उपजात बनते हैं—यह दो एमीनो-अम्ल हैं, जो डाइपेप्टाइड कहलाते हैं।

"डाइपेप्टाइडों के विशेष एन्ज़ाइम होते हैं—इनको डाइपेप्टीडेज़ेस (dipeptidases) कहते हैं। प्रश्न यह उठता है कि डाइपेप्टाइड के किस समूह से एन्ज़ाइम का संबंध होता है। यह साधारण तथ्य है कि एन्ज़ाइम के टूटने से जो पदार्थ बनते हैं उनकी क्रिया बाधक (impeding) होती है; यहाँ यह कार्य एमीनो अम्ल करते हैं। अब हम लोगों को प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात करना था कि बाधक की भाँति कार्य करने के लिए टूटे पदार्थ में कौन समूह होना चाहिए। जोसेफ़सन (Josephson) ने एक विशेष डाइपेप्टीडेज़ के साथ कार्य किया है; उससे हम लोगों को ज्ञात हुआ कि यह समूह एमीनो अम्ल का होना चाहिए।

"जिन परिस्थितियों में यह बाधक क्रिया होती है और जिनमें एन्ज़ाइम डाइपेप्टीडेज़ेस के साथ संयोग करता है, उनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि एन्ज़ाइम में जब कार्बाक्सिल समूह जुड़ा होता है, तो वह मूलपदार्थ से संयोग कर लेता है; इस प्रकार, निश्चित परमाणु-समूहों से एन्ज़ाइम और मूलपदार्थ की बंधकता की सर्वप्रथम व्याख्या की गयी।

"सह-एन्ज़ाइम के शुद्धीकरण एवं रासायनिक गवेषणा में हम लोगों को जो अधिक समय और शक्ति लगानी पड़ी उसका कारण यह है कि सह-एन्ज़ाइम पौधे और पशुओं दोनों में सर्वाधिक रूप में मिलते हैं और ये अधिकतम महत्त्वपूर्ण भी हैं। सह-ज़ाइमेज़ को पृथक् करने में जो कठिनाई है, वह उसकी बहुत अधिक तनुता की है, जिसमें वह प्राप्त होता है। यीस्ट को सबसे अधिक अच्छा पदार्थ माना जाता है, जिससे वह निकाला जा सकता है, यद्यपि इसके एक किलोग्राम में अधिकतम २० मिलीग्राम सहज़ाइमेज़ होता है।

"अनेक शुद्धीकरण विधियों को एक साथ लगाने पर हम लोगों ने अधिकतम सक्रियता का एक पदार्थ बनाया; युक्तियुक्त इकाइयों में व्यक्त करने पर इसकी सक्रियता 'स' Co=८५,००० है, जबकि आरम्भिक पदार्थ में 'स' Co=२०० थी। इस पदार्थ को लवण में परिवर्त्तित किया जा सकता था। लवण में से जब सहज़ाइमेज़ पुनरुत्पादित होता है, तो उसकी सक्रियता में कोई परिवर्तन नहीं होता। शुद्धतम पदार्थ की रचना न्यूक्लिओटाइड (nucleotide) की भाँति होती है; इसमें शर्करा का, प्यूरीन का और फ़ास्फ़ोरिक अम्ल का एक-एक अवशेष होता है और इस प्रकार यह ऐडीनिलिक अम्ल से काफ़ी मिलता-जुलता है।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

जीवों के जीवन-प्रक्रमों में फ़ास्फ़ेटों का बड़ा महत्त्व है। पौधों को उनकी बड़ी आवश्यकता होती है और अब वे खादों के एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गये हैं। प्रोटीन, जैसे केसीन, में फ़ास्फ़ेट होते हैं और वे हड्डी तथा मूत्र में भी पाये जाते हैं। यह ज्ञात था कि वे यीस्ट में भी होते हैं; इसलिए उबले यीस्ट-रस में उनका खोजना स्वाभाविक था। किन्तु इसका हार्डेन की शोध पर इतना अधिक प्रभाव हुआ कि उससे यह ज्ञात हुआ कि शर्करा, किण्वन में सबसे पहले फ़ास्फ़ेट से संयोग करती है; इससे फ़ास्फ़ेट के जीवन रसायन का स्पष्टीकरण हुआ। एन्ज़ाइम विज्ञान (enzymology) के दृष्टिकोण से यह स्पष्ट था कि मध्यवर्ती यौगिक में किसी एक तोड़ने वाले एन्ज़ाइम–फ़ास्फ़ेटेज़–को भी होना चाहिए, किन्तु इसके पहले फ़ास्फ़ेट-संयोगकारक (phosphorylating) एन्ज़ाइम के प्रभाव का भी होना आवश्यक था। पशु-तंतुओं में से, यीस्ट में से, पौधों में से और जीवाणुओं में से फ़ास्फ़ेटेज प्राप्त किया गया, यद्यपि वे इन सबमें समान नहीं थे। कभी-कभी ऐडीनिलिक अम्ल भी उसकी रचना में आ जाता था। यद्यपि यह आश्चर्य-जनक प्रतीत होता है कि किण्वन की सरल प्रक्रिया में टूटने के लिए शर्करा को पहले फ़ास्फ़ोरिक अम्ल एस्टर में परिवर्त्तित होना पड़ता है, तथापि उसकी शक्ति को पाचना-त्मक रूप से उपयोगी बनाने के लिए और अधिक जटिल प्रक्रियाएँ होती हैं। मूलपदार्थ और एन्ज़ाइम में फ़ास्फ़ोरिक अम्ल की कई बार अदला-बदली होती है; इसके बाद मांसपेशियों को शर्करा से कैलरियाँ मिल पाती हैं।

पाचन के लिए विशेष रूप से उपयोगी बनाने में शर्करा फ़ास्फ़ेटों का व्यावहारिक उपयोग हुआ। हेक्सोज़ फ़ास्फ़ेट के कैलसियम लवण पानी में काफ़ी विलेय हैं; अतः ये शरीर को शीघ्र पाचित हो जाने वाले रूप में कैलसियम और फ़ास्फ़ोरस दोनों प्रदान कर सकते हैं।

यह विचार कि एन्ज़ाइम और मूलपदार्थ के बंधक द्वारा एन्ज़ाइम प्रतिक्रिया होती है, काफ़ी क्षेत्रों में मान्य है। इस बंधकता की प्रकृति, जिसको यूलेर और जोसेफ़सन ने अपनी डाइपेप्टाइड के लिए इतनी सरलता से जान लिया था—अन्य दशाओं में काफ़ी अस्पष्ट है। एन्ज़ाइम से प्रभावित होने के लिए विशिष्ट रासायनिक रचना की आवश्यकता जानने के लिए इस पर और अधिक कार्य करना होगा।

१९३०

हन्स फ़िशर (Hans Fischer)

(१८८१-१९४५)

"हेमीन (Hemin) एवं पर्णहरिम की रचना की शोध के लिए; विशेष रूप से हेमीन के संश्लेषण के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

हन्स फिशर का जन्म माइन (Main) पर स्थित फ्रांकफ़ोर्ट के पास होल्स्ट में हुआ था। आप औषध और रसायन दोनों में समान रूप से रुचि रखते थे। मार्बुर्ग विश्वविद्यालय से १९०४ में आपको रसायन में और म्यूनिख़ विश्वविद्यालय से १९०८ में औषध में डाक्टर की उपाधि मिली। म्यूनिख में औषध-क्षेत्र में कार्य करने के पश्चात् बर्लिन में एमिल फिशर के इंस्टीट्यूट में आपने रासायनिक कार्य किया। इन्सब्रुक में आप सन् १९१६ में औषध रसायन के प्रोफ़ेसर बन कर विनडाउस के उत्तराधिकारी हुए। १९२१ में कार्बनिक रसायन के प्रोफ़ेसर बन कर आप म्यूनिख लौट आये। आपने इस पद पर शिक्षक, शोध-कार्यकर्त्ता और अपने जीवन के अंत में वैज्ञानिक पत्रों के संपादक के रूप में कार्य किया।

जब फ़िशर ने रक्त के रंग-द्रव्यों पर विस्तारपूर्वक कार्यारम्भ किया तो पौधों के इसी प्रकार के हरे रंग द्रव्य की रासायनिक प्रकृति काफी स्पष्ट हो चुकी थी। लाल हेमीन और हरे पर्णहरिम में एक अजीब समानता थी; पर्णहरिम में बड़े अणु के मध्य में मैग्नीशियम होता है; हेमीन में इसी प्रकार से मध्य में लोह होता है। इन दोनों पदार्थों में बाकी बचे अणु को बिना हानि पहुँचाये मध्य परमाणु को हटाया जा सकता है। हेमीन में जब इस प्रकार सूक्ष्मता से लोह हट जाता है तो उसकी रचना हेमीन के थोड़े पूयन (putrefaction) से बने और पोरफ़ायरिन (porphyrin) कहलाये, पदार्थों के समान होती है। तब भी हेमीन से प्राप्त पदार्थों, उनके परिचय एवं संबंधों के बारे में काफ़ी अनिश्चितता थी। फ़िशर ने जब पित्त (bile) में प्राप्त

हेमीन के निम्न (degraded) पदार्थ का अन्वेषण किया, तो उससे हेमीन के रसायन में सूक्ष्म दृष्टि डालने का पहला अवसर प्राप्त हुआ। पित्त वर्णक (pigment) में एक बाइलीरुबिन (bilirubin) भी होता है। जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है— सौभाग्यवश, इस क्षेत्र में अनेक कृत्रिम नामों के बीच में, कुछ ऐसे अवश्य हैं जिनके नाम से साधारण गुणधर्मों का कम-से-कम कुछ आंशिक संबंध होता है—बाइली-रुबिन, यद्यपि यह एक निम्न हेमीन है, लाल होती है। जब ऐसीटिक और हाइड्रो आयोडिक अम्ल से गरम करके इसके अणु को दो टुकड़ों में तोड़ा जाता है, तो इससे एक ऐसा अम्ल प्राप्त होता है, जिसमें हेमीन के अणु का एक भाग वैसा का वैसा ही रहता है। इसकी रचना को जानना और परिचय प्राप्त करना सरल था; यह पायरोल (pyrrole) था, जिसको पहले के रसायनज्ञों ने तैलीय और गंधमय रूप में पशु-पदार्थों को ऊँचे ताप तक गरम करके, उससे बनी तैल बाष्प को संघनित करके, प्राप्त किया था।

इसकी जानकारी डब्लू० कूईस्टर (W. Küster) ने १९१२ में की थी। इसको आधार बना कर फ़िशर ने हेमीन के रसायन का अध्ययन आरम्भ किया। बाइलीरुबिन और उससे संबंधित यौगिकों को सरलता से संश्लेषित किया जा सकता था। चार पायरोल अणुओं की आधारभूत रचना स्पष्ट हुई। पायरोल में चार कार्बन परमाणु होते हैं और इनका घेरा नाइट्रोजन परमाणु से पूर्ण होता है। मेथिल, एथिल, प्रोपियोनिक अम्ल और असंतृप्त एथिल समूह को (जिसको वाइनिल–vinyl–कहते हैं और जो प्लास्टिक के उपयोग-कर्त्ताओं को भलीभाँति ज्ञात है) जोड़ कर इसमें परिवर्त्तन किया जा सकता है। इन समूहों को पायरोल घेरे में विभिन्न संभावित प्रकार से जोड़ कर और जिस क्रम में ये चारों समूह हेमीन में जुड़ सकते हैं, उनसे उसकी क्रमशः जाँच की गयी। वाइनिल समूह ने काफ़ी परेशान किया जब तक इसमें हाइड्रोजन जोड़ कर इसे एथिल-समूह में परिवर्तित नहीं कर लिया गया। पोरफ़ायरिन में जब इस प्रकार का परिवर्त्तन किया गया, तो उसे मीज़ोपोरफ़ायरिन कहा गया।

असंभावित व्यवस्थाओं को क्रमशः हटा कर हेमीन की एक रचना का प्रस्ताव रखा गया और ज्ञात रचना वाले कार्बनिक पदार्थों से आरम्भ करके उसके संश्लेषण को रचना की जाँच के लिए कसौटी बनाया गया।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"रक्त वर्णक हीमोग्लाबिन एक जटिल यौगिक है; इसको इसके भागों—रंग-द्रव्य और प्रोटीन–में कई विधियों से तोड़ा जा सकता है। रक्त पर ग्लैशियल ऐसीटिक अम्ल

1 Lex prix Nobel en 1930 से अनूदित।

और सोडियम क्लोराइड की प्रतिक्रिया होती है। टाइशमान (Teichmann) ने इस भंजन को सूक्ष्मदर्शी में सबसे पहले देखा था। शालफ़ीफ़ (Schalfejeff), नेनकी (Nencki), पिलोटी (Piloty) और विल्सटैटर (Willstatter) एवं अन्य लोगों ने बड़ी मात्रा में इसको बनाने की विधि का विकास किया। इस प्रकार टाइशमान केलास अब किलोग्राम मात्रा में सुलभ हैं। स्वीडेन के वैज्ञानिक मोएरनर (Morner) ने इस भंजन प्रक्रिया को ऐलकोहलीय गंधकाम्ल द्वारा करने की दूसरी विधि भी निकाली थी। इस विधि से हेमीन के एस्टर बनते हैं।

"हेमीन का सूत्र $C_{34}\ H_{32}O_4\ N_4\ FeCl$ है।
इसमें परमाणुओं का अनेक प्रकार से संयोग हो सकता है। नेनकी, कूईस्टर, पिलोटी, विल्सटैटर, एच० फिशर और उनके विद्यार्थियों ने विश्लेषक निम्नीकरण (analytical degradation) की जिस विधि का विकास किया था, उससे हेमीन की पायरोल-रचना सिद्ध हो चुकी थी। इन विधियों से हेमीन की रचना को समझने में बड़ी सहायता मिली। जब हेमीन में से लोह को हटा लिया जाता है, तो पोरफ़ायरिन बनते हैं। इन पदार्थों में (प्रकाश-रासायनिक, Photochemical) संवेदनात्मक (sensibilizing) प्रभाव होते हैं, जैसा हाउसमान (Hausmann) ने दिखा दिया है।

"ये पोरफ़ायरिन प्रकृति में काफ़ी वितरित हैं। कार्य करने के लिए यह अनुमान बनाया गया कि पोरफ़ायरिन का संबंध रक्त वर्णक से है; इस अनुमान से कार्यारम्भ किया जा सका। यह आशा की जाती थी कि पोरफ़ायरिन की रचना के निर्धारण के पश्चात् स्वयं हेमीन की रचना का ज्ञान होगा; उसी प्रकार जिस प्रकार रक्त वर्णक से जीवशास्त्रीय रूप में बनी बाइलीरुबिन के निम्नीकरण से प्राप्त पदार्थों द्वारा रक्त वर्णक की रचना का स्वयं ज्ञान हुआ था। इसी कारण से मैंने प्राकृतिक पोरफ़ायरिनों का क्रमवद्ध अन्वेषण आरम्भ किया, और इसी प्रकार स्वयं रक्त वर्णक का जीव-शास्त्रीय निम्नीकरण किया।

"पोरफ़ायरीनूरिया (porphyrinuria) में जो एक साधारण बीमारी है, मनुष्य पोरफ़ायरिन की बड़ी मात्रा को मूत्र रूप में विसर्जित करता है। पहले यह समझा जाता था कि इसमें केवल हीमैटोपोरफ़ायरिन (Hematoporphyrin) काम में आती है, किन्तु यह विचार ग़लत सिद्ध हुआ। कम-से-कम दो पोरफ़ायरिन—यूरोपोरफ़ायरिन (Uroporphyrin) और काप्रोपोरफ़ायरिन (Coprprphyrin) मूत्र रूप में विसर्जित होती हैं, यद्यपि मूत्र में काप्रोपोरफ़ायरिन अधिक मात्रा में होती है।

इनमें से एक कदाचित् काप्रोपोरफ़ायरिन का हैमर्सटेन (Hammeraten) ने पहले ही परीक्षण किया था। मूत्र में उपस्थित काप्रोपोरफ़ायरिन सदैव एक नहीं होती। हिजमान्स फ़ान देन बर्घ (Hijmans Van den Bergh) ने काप्रोपोरफ़ायरिन के एक समावयव का पहले ही परीक्षण किया था, किन्तु अब तक पोरफ़ायरीनूरिया के केवल एक रोगी में। कदाचित् यह रोचक हो कि ट्यूरैकस (Turacus) परिवार की अफ्रीकी चिड़ियों के उड़ने वाले परों में यूरोपोरफ़ायरिन होती है; इनमें वह ताम्र के एक संकुल यौगिक के रूप में होती है।

"यूरोपोरफ़ायरिन से काफ़ी संबंधित कानकोपोरफ़ायरिन (conchoporphyrin) होती है जो घोंघों के बाह्य आवरण में कदाचित् कैलसियम लवण के रूप में होती है। इसकी सूक्ष्म मात्रा साधारण रूप से मूत्र में और यीस्ट में होती है। अपर्याप्त उत्पादन (culture) परिस्थितियों में यीस्ट को अधिक मात्रा में काप्रोपोरफ़ायरिन बनाने के लिए मजबूर किया जा सकता है। इस प्रकार यीस्ट को पोरफ़ायरीनूरिया की मानवीय दशा में लाया जा सकता है।

"एक पोरफ़ायरिन (ooporphyrin) उन चिड़ियों के अंडे के बाह्य आवरण में भी होती है जो खुले में अंडे देती हैं। रक्त वर्णक के पूयन से पोरफ़ायरिन बनती है जो इस ऊपोरफ़ायरिन से मिलती है और जिसको कैमरर की (Kammerer's) पोरफ़ायरिन कहते हैं। जब पूयन देर तक होता है तो डायट्रो-पोरफ़ायरिन (deuteroporphyrin) बनती है।

ऊपोरफ़ायरिन और प्रोटोपोरफ़ायरिन अथवा कैमरर की पोरफ़ायरिन सब एक ही पदार्थ हैं। जब ऊपोरफ़ायरिन में लोह एक जटिल बंधक द्वारा लगाया जाता है, तो हेमीन बन जाती है। जब ऊपोरफ़ायरिन के एस्टर को हाइड्रोजन द्वारा अवकृत किया जाता है तो मीज़ोपोरफ़ायरिन बनती है। इसी प्रकार ऊपोरफ़ायरिन के एस्टर को टेट्रामेथिलहीमैटोपोरफ़ार्यरिन और हीमैटोपोरफ़ायरिन में परिवर्तित करना संभव है। निम्न चित्र से ये परिवर्तन स्पष्ट हो जाते हैं, इनमें से कुछ प्रतिवर्त्य (reversible) भी हैं—

मीज़ोपोरफ़ायरिन

↑

टेट्रामेथिल हीमैटोपोरफ़ायरिन ⇄ ऊपोरफ़ायरिन एस्टर ⇄ हीमैटोपोरफ़ायरिन

↑ ↓

हेमीन एस्टर ,,
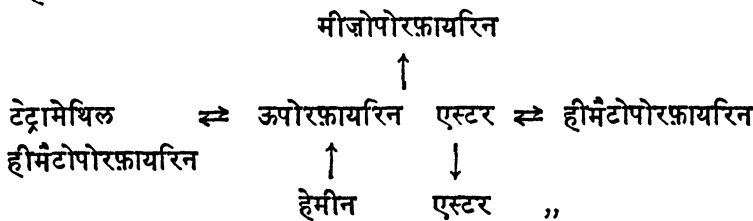
सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

हेमीन और पर्णहरिम में काफ़ी निकट संबंध है। फ़िशर महोदय ने जिन्होंने इस संबंध की सब बारीकियों को दिखाया, हेमीन के संश्लेषण के बाद पर्णहरिम का संश्लेषण आरम्भ किया। यह कार्य आपकी मृत्यु तक लगभग पूर्ण हो गया। जिस विधि से जीव इन पदार्थों का संश्लेषण करते हैं, वह अब भी अस्पष्ट है, यद्यपि फ़िशर महोदय ने ही पायरोल को अमोनिया और ऐसीटिक अम्ल से प्राप्त किया था। हेमीन का पित्त वर्णकों, यूरोबाइलिन (urobilin) और काप्रोपोरफ़ायरिन में निम्नीकरण और उसके रासायनिक परिणाम अब भली-भांति ज्ञात हैं, क्योंकि हेमीन की रचना अब मालूम हो गयी है। हाल में ही इस शोध-कार्य का जो पर्यवेक्षण (survey) हुआ है, उसका निष्कर्ष यह है,—"निःसंदेह, अभी हम लोगों ने इस अध्ययन का केवल आरम्भ किया है।"

रक्त के रंगद्रव्य का संश्लेषण भी, जो लंबी शोध का अति महत्त्वपूर्ण परिणाम है, हेमीन और प्रोटीन पदार्थ-ग्लाबिन, जिसमें स्वयं एमीनोअम्लों के ही १३६ अवशेष हैं, द्वारा बनाये प्राकृतिक यौगिकों के अधिक ज्ञान का आरम्भ है। लाल रक्त-कोशिका में हीमोग्लाबिन पुनः अन्य पदार्थों—शर्करा, वसा, कोल स्टीरीन—के साथ होती है।

रासायनिक इकाई हेमीन जीवशास्त्रीय इकाई हीमोग्लाबिन का केवल एक छोटा भाग है।

१९३१

कार्ल बॉश (Carl Bosch)

(१८७४-१९४०)

फ्रीडरिश बार्गियस (Friedrich Bergius)

(१८८४-१९४९)

"रासायनिक उच्च दाब की विधियों के विकास एवं अन्वेषण द्वारा की गयी आपकी सेवाओं के लिए।"

बॉश

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

कार्ल बॉश को जो कोलोन, जर्मनी, के रहनेवाले थे, यौवन के आरम्भ से ही उन चीजों में रुचि थी, जो एक आदमी कर सकता है, अथवा अपने हाथों के उपयोग से उनको बना सकता है। स्कूल में वह अपने साथियों से गणित, भौतिकी एवं रसायन में आगे थे, किन्तु भाषाओं के अध्ययन में आपको रुचि न थी। अपने योजनामय रासायनिक जीवन की तैयारी के लिए आपने एक वर्ष मशीनों की दुकानों पर व्यतीत किया। शारलाटेनबुर्ग के टेक्नीशे होख्शूले में आपने मेकैनिकल इंजीनियरिंग का अध्ययन आरम्भ किया। आप जान विसलिसेनस (Johannes Wislicenus) के निर्देशन में शुद्ध कार्बनिक रसायन पर शोधप्रबन्ध लिखकर लापजिग (Leipzig) से १८९८ में स्नातकीय उपाधि प्राप्त की। १८९९ में आपने बाडिशे ऐनिलिन अंड सोडा फ़ाब्रीक (Badische Anilin und Soda Fabrik) में अमोनिया का संश्लेषण आरम्भ किया। आप बढ़ईगीरी एवं यांत्रिक विधियों से परिचित थे; साथ में आप इंजीनियर और प्रयोगशाला में कार्य करने योग्य रसायनज्ञ भी थे—फलतः आप अकार्बनिक पदार्थों की तैयारी के लिए किसी भी समस्या को सुलझाने में पूर्ण रूप से योग्य थे। भवन-निर्माण में प्रयुक्त धातुओं एवं मिश्र-धातुओं के ज्ञान से, दाब एवं ताप के नियंत्रण के लिए स्वचालित-सूचक यंत्रों से एवं सुरक्षा-विधियों के विकास से

आप भली-भाँति परिचित थे। इन सबके फलस्वरूप आप फ्रिट्ज हाबेर (Fritz Haber–दे० पृ० ७१) के आविष्कार को प्रयोगशाला से निकाल कर व्यापारिक क्षेत्रों में ला सके।

बॉश के लिए व्यापारिक सफलता प्राप्त करने के लिए ठोस वैज्ञानिक नींव का होना आवश्यक था। आपने शारलाटेनबुर्ग एवं अन्य टेक्नोलाजिकल संस्थाओं में जिन परिस्थितियों में इंजीनियरिंग पढ़ाई जाती थी और जहाँ विज्ञान को गौण स्थान देकर केवल व्यावहारिकता को प्रधानता दी जाती थी, उनकी खूब आलोचना की। आपका मत था कि शुद्ध विज्ञान को व्यवहार में लाने के लिए कल्पना अथवा दार्शनिक शक्ति की आवश्यकता नहीं होती, अपितु आधारभूत तथ्यों के क्रमबद्ध एवं नियमित ज्ञान की आवश्यकता होती है। उत्प्रेरकों के अन्वेषण के लिए आपने सब सुलभ तत्त्वों और उनके यौगिकों से कार्य किया। इस कार्य के लिए तथा कच्चे पदार्थों, शुद्धीकरण एवं उपयोगों के अध्ययन के लिए आपने ओपाऊ में अमोनिया प्रयोगशाला का संगठन किया; इसमें कभी-कभी शिक्षित एवं दीक्षित १८० व्यक्ति एवं १००० सहायक तक रहे हैं। मिट्टी, खाद और पौधे संबंधी शोधकार्य के सहयोग के लिए आपने प्रयोग करने के लिए एक बड़ा प्रयोग घर (फेरजूखसन्साल्ट Versuchsanstalt) १९१५ में खोला; इसके अतिरिक्त आपने जीवन में नाइट्रोजन के कार्य की खोज के लिए एक "जीव-प्रयोगशाला" खोली।

बॉश ने १९२५ में कहा कि जर्मनी के वैज्ञानिकों को एक लाभ यह है, और वह लाभ अभी तक वर्त्तमान है, कि यहाँ के वैज्ञानिक की नींव काफ़ी मज़बूत और चौड़ी होती है, क्योंकि वे अपनी शिक्षा के आरम्भ में ही विशेष ज्ञान प्राप्त करना (specialization) आरम्भ नहीं कर देते। विद्यार्थियों को सहायता देने एवं वैज्ञानिकों को छात्रवृत्ति दिलाने के प्रयास में आपने काफ़ी प्रमुख भाग लिया। अब आप कैसर विलहेल्म गिज़ेल-शैफ्ट में डायरेक्टर के पद पर मैक्सप्लांक के उत्तराधिकारी बने, तो आपके प्रयासों के फलस्वरूप जीव-भौतिकी (Biophysics) के इंस्टीट्यूट का संगठन हुआ।

बॉश को तितलियों के पकड़ने का बड़ा शौक था। जर्मनी के आई० जी० फ़ार्बेन कंपनी के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति की हैसियत से आपका जर्मनी के उद्योग-व्यापार क्षेत्रों में काफ़ी प्रमुख स्थान था; तथापि आपने १९३६ में (एक भेंट में) कहा कि जब मनुष्य प्रकृति के वैज्ञानिक संपर्क में आता है तो, "उसे संसार की महान् हृदय-धड़कन सुनाई देती है और केवल तब वह इस ब्रह्मांड में अपने को सूक्ष्मतम समझ कर विनीत बनता है।"

बर्गियस

फ्रीडरिश बर्गियस का जन्म ब्रेसलाऊ के समीप गोल्डश्मीडेन, जर्मनी में हुआ था। यहाँ आप के पिता की एक रासायनिक फैक्टरी थी। १९०७ में लापज़िग विश्वविद्यालय में किये गये सांद्र गंधकाम्ल के विलेयक रूप में अन्वेषण पर आपको डाक्टर की उपाधि मिली। ऐसे क्षेत्र में कार्य करने के लिए, जिससे भौतिकी और रसायन के क्षेत्रों में संबंध स्थापित होता है, आप बर्लिन में नर्न्स्ट (Nernst) महोदय के पास चले गये। इस बीच में और कार्ल्सरूहे में हाबेर की प्रयोगशाला में व्यतीत थोड़े समय में आप रासायनिक प्रतिक्रियाओं में उच्च दाब के बढ़ते हुए महत्त्व से प्रभावित हुए। आपने सापेक्ष रूप से नवीन इस क्षेत्र में कार्य करने का निश्चय किया। १९०९ में चूने पर उच्च दाब वाली आक्सिजन की प्रतिक्रिया से कैलसियम सुपर आक्साइड बनाने की विधि पर आपने कार्यारम्भ किया। पहले आपने टेक्नीशे होल्शूले में कार्य किया; इसके बाद अपनी प्रयोगशाला में। पात्रों और वाल्वों के बनाने की टेक्निकल (प्राविधिक) समस्या को सुलझाना था। आप रासायनिक पदार्थों के उत्पादन के लिए उच्च दाब वाली विधियों का प्रयोग करने लगे। आपकी रुचि नवीन रासायनिक पदार्थों की ओर न होकर उन भली-भाँति ज्ञात रासायनिक पदार्थों की ओर थी, जो भविष्य में अधिक मात्रा में उपयुक्त होने वाले थे। इस भावी उपयोग के पूर्व दर्शन से तथा इसको उत्पादन-क्षेत्र में लाने की योग्यता से आपको बड़ा लाभ हुआ।

कोयले पर जल की प्रतिक्रिया से हाइड्रोजन प्राप्त करने की विधि का भविष्य में काफ़ी प्रयोग होने की संभावना थी। जब बर्गियस का ध्यान भारी तैलों के मोटर के इंधन में परिवर्तन की ओर आकृष्ट किया गया, तब आपको यह सूझा कि इसमें उच्च दाब पर हाइड्रोजन मिलाना चाहिए। तेलों के भंजन की पुरानी विधि में जिसमें भारी तेल के अणु छोटे अणुओं में तोड़े जाते हैं, एक बड़ा दोष यह था कि भंजन के फलस्वरूप एक ओर मेथेन बनती थी और दूसरी ओर कोक; इनके बीच में इच्छित हलका तेल कम मात्रा में ही प्राप्त होता था। हाइड्रोजन के डालने से यह दोष दूर हो गया। १९१३ में बर्गियस महोदय अपना पहला पेटेंट कराने के लिए तैयार थे। जब १९१४ में युद्ध आरम्भ हुआ तो व्यापारिक मात्रा में हाइड्रोजनीकरण के विकास के लिए आपने एसेन के गोल्डश्मिड्ट संघटन से अपना संबंध स्थापित किया। शीघ्र ही लकड़ी के शर्करा में परिवर्त्तन की समस्या भी योजना में आ गयी; इससे खाद्य समस्या कुछ सुलझ सकती थी। शीघ्र ही काफ़ी सांद्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा सेल्युलोज पर प्रतिक्रिया करने की विल्सटैटर (Willstatter) की विधि इस नवीन विकास का आधार बन गयी।

जब युद्ध समाप्त हुआ तो उपर्युक्त दोनों विधियों संबंधी कार्य पूरा नहीं हुआ था। प्रयोगशाला एवं पाइलट प्लांट (Pilot plant) में यह जारी रहा। १९२७ में हाइड्रोजनीकरण का पेटेंट आई० जी० फ़ार्बेन को बेच दिया गया। इसके पश्चात् बर्गियस का मुख्य ध्येय लकड़ी को शर्करा और इसके बाद यीस्ट, ऐलकोहल एवं डेक्स्ट्रोज़ में परिवर्तन करना रहा। इस कार्य के फलस्वरूप दूसरे विश्वयुद्ध के समय जर्मनी को पर्याप्त मात्रा में कार्बोहाइड्रेट और खाद्य पदार्थ मिलते रहे।

आपने एथिलीन गैस से एथिलीन ग्लाइकाल और क्लोरीन युक्त बेंज़ीन से फ़िनोल बनाने की विधियों का आविष्कार किया। बाद में इनका व्यापारिक उत्पादन में उपयोग हुआ; किन्तु इस कार्य से आप अलग रहे।

यद्यपि बर्गियस अपने कार्य की रासायनिक एवं औद्योगिक प्रगति में काफ़ी रुचि लेते रहे, तथापि आपका प्रमुख काम इन योजनाओं में धन लगाने का ही रहा। मोटर-इंधन, ऐलकोहल एवं खाद्य पदार्थों का बड़ा आर्थिक महत्त्व है। स्वार्थता से परे रहकर एवं दूरदर्शी बन कर बर्गियस ने नये औद्योगिक पदार्थों को राष्ट्र में उपयुक्त स्थान दिलाने को ही अपना लक्ष्य बनाया।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद आप आस्ट्रिया चले गये। इसके पश्चात् विभिन्न सरकारों के निमंत्रण से आप स्पेन और अर्जेन्टाइना गये और वहीं आपकी मृत्यु ब्यूनस-आयर्स में हुई।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

बॉश[1]

"हम लोगों ने हाबेर द्वारा प्रयुक्त उपकरण से ही आरम्भ किया···इसमें कई दोष थे; अतः इसमें अनेक परिवर्तन करने पड़े। अपने नये रूप में इस उपकरण के २४ भाग बिना किसी रुकावट के दिन-रात वर्षों तक कार्य करते रहे। इस प्रकार हमने उपकरण की दक्षता को बढ़ाने के लिए अनेकों उत्प्रेरकों का उपयोग किया। प्रयोगों की संख्या क्रमशः २०,००० हो गयी।

"हम लोगों ने एक उपकरण ऐसा बनाया जिसमें चक्रण पम्प (circulation pump) अमोनिया पृथक्कारी और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं रोचक एक संस्पर्श नली (contact tube) थी। नली की दीवार लगभग ३० मि० मी० मोटी थी।

"मनेसमान (Mannesmann) ने जो दो संस्पर्श नलियाँ बनायी थीं, वे केवल

1. Les prix Nobel en 1931 से अनूदित।

८० घंटे तक कार्य कर सकती थीं। इसके बाद वे फट जाती थीं। यदि हम उनमें नवीन उत्प्रेरक के स्थान पर आसमियम भर देते तो अब तक हमने जितना आसमियम खरीदा है, सबका सब इसी में लग जाता।

"जो धातु भुरभुरी बन जाती थी, उसके अन्वेषण से ज्ञात हुआ कि उसमें नाइट्रोजन की सूक्ष्मतम मात्रा भी न थी। धातु-विज्ञान शोध (metallographic research) से इसकी व्याख्या की जा सकी। उस समय तक इस शोध का महत्त्व रासायनिक इंजीनियरों को प्रायः अज्ञात था, किन्तु मैं यह जानता था, क्योंकि मैंने अपना जीवन धातु-वैज्ञानिक के रूप में आरम्भ किया था।

"हम लोगों ने लोह में हाइड्रोजन के व्यापन (diffusion) से आरम्भ किया। इससे पर्लाइट (perlite) का विकार्बनीकरण (decarbonization) होता था, किन्तु इसमें लोह-हाइड्रोजन के बनने को रोका नहीं जा सकता था। अतः उपकरण के निर्माण में कुछ परिवर्त्तन ऐसा करना था जिससे यह दोष दूर हो सके। संस्पर्श नली की दीवार के दो काम होते हैं—उच्च दाब वाली गैस के दाब को सँभालना और गैस न आ जा सकने वाले स्थान को बनाना। यह कैसे संभव है यदि इन दोनों कार्यों को पृथक् कर दिया जाय, और निर्माण के लिए प्रयुक्त विभिन्न तत्त्वों को इसके लिए दोषी ठहराया जाय? किन्तु यह कार्य शीघ्र ही पूरा किया जा सका। इस सिद्धांत पर बनी पहली प्रयोगात्मक ऊष्मक (तन्दूर—Oven) से ही स्पष्ट हुआ कि यह विचार सही था। पुरानी समस्या का हल इस प्रकार किया गया—दाब को सह सकने वाले आवरण के साथ नरम लोहे की एक अधिक पतली दीवार बनायी गयी। इसके फलस्वरूप हाइड्रोजन, केवल जिसका ही अधिक पतली सतह से व्यापन होता है, वह बिना किसी दाब के निकल जाती है और इस प्रकार प्रतिक्रिया के ऊँचे ताप पर इस्पात के बाहरी आवरण पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हो पाती।

"आरम्भ में ऊँचे दाब के संपीडकों के लिए बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। उस समय तक केवल हवा के लिए बड़े संपीडकों का प्रयोग होता था। ऊँचे दाब के ये संपीडक केवल कुछ बड़े आकार के ही बन पाते थे। सामग्री रखने वाले बक्सों की ओर थोड़ा ही ध्यान दिया गया था। वायु के साथ क्षरण क्रांतिक नहीं होता था और ऐसा समझा जाता था कि कुछ देर के लिए प्रतिक्रिया का रुकना बचाया नहीं जा सकता था। हाइड्रोजन और कोमल संस्पर्श-विधि के साथ परिस्थिति बिलकुल भिन्न थी।...... बहुत सालों तक कार्य करने के बाद हम लोग इसमें सफल हुए। हम लोगों ने छोटे संपीडकों से कार्य आरम्भ किया था, जो आधे दिन तक ही बिना किसी रुकावट के चलते

रहते थे। इसके बाद ३००० अश्व शक्ति वाले एकत्रण (aggregates) हम बना सके जिन्हें विश्वसनीय रूप से ६ मास तक चलाया जा सकता था।

"जब मैं यह कहता हूँ कि इस टेक्निकल विधि में लाभ तभी हो सकता है, जब यह बिना किसी रुकावट के समान रूप से चलती रहे, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। नियंत्रण करने वाले यंत्रों से इस उद्देश्य-सिद्धि में काफ़ी सहायता मिली। हम लोगों ने आरम्भ से ही इस पर काफ़ी ध्यान दिया था क्योंकि ऊष्मक में होने वाली प्रतिक्रियाओं को तभी जाना जा सकता था, जब वे किसी प्रकार से बाहर व्यक्त होती रहें। आज के लिए ये सब साधारण बातें हैं और इसमें प्रयुक्त बहुत-सा सामान व्यापारिक क्षेत्रों में सुलभ है। पहले हम लोगों को स्वयं इसे बनाना पड़ा और इसका परीक्षण भी करना पड़ा।"

बर्गियस[1]

"१९१० में ही लुडविग लैंड्सबर्ग (Ludwig Landsberg) ने मुझसे कहा था कि मैं भारी तेलों और तेल-अवशेषों के भंजन से गैसोलीन प्राप्त करने की समस्या पर कार्य करूँ। विशेषज्ञ उस समय यह बता सकते थे कि मोटर के कार्य में प्रगति होने से गैसोलीन की खपत में काफ़ी वृद्धि हो जायगी, यद्यपि उस समय यह अनुमान कोई नहीं कर सकता था कि यह वृद्धि कितनी होगी। उस समय की भंजन-विधियों में कोई भी दक्षता न थी।

"उच्च ताप द्वारा ढीले पड़े हुए उच्च क्वथनांक वाले पेट्रोलियम की आणव रचना में उच्च दाब वाली हाइड्रोजन को मिलाने का हमने प्रयत्न किया। पहले ऊर्ध्वाधर आटोक्लेवों (autoclaves पतीलों) में किये गये प्रयोगों से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हुआ कि भंजित तेलों में हाइड्रोजन की मात्रा में निश्चित वृद्धि हो जाती है; इस प्रक्रिया में कोक नहीं बनता और जो नये हलके तेल बनते हैं, वे कुछ कम असंतृप्त होते हैं।

"यह शीघ्र ही स्पष्ट हुआ कि जिन ताप परासों में हाइड्रोजन ठीक से प्रक्रिया करती है वह काफ़ी संकीर्ण है।

"भारी तेलों के हाइड्रोजनीकरण के लिए ताप और दाब की जो परिस्थितियाँ हैं, वे प्रायः कोयले की भाँति हैं। चूंकि दोनों दशाओं में यह आवश्यक है कि हाइड्रोजनीकरण किये जाने वाले द्रव अथवा आलम्बन का हाइड्रोजन से भली-भाँति संस्पर्श हो, अतः हम लोगों ने यह मान लिया कि तेल के हाइड्रोजनीकरण के लिए जो उपकरण उपयोगी

1. Lex Prix Nobel en 1931 से अनूदित।

है वह कुछ थोड़े और यंत्रों के साथ कोयले के द्रवीकरण के लिए भी उपयोगी हो सकता है। दोनों विधियों में यह आवश्यक था कि ठोस पदार्थों को प्रतिक्रिया होने वाले कक्षों (chambers) में डाला जाय—तेल के हाइड्रोजनीकरण में विगंधकीकरण (desulfuring) के लिए लोह आक्साइड को डाला जाता है; कोयले के हाइड्रोजनीकरण में पूरे कच्चे पदार्थ को डालना था। यह आरम्भ से ही स्पष्ट था कि उच्च दाब कक्ष में ठोस के डालने में और अवशेषों के हटाने में काफ़ी कठिनाइयाँ सामने आयेंगी। इस टेक्निकल समस्या के संतोषजनक हल के लिए कई वर्षों के कार्य की आवश्यकता थी।

"दाब-पात्र के अंदर वाले भाग को गरम करने के लिए एक दूसरी दाबयुक्त नली को डालना पड़ा, जिसकी दीवार आपेक्षिकतया पतली थी। प्रतिक्रिया-क्षेत्र के दाब से नीचे करके गरम करने वाले माध्यम को दोनों नलियों की सँकरी जगह में से भेजना पड़ा।

"नये बने पदार्थों को जितनी शीघ्रता से प्रक्रम से हटा लिया जाता है, भंजन-प्रक्रिया उतनी ही शीघ्र और जल्दी होती है। इसलिए हाइड्रोजन की काफ़ी अधिक मात्रा प्रयुक्त की गयी। हाइड्रोजन को चक्रण में रखना था। हाइड्रोजन गैसीय एवं द्रवीय पदार्थों के साथ प्रतिक्रिया पात्र से बाहर निकलती थी। जब तेलों को संघनित किया जाता था, तो वह पृथक् हो जाती थी। तेल में विलेय मेथेन के अधिकतर भाग से भी वह पृथक् होती थी। तब वह चक्रण पम्प द्वारा प्रतिक्रिया के लिए पुनः वापस भेज दी जाती थी।

"औसतन, खपने वाली हाइड्रोजन का भार कोयले के भार का ५% था। और अधिक हाइड्रोजन को भेज कर आरंभिक पदार्थों से अधिक प्रतिक्रिया कराने में और इस प्रकार उच्च क्वथनांक वाले तेलों के स्थान पर निम्न क्वथनांक वाले तेलों की मात्रा को बढ़ाने में कोई कठिनाई न थी। आर्थिक दृष्टिकोण से विचार करने पर ज्ञात होगा कि कोयले और उसके द्रवीभूत पदार्थों के हाइड्रोजनीकरण के लिए कितनी हाइड्रोजन का उपयोग किया जाय।

"गैसीय पदार्थों—मेथेन और एथेन—से उच्च ताप पर जल-वाष्प की प्रतिक्रिया से हाइड्रोजन और कार्बन डाइ आक्साइड का उत्पादन किया जा सकता है। कुछ समय तक इस प्रतिक्रिया को हम सफल रूप से कर सके हैं। प्रतिक्रिया के लिए हाइड्रोजन की आवश्यक मात्रा प्राप्त करने के लिए इस विधि से मेथेन-एथेन मिश्रण के थोड़े भाग का परिवर्त्तन पर्याप्त है। हाइड्रोजन से अधिमिश्रित कार्बन डाइ आक्साइड को गैसों को दबा कर उच्च दाब के जल द्वारा सरलता से पृथक् किया जा सकता है।

हाइड्रोजन-उत्पादन का यह सिद्धांत, जहाँ तक मुझे मालूम है, अब अमरीका में तेलों के हाइड्रोजनीकरण के लिए प्रयुक्त होता है।

"अकार्बनिक पदार्थों से भारी तेलों को पृथक् करने में काफ़ी दिक्कतें आयीं ....। जितना अधिक हाइड्रोजनीकरण हो जाता है, पृथक् करने में उतनी ही कम कठिनाइयाँ होती हैं।

"कोयले के तेल के भारी भागों से अच्छे स्नेहक तेलों की तैयारी संभव हो सकी।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

नोबेल पुरस्कार-प्राप्ति के अवसर पर किये गये डा० बॉश के भाषण में जिस टेक्निकल विकास का उल्लेख है वह अमोनिया के उत्पादन से आरम्भ होता है। बाद में उच्च दाब प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप बने अन्य पदार्थों के बनाने में भी इसका विस्तार हुआ। बराबर प्रयत्न करते रहने से विशेष धातु-मिश्रण बने और प्रतिकारक (Reactor) निर्माण का सिद्धांत निकला, विशिष्ट सक्रियता वाले उत्प्रेरक बने तथा गैस संपीडकों में सुधार हुए और महत्त्वपूर्ण प्रक्रम खंडों (factors) के नियंत्रण के लिए सूचकों और नियंत्रकों का एक नया विज्ञान बना। इस दिशा में जो प्रगति हुई है, उसका पता संश्लिष्ट अमोनिया की दी हुई मात्रा में उपयुक्त इस्पात के आँकड़ों से लग सकता है। १९१३ में यह संख्या २७ थी; अगले दो वर्षों में यह गिरकर ११ और ६ रह गयी; १९२४ में यह केवल ३.६ थी और १९२७ में संख्या इसकी भी आधी रह गयी।

इसी आधार पर कार्बन मोनो-आक्साइड और हाइड्रोजन से मेथेनाल का संश्लेषण संभव हुआ। १९२३ तक केवल लकड़ी के आसवन से ही यह ऐलकोहल प्राप्त होता था। जब आई० जी० फ़ार्बेन कंपनी ने संश्लिष्ट ऐलकोहल का निर्माण और उसको यूनाइटेड स्टट्स में भेजना आरम्भ किया, तो ऐसा ज्ञात हुआ कि लकड़ी के आसवन का उद्योग प्रायः समाप्त हो जायगा। किन्तु यह बच गया, यद्यपि संश्लिष्ट ऐलकोहल की तुलना में इससे केवल ३ प्रतिशत ऐलकोहल बनता था। १९३१ में बॉश ने जर्मनी के वार्षिक ४०,००० टन के ऐलकोहलीय उत्पादन की ओर सगर्व संकेत किया। १९४६ में इस विधि से यूनाइटेड स्टेट्स में लगभग २,५०,००० टन मेथेनाल बना था।

इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण संश्लेषण अमोनिया और कार्बन डाइ आक्साइड द्वारा यूरिया का है। यूरिया एक सरल खाद है; इसमें नाइट्रोजन मान अधिक होता है। संश्लिष्ट रेज़ीन की तैयारी भी इसी से होती है; रेज़ीन का उपयोग ढाँचे बनाने और सरेस के रूप में काफ़ी अधिक होने लगा है।

तेल और कोयले के हाइड्रोजनीकरण पर कार्य बर्गियस संघटन में १९१०–१९५२ तक हुआ। जब आई० जी० कंपनी ने इसको हाथ में लिया, तो उत्प्रेरक प्रभावों पर विशेष रूप से अन्वेषण किया गया। मेथेनाल के संश्लेषण में प्राप्त काफ़ी अनुभव इसके लिए उपयोगी हुआ। भारी तेलों के हाइड्रोजनीकरण की गति काफी बढ़ायी जा सकती थी और कुछ चुने-चुने उत्प्रेरकों के उपयोग से विशिष्ट पदार्थ बनाये जा सकते थे। गंधक के जो खनिज तेलों में सदैव मिलती है, विषैले प्रभाव से बचने की समस्या का भी हल हो गया। उच्चतम "आक्टेन संख्याओं" को प्राप्त करके उत्प्रेरक हाइड्रोजनीकरण से मोटर इंधनों की दक्षता को काफ़ी बढ़ाया जा सका।

बर्गियस ने जो पहला अनुमान लगाया था उसके अनुसार उन्होंने घोषणा की थी कि सरलता से हाइड्रोजनीकरण किये जा सकने वाले कोयलों और शीघ्र प्रतिक्रिया न होने वाले कोयलों में कार्बन की मात्रा महत्त्वपूर्ण है; उसे ८५% से कम न होना चाहिए। अब यह ज्ञात हुआ है कि कार्बन की मात्रा से ही विभिन्न कोयलों में भेद नहीं किया जा सकता; हाइड्रोजन और आक्सिजन का अनुपात, कोयले की आयु, उसकी किस्म आदि का उसकी हाइड्रोजन प्रतिक्रिया पर काफी प्रभाव पड़ता है।

पिछले विश्वयुद्ध के समय इंग्लैण्ड और जर्मनी में जितने मोटर ईंधन का उत्पादन हुआ उसका काफ़ी भाग हाइड्रोजनीकरण विधि से प्राप्त हुआ। हाल में ही, कुछ ऐसे प्रयोग आरम्भ हुए हैं जिनसे काफी अधिक परास में कोयले के हाइड्रोजनीकरण के लिए उपयुक्त ताप और दाब की परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

१६३२

अरविंग लैंग्म्यूर (Irving Langmuir)

(१८८१–१६५७)

"सतह रसायन (Surface chemistry) में अन्वेषणों एवं आविष्कारों के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा[1]

"अरविंग लैंगम्यूर का जन्म ब्रूक्लिन, न्यूयार्क में ३१ जनवरी १८८१ को हुआ। ब्रूक्लिन के सार्वजनिक स्कूल में आपकी आरंभिक शिक्षा १८९२ तक हुई। उसी वर्ष आप अपने माता-पिता के पास पेरिस चले गये। वहाँ आपने फ्रांसीसी स्कूलों में तीन वर्ष तक पढ़ा। १८९५ के अंत में आप यूनाइटेड स्टेट्स वापस आ गये और फ़िलाडेलफ़िया की चेस्टनट हिल अकदमी में प्रविष्ट हुए। इसके दूसरे वर्ष आप प्राट इंस्टीट्यूट हाई-स्कूल में पढ़ने के लिए पुनः ब्रूक्लिन वापस आ गये। इस इंस्टीट्यूट में अध्ययन समाप्त करने के बाद आपने कोलम्बिया विश्वविद्यालय के खानों के स्कूल (School of mines) में प्रवेश किया। यहाँ से आप १९०३ में स्नातक हुए और आपको धातु-विज्ञान के इंजीनियर की उपाधि मिली। स्नातक होने के बाद आपने प्रोफेसर नर्न्स्ट की संरक्षता में गाटिन्जेन विश्वविद्यालय में कार्यारम्भ किया। १९०६ में आपको एम० ए० और पी० एच० डी० की उपाधि मिली। आपका मुख्य विषय भौतिक रसायन था।

"अमरीका लौटने पर डा० लैंग्म्यूर होबोकेन, न्यूजर्सी में टेक्नालाजी के स्टीवेन्स इंस्टीट्यूट में रसायन के प्रशिक्षक हो गये। यहाँ आपने १९०९ तक पढ़ाया। तत्पश्चात् आपने जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी की शोध-प्रयोगशाला में प्रवेश किया और इस समय आप उसके सहायक डायरेक्टर रहे।

"डा० लैंग्म्यूर ने रसायन, भौतिकी एवं इंजीनियरिंग के क्षेत्रों में शोध-कार्य किया है; अधिकतर यह कार्य निर्वात घटनाओं (vacuum phenomena) से संबंधित है।

1. Lex Prix Nobel en में आत्मकथा से।

इन रासायनिक एवं भौतिक घटनाओं में आणव एवं परमाणव रीति (mechanism) को ज्ञात करने के लिए आपने अधिशोषित फ़िल्मों और सतहों के गुणधर्मों का आधारभूत अन्वेषण किया; आपने उच्च निर्वात में और निम्न दाब पर गैसों के विद्युत्-विसर्जन की प्रकृति पर भी कार्य किया।

"डाक्टर लैंगम्यूर ने वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं में लगभग १५० रचनाएँ प्रकाशित करायीं। निम्न दाब, रासायनिक प्रतिक्रियाओं और अधिशोषण घटना पर प्रकाशित आपकी रचनाओं की सूची नोबेल भाषण के अंत में दी हुई है। दूसरे क्षेत्रों में आपके प्रकाशन के कुछ विषय ये हैं—ऊष्मा वहन, टंगस्टन तन्तु और लैम्प, धातु के वाष्प दाब एवं उद्वाष्पन का वेग, उच्च निर्वात पर विद्युत्-विसर्जन, गैसों में विद्युत्-विसर्जन, उच्च निर्वात पम्प, परमाणु रचना और संयोजकता एवं अन्य साधारण विषय।"

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"**टंगस्टन पर थोरियम**—जब १ प्रतिशत ThO_2 मिली टंगस्टिक आक्साइड को २८००° तक या और अधिक ताप तक गरम किया जाता है तो टंगस्टन का एक तन्तु बनता है और इसके एक सूक्ष्म भाग में थोरिया धातविक थोरियम में अवकृत हो जाता है। तन्तु में थोरियम सूक्ष्म गोलाकार कणों के रूप में रहता है। ये टंगस्टन केलास की सीमा पर न होकर उन केलासों के बीच में इधर-उधर बिखरे रहते हैं; यदि तन्तु को १९००–२०००° k तक फिर कुछ मिनटों के लिए गरम किया जाय तो जो थोरियम धातु उच्च ताप पर बनी थी वह पुनः व्यापन करके तन्तु की सतह पर आने लगती है और सतह पर गति होने के कारण पूरी सतह पर फैल जाती है; इसके फल-स्वरूप थोरियम परमाणुओं की एक-परमाणव फ़िल्म तन्तु पर बन जाती है। २०००° पर उद्वाष्पन का वेग इतना कम होता है कि शीघ्र ही पर्याप्त थोरियम पूरी एक-परमाणव फ़िल्म को बना लेता है। यदि ताप २२००° अथवा २४००° तक बढ़ा दिया जाय, तो सतह पर से उद्वाष्पन का वेग इतना बढ़ जाता है कि व्यापन के फलस्वरूप अंदर से आने वाले थोरियम के परमाणुओं की संख्या उद्वाष्पन के फलस्वरूप जाने वाले परमाणुओं की संख्या से काफ़ी कम हो जाती है। इस प्रकार सतह का वास्तविक सांद्रण काफी कम हो जाता है।

"अधिशोषित पटल की थोरियम मात्रा में यह परिवर्त्तन प्रामाणिक निम्न ताप पर तन्तु के इलेक्ट्रान उत्सर्जन के मापन के अध्ययन से ज्ञात किया जा सकता है। इस ताप

1. Lex Prix Nobel en 1932 से अनूदित।

को परीक्षात्मक ताप कहते हैं। यह इतना नीचा रखा जाता है, जिससे व्यापन अथवा उद्वाष्पन के फलस्वरूप सतह पर कोई विशेष परिवर्तन न हों। सुगम ताप १५००° है। ताप पर अधिशोषित थोरियम के सतह पर होने के कारण सतह का इलेक्ट्रान उत्सर्जन, शुद्ध टंगस्टन सतह की अपेक्षा १०⁵ गुना तक अधिक हो जाता है।

"**जल पर तेल की फिल्म**—जब एक शुद्ध संतृप्त द्रव-हाइड्रोकार्बन जल पर रखा जाता है, तो वह जल पर बूंद अथवा लैन्स के रूप में रहता है; इससे उसके चारों ओर के जल के तल-तनाव पर कोई प्रभाव नहीं होता। तथापि, यदि किसी अविलेय वसीय अथवा तैलीय पदार्थ को, जैसे पशु अथवा पौधों से प्राप्त साधारण तेल को, शुद्ध जल पर रखा जाय तो वह फ़ौरन ही सतह पर पतली फ़िल्म के रूप में दौड़ जाता है। यदि सतह पर की गति को अबरक का चूर्ण बुरक कर देखा जाय तो यह दिखाई देता है कि थोड़ा-सा तेल पटल के एक निश्चित क्षेत्र को बनाने में समर्थ होता है; यदि कभी-कभी क्षेत्र निश्चित मान से बढ़ जाता है, तो उस बढ़े क्षेत्र में जल के तल-तनाव पर कोई अंतर नहीं होता। कई अविलेय कार्बनिक पदार्थों की तुलना से ज्ञात हुआ है कि यह फैलने की प्रवृत्ति कार्बनिक अणु में उपस्थित कुछ सक्रिय समूहों अथवा मूलक पर निर्भर होती है; ये समूह वैसे होते हैं जो जल में कार्बनिक पदार्थों की विलेयता को बढ़ाते हैं। उदाहरणतया, पेन्टेन C_5H_{12} जल में प्रायः अविलेय है, पर एमाइल ऐलकोहल $C_5H_{11}OH$ सापेक्ष रूप से विलेय है। कार्बनिक अणु के OH समूह जल के अणुओं के OH समूह पर तीव्र आकर्षक प्रभाव डालते हैं और यह प्रभाव विलेयता की वृद्धि से स्पष्ट होता है। इसी प्रकार कार्बाक्सिल-समूह $COOH$ निम्न वसीय अम्लों को उसी के हाइड्रोकार्बनों की अपेक्षा जल में अधिक विलेय बनाता है।

"उच्च अणुभार वाले हाइड्रोकार्बन, जैसे $C_{18}H_{38}$ जल में बिलकुल अविलेय हैं। यदि $C_{18}H_{38}$ की श्रृंखला के अंत में CH_3 समूह के स्थान पर कार्बाक्सिल समूह आ जाता है तो अणु का एक भाग जल में घुलने का प्रयत्न करता है, पर उसके दूसरे भाग में हाइड्रोकार्बन की अविलेयता वर्त्तमान रहती है। जल की सतह पर फैलने-से इस प्रकार के अणुओं के कार्बाक्सिल समूह बिना एक दूसरे से पृथक् हुए जल के संपर्क में आते हैं।

"इस प्रकार से बनी तैलीय फ़िल्म में पास-पास सटे हुए अणुओं की जल की सतह पर एक फ़िल्म होनी चाहिए। यदि फैल जा सकने वाले सीमित क्षेत्र की तुलना में वसीय अम्ल आवश्यकता से अधिक होता है तो कार्बाक्सिल-समूहों के जल के संपर्क में आने का प्रयास इतना अधिक होता है कि सतह पर उनकी भीड़ लग जाती है और वे

एक-दूसरे से मिलकर प्रायः सीधे खड़े हो जाते हैं। इस दशा में एक अणु उतना स्थान घेरता है जितना कि हाइड्रोकार्बन शृंखला का क्रास सेक्शन (cross section) होता है अथवा अणु के केवल सर का भाग, जो जल के संपर्क में रहता है और क्रास सेक्शन से अधिक बड़ा होता है। फ़िल्म की मोटाई हाइड्रोकार्बन-शृंखला की लम्बाई के बराबर होती है।

"**सतहों की उत्प्रेरक क्रिया**--१५००° तक ऊष्मित टंगस्टन पर आक्सिजन की एक-परमाणव फ़िल्म सब प्रतिक्रियाओं के लिए उत्प्रेरक विष का सा काम करती है; इसकी अनुपस्थिति में टंगस्टन उत्प्रेरक की भाँति कार्य कर सकता था। इस प्रकार आक्सिजन की अति सूक्ष्मतम मात्राएँ भी १५००° K पर हाइड्रोजन के विघटन (dissociation) तथा अमोनिया, मेथेन अथवा सायेनोजन के विच्छेदन को रोक देती हैं। आक्सिजन के प्रभाव से सारी सतह ढक जाती है जिससे दूसरी गैसें टंगस्टन की सतह से संस्पर्श नहीं कर पातीं।

"इसी प्रकार प्लैटिनम सतहों पर हाइड्रोजन और कार्बन मानो-आक्साइड उत्प्रेरक विषों का-सा काम करते हैं। जिस वेग से प्लैटिनम कार्बन मानो-आक्साइड और आक्सिजन से संयोग करता है, वह आक्सिजन के दाब से सीधे रूप से समानुपाती किन्तु मानो-आक्साइड के दाब से प्रतिलोमानुपाती होता है। प्रतिक्रिया का वेग प्लैटिनम सतह के उस अंश पर निर्भर होता है जो कार्बन मानो-आक्साइड के अधिशोषित अणुओं से ढका नहीं होता। इन खाली स्थानों में आक्सिजन के जो अणु अधिशोषित हो जाते हैं, और इस प्रकार उनका अधिशोषण प्लैटिनम से हो जाता है वे अपने पास वाले कार्बन मानो-आक्साइड के अणुओं से प्रतिक्रिया करते हैं।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

जल, शीशे और धातुओं की सतहों पर विशेष बल प्रदर्शित होते हैं। ऐसा मालूम होता है कि एक पदार्थ अचानक अपनी सीमा पर अपनी सतह से ही समाप्त नहीं हो जाता, किन्तु उसे अपने वातावरण से संपर्क स्थापित रखना पड़ता है। यद्यपि सतह पर स्थापित ये बल कोमल होते हैं, तथापि वे बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। हमारे कायिकी प्रक्रमों का आधार इन सतहों की पारस्परिक क्रिया ही है। सतहों पर होने वाली प्रतिक्रियाओं का औद्योगिक रूप से भी बड़ा महत्त्व है। हम लोग जिन मोटर ईधनों का उपयोग करते हैं उनमें से अधिकतर ईंधनों का नियंत्रण बाहरी तौर से अक्रिय पर विशिष्ट सतह-प्रतिक्रिया करनेवाले पदार्थों से ही होता है।

लैंग्म्यूर ने यह शोध-कार्य विद्युत् लैम्प में प्रयुक्त धातु के तारों से आरम्भ किया था। इस कार्य के फलस्वरूप तापदीप्त लैम्प अधिक दिनों तक चलते हैं और अधिक विद्युत्-ऊर्जा को प्रकाश में परिवर्त्तित करते हैं।

जल-अविलेय पदार्थों के जल पर फैलने के लैंग्म्यूर द्वारा किये गये अन्वेषण के फलस्वरूप शीशे की सतह से परावर्त्तित प्रकाश की मात्रा को कम किया जा सका है। इस प्रकार चकाचौंध से बचाने के लिए उसके व्यावहारिक उपयोग हमारे सम्मुख आये हैं।

हाल में ही लैंग्म्यूर ने इस सतह-शोध को बादलों से जल-बूँदों के बनाने में भी लगाया है। जब बादल में एकत्रण बिन्दुओं––शुष्क वर्फ़ अथवा विक्षेपित रजत आयोडाइड––को डालकर "बीजीकरण" (seeding) किया जाता है तो कृत्रिम वर्षा के लिए प्रेरण हो जाता है। इस विधि की काफ़ी आलोचना हुई है। कृत्रिम वर्षा के क्षेत्र में इसका उपयोग चाहे जो कुछ भी हो, पर हम लैंगम्यूर के साथ यह आशा अवश्य कर सकते हैं कि कदाचित् यह विधि भीषण तूफानों से बचने में उपयुक्त हो सके।

१९३३

कोई पुरस्कार नहीं दिया गया

१९३४

हैरल्ड क्लेटन यूरे (Harold Clayton Urey)

(१८९३-   )

"भारी हाइड्रोजन के आविष्कार के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

हैरल्ड सी० यूरे का जन्म वाल्करटन, इन्ड०, में हुआ था। वाटरलू, इन्ड०, के हाई स्कूल से स्नातक होने के बाद आपने देहात के स्कूलों में तीन वर्ष तक पढ़ाया। तब आपने मोनटाना विश्वविद्यालय में प्रवेश किया और बैचलर आफ़ साइन्स की उपाधि १९१७ में प्राणिशास्त्र में प्राप्त की। नोबेल पुरस्कार कमेटी में भेजे गये अपने आत्म-कथानक में आपने प्रथम विश्व-युद्ध के प्रभावों का स्वयं वर्णन किया है—"जब यूनाइटेड स्टेट्स भी विश्वयुद्ध में सम्मिलित हुआ तो मैं युद्ध-सामग्री के बनाने में सहायता देने के लिए फ़िलाडेलफ़िया गया। मैं इस अनुभव को बड़ा सौभाग्यशाली समझता हूँ, क्योंकि इससे मुझे यह निश्चित करने में सहायता मिली कि औद्योगिक रसायन में मेरी अधिकतम रुचि न होगी; फलतः मैं शिक्षा संबंधी कार्य की ओर प्रवृत्त हुआ।" आप रसायन के शिक्षक के रूप में मोनटाना विश्वविद्यालय लौट आये और तब आप कैलीफ़ोर्निया विश्वविद्यालय चले गये। वहाँ गिलबर्ट एन० लीविस (Gilbrt N. Lewis) के प्रेरणात्मक प्रभाव से आपकी रुचि भौतिकी एवं गणित संबंधी रसायन की ओर हो गयी। १९२३-२४ में आपको इन विषयों में और अधिक प्रेरणा कोपेन-हागेन में स्थित सैद्धांतिक भौतिकी के इंस्टीट्यूट में नील्स ब्होर (Niels Bohr) के साथ होने पर मिली। अगले कुछ वर्षों में आप जान हापकिन्स (John Hopkins) के सहायक रहे। १९२९ में कोलम्बिया विश्वविद्यालय में आप सहायक प्रोफ़ेसर बन गये तथा १९३४ में प्रोफ़ेसर हो गये।

समस्थानिकों पर की गयी ऐस्टन की शोधों से क्वांटम-सिद्धांत एवं ऊष्मा गतिकी की सहायता से आपने यह गणना की कि २ परमाणुभार वाले हाइड्रोजन के समस्थानिक

को भौतिक विधियों से पृथक् हो जाना चाहिए। इस समस्थानिक का नाम आपने डायटीरियम रखा; इसका भार तत्त्व के साधारण भार की अपेक्षा दुगुना था। दूसरे सब तत्त्वों के समस्थानिकों के परमाणु-भार में अंतर एक छोटा भिन्न है। सिद्धांत के दृष्टिकोण से जो भविष्यवाणी की गयी थी, वह प्रयोगों द्वारा ठीक सिद्ध हुई। बाद में यूरे ने १५ परमाणु-भार वाले नाइट्रोजन समस्थानिक के पृथक्करण में भी इस विधि का विस्तार किया; साधारण नाइट्रोजन का परमाणु-भार १४ होता है।

दूसरे विश्वयुद्ध के समय किये गये परमाणु बम के उत्पादन-संबंधी कार्य में यूरे का प्रमुख हाथ था। भूगर्भशास्त्र एवं पुरातत्त्वशास्त्र में समस्थानिकों के नये उपयोग संबंधी कार्य से आप आधारभूत समस्याओं को सुलझा रहे हैं।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"जब O^{16} को परमाणुभार की १६ इकाइयों का प्रमाण मान लिया जाता है तो इसकी तुलना में H^1 के सापेक्ष परमाणु-भार का निर्धारण और आक्सिजनके प्राकृतिक समस्थानिकों के मिश्रण के रासायनिक परमाणु-भार के निर्धारण से ज्ञात होता है (जैसा बर्जे—Birge और मेंज़ेल–Menzel ने सबसे पहले बतलाया था) कि २ संहति वाले हाइड्रोजन के समस्थानिक की हलकी हाइड्रोजन में १:४५००के अनुपात में उपस्थिति संभावित है। भारी हाइड्रोजन के इससे अधिक होने की आशा नहीं की जा सकती थी, क्योंकि और किसी भारी समस्थानिक के होने के मतलब यह थे कि सब भारी समस्थानिकों को मिलकर ४५०० के एक भाग से अधिक नहीं होना चाहिए। जब उपर्युक्त प्रमाण से गणना की जाती है तो चौथे दशमलव पर २ के अंतर से ये अनुमानित परिणाम आते हैं। रासायनिक निर्धारणों में संभावित त्रुटि के युक्तियुक्त अनुमान से यह कुछ अधिक है। O^{18} की प्रचुरता के संबंध में हाल में जो अन्वेषण किये गये हैं उनसे अनुमानित परिणाम १:४५०० के स्थान पर १:३,७०० हो जाते हैं।

"इस दुर्लभ समस्थानिक के अस्तित्व के प्रदर्शन के लिए इसका किसी विधि से सांद्रण करना आवश्यक था, क्योंकि उस समय तक ज्ञात विधियों में से किसी भी विधि से इतनी कम मात्रा में उपस्थित समस्थानिक को पृथक् नहीं किया गया था। बाद में यह पता चला कि यह बात ठीक नहीं थी, क्योंकि समस्थानिक के परिचय के लिए बहुत ही संवेदी विधि—अर्थात् परमाणु-वर्णक्रम—का उपयोग किया गया था। इस विधि का इसमें प्रयोग हो सकता था, क्योंकि इसमें ब्होर के सिद्धांत के अनुसार सापेक्ष दृष्टि से

1. Lex Prix Nobel en 1934 से अनूदित।

परमाणव-समस्थानिक प्रभाव के अधिक होने की आशा थी। तथापि, २ परमाणुभार वाले हाइड्रोजन के समस्थानिक–डायटीरियम–का सांद्रण, परिचय को सुगम बनाने के लिए, आसवन से किया गया।

"इस सरल सिद्धांत के अनुसार हाइड्रोजन और हाइड्रोजन डायटीराइड तथा हाइड्रोजन से हाइड्रोजन ट्राइटीराइड के वाष्प दाब का अनुपात क्रमशः २.२३ एवं ३.३५ है। वाष्प दाबों के अनुपातों के लिए इन मानों को लेकर सरल गणना से यह दिखाया गया कि त्रि-बिन्दु (triple point) पर ठोस हाइड्रोजन के सरल आसवन से ही डायटीरियम का काफी अधिक सांद्रण होना चाहिए। वस्तुतः यह निश्चित मत देना कि द्रव अवस्था के लिए भी ये अंतर ठीक होंगे, असंभव था, किन्तु यह अनुमान युक्तियुक्त अवश्य था कि कम-से-कम अवस्था में भी इस प्रभाव को रहना चाहिए।

"यूनाइटेड स्टेट्स के ब्यूरो आफ़ स्टैन्डर्ड्स के डा० एफ० जी० ब्रिकवेडे (Dr. F.G. Brickwedde) ने बड़ी कृपा करके उपर्युक्त सिद्धांत में स्पष्ट की गयी परिस्थितियों में हाइड्रोजन के नमूनों का उद्वाष्पन किया। सबसे बढ़िया नमूना ४००० घ० से० द्रव हाइड्रोजन के त्रि-बिंदु पर उद्वाष्पन से प्राप्त हुआ था, जब अवशेष केवल १ घ० से० रह गया था। मेरे शोध-सहायक, डा० जी० एम० मर्फ़ी (Dr. G.M. Murphy) और मैंने १९३१ के अंत में इस नमूने के परमाणव-वर्णक्रम का अन्वेषण किया। और नमूनों का भी अध्ययन किया गया। इसके लिए २१ फुट के अवतल ग्रेटिंग (grating) का उपयोग किया गया था, जिसके एक इंच में १५,००० रेखाएँ थीं। हमने बामर श्रेणी की डायटीरियम की तीन रेखाएँ प्राप्त कीं। जब व्यापारिक विद्युतीय हाइड्रोजन का उपयोग होता था, तब भी ये रेखाएँ पायी जाती थीं। डा० ब्रिकवेडे द्वारा तैयार किये गये नमूनों में इन तरंग-दैर्घ्यों का प्रकाश ४ से ५ गुना तक बढ़ जाता था।

"यद्यपि प्राकृतिक हाइड्रोजन में डायटीरियम की रेखा को सरलता से पहचाना जा सकता है, तथापि आसवन से प्राप्त अधिक सांद्र नमूनों की सहायता के बिना इनके अस्तित्व के लिए निश्चित निर्णय देना बहुत कठिन हो जाता, क्योंकि परीक्षण की हुई अतिरिक्त रेखाओं की रूल्ड ग्रेटिंग के अनियमित गोस्टों ("ghosts") उपच्छाया से इसकी अनुमानित व्याख्या की जा सकती थी। इस प्रकार सांद्रण की जिस विधि को निकाला गया था और मौलिक शोध-कार्यों में जिसका उपयोग हुआ था, वह समस्थानिक के अस्तित्व को सिद्ध करने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई।

"रिटेनबर्ग (Rittenberg) और मैंने इस सिद्धांत का उपयोग यह दिखाने में भी किया है कि हाइड्रोजन और डायटीरियम संबंधी प्रतिक्रियाओं में संतुलन स्थिरांकों

के आसानी से पहचाने जा सकने वाले अंतरों का भी अस्तित्व होना चाहिए। बाद के प्रायोगिक कार्यों से यह गणना ठीक सिद्ध हुई, जब हाइड्रोजन और डायटीरियम से क्रमशः हाइड्रोजन आयोडाइड और डायटीरियम आयोडाइड बनायी गयी। इसके ठीक सिद्ध होने की पूर्ण आशा की जा सकती थी, किन्तु यह पहला अवसर दिखाई देता है, जब एक रासायनिक प्रतिक्रिया के संतुलन स्थिरांक की तभी गणना कर ली गयी थी, जब कि सिद्धांत को पुष्ट करने के लिए उनमें से एक तत्त्व काफ़ी मात्रा में न बन सका हो।

"पिछले दो वर्षों में डायटीरियम के उपयोग पर जो विस्तृत शोध-कार्य हुआ है, वह हाइड्रोजन और डायटीरियम को पृथक् करने के लिए वाशबुर्न (Washburn) की विद्युतीय विधि से संभव हो सका है। आजकल इन समस्थानिकों के पृथक्ककरण के लिए अन्य विधियों का भी उपयोग किया जा सकता है। जैसा फारकस (Farkas) ने दिखलाया है, उसके अनुसार हाइड्रोजन और जल की विनिमय प्रतिक्रिया (exchange reaction) में कुछ परिवर्तन करके परस्पर विरोधी धाराओं की रगड़ (scrubing) विधियों का उपयोग करके हाइड्रोजन समस्थानिकों का सफल पृथक्करण किया जा सकता है।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

दिसम्बर १९३१ में यूरे ने २ परमाणुभार वाले हाइड्रोजन के समस्थानिक के आविष्कार की घोषणा की। सैद्धांतिक भविष्यवाणी की इस पुष्टि के बाद फ़ौरन ही उसके व्यापारिक उत्पादन की बात सोची जाने लगी। इसके लिए त्रिबिंदु पर के (जिसमें हाइड्रोजन तीनों अवस्थाओं–ठोस, द्रव और गैस में रहती है) प्रभाजित आसवन का उपयोग न करके स्वर्गीय ई० डब्लू० वाशबुर्न की विधि—विद्युत्-विश्लेषण—का प्रयोग किया गया। वैद्युत विश्लेषिक विच्छेदन से जब हाइड्रोजन बनायी जाती है तो गैस में हलकी हाइड्रोजन अधिक होती है; अवशिष्ट जल में डायटीरियम का अधिक अनुपात होता है। नार्वे के रुजकन वाले जल विद्युतीय प्लांट (hydroelectric plant) से डायटीरियम आक्साइड अर्थात् "भारी जल" का व्यापारिक उत्पादन आरंभ हो गया। परमाणु-पुंज में न्यूट्रान की गति को धीमी करने के लिए भारी जल प्रयुक्त होता है; यह उपयोग इतना साहसी और सफल हुआ कि दूसरे विश्व-युद्ध में जर्मन हाथों से भारी हाइड्रोजन का भण्डार छीनने के लिए इस प्लांट पर आक्रमण किया गया।

अब दूसरे उच्च समस्थानिक ट्रिशियम (tritium) पर सबका ध्यान केंद्रित है, क्योंकि परमाणु-खंडन के लिए इससे कदाचित् "हाइड्रोजन बम" बन सके।

१९३५

आयरीन जोलियो क्यूरी (Irene Joliot Curie)

(१८९७–   )

फ़्रेडरिक जोलियो (Frederic Joliot)

(१९००--   )

"नये रेडियमधर्मी तत्त्वों के संश्लेषण के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

पियरे और मेरी क्यूरी की पुत्री ने प्रथम विश्वयुद्ध के समय अस्पताल के रेडियम-शास्त्रीय (radiologic X क्ष- रश्मिक) कार्य के लिए भौतिकी एवं गणित के अपने अध्ययन में विघ्न डाला। आपने अपनी माता की सहायता की। आप पेरिस के रेडियम इंस्टीट्यूट की क्यूरी प्रयोगशाला से १९२५ में स्नातक हुई। डाक्टर की उपाधि के लिए पलोनियम की अल्फ़ा-किरणों पर आपने थीसिस लिखी थी।

उसी समय पेरिस के भौतिकी एवं रसायन के स्कूल से इंजीनियर का डिप्लोमा प्राप्त कर फ्रेडरिक जोलियो ने रेडियम इंस्टीट्यूट में नौकरी की।

आप दोनों ने १९२६ में विवाह कर लिया। साथ किये गये कार्य में आयरीन जोलियो क्यूरी भौतिक दृष्टिकोण पर अधिक बल देती थीं; फ्रेडरिक जोलियो रेडियम-धर्मी पदार्थों के रासायनिक परिचय में अधिक रुचि रखते थे। आपने परमाणु-खंडन से प्राप्त कृत्रिम रेडियमधर्मी पदार्थों का अन्वेषण आरम्भ किया; आप परमाणु-बल के शांति समय के उपयोगों की ओर अधिक ध्यान देने लगे। फ्रेडरिक जोलियो ने रेडियम-शास्त्रीय शोध को जीवन-रासायनिक शोध से मिलाया और रेडियमसक्रिय रूप से लेबेल लगे हुए हार्मोनों और थायर्वायड पदार्थों को बनाया।

आर० ग्रीग्वायर (R. Gregoire) के साथ दोनों जोलियों ने मिलकर नाभि-कीय भौतिकी पर एक पुस्तक १९४८ में प्रकाशित की।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

आयरीन जोलियो क्यूरी

"विद्युत् ऋणीय इलेक्ट्रान, जिनसे β–विकिरण होता है, और धनविद्युत् चार्जयुक्त अल्फ़ा-विकिरण के हीलियम कण के साथ-साथ रदरफ़ोर्ड के अनुमान में एक धन हाइ-ड्रोजन कण भी था, जिसको प्रोटान कहा गया था। जेम्स चैडविक (James Chad-wick) महोदय ने हाइड्रोजन के परमाणुभार वाले एक उदासीन कण—न्यूट्रान—का भी आविष्कार किया था। प्रोटान अपने में से एक धन विद्युत् चार्ज को खो सकता है और एक धन इलेक्ट्रान को देकर एक न्यूट्रान में परिवर्तित हो सकता है। (देखिए, भौतिकी में नोबेल पुरस्कार विजेता, वर्ष १९३५)।

"हल्के तत्वों पर अल्फ़ा-कणों के उपविकिरण (irradiation) से न्यूट्रान के उत्सर्जन के साथ होने वाले तत्त्वांतरण के अध्ययन में हमें फ्लोर, सोडियम एवं एल्यू-मनियम द्वारा उत्सर्जित न्यूट्रान के तात्पर्य्य समझने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अल्फ़ा कण को पकड़ कर एल्यूमिनियम, सिलिकन के स्थायी परमाणु एवं एक प्रोटान में तत्वांतरित हो जाता है, तथापि यदि एक न्यूट्रान उत्सर्जित हो तो इस प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जो परमाणु बनेगा, वह ज्ञात नहीं है।

"हम लोगों ने उस समय इसका परीक्षण किया कि जब एल्यूमिनियम अथवा बोरान अल्फ़ा-कणों से उपविकिरित होते हैं, तो केवल प्रोटान एवं न्यूट्रान ही नहीं, अपितु धन इलेक्ट्रान भी उत्सर्जित होते हैं। फलतः हम लोगों ने यह मान लिया कि प्रोटान के स्थान पर न्यूट्रान और धन इलेक्ट्रान साथ-साथ उत्सर्जित होते हैं, इन दोनों दशाओं में प्राप्त परमाणु एक ही प्रकार का होगा।

"१९३४ के आरम्भ में हम लोगों ने इस तत्वांतरण एवं उस समय तक किये गये अन्य तत्त्वांतरणों में एक आधारभूत अंतर पर ध्यान दिया; कृत्रिम नाभिकीय रसायन की सारी प्रतिक्रियाएँ तुरंत और कभी-कभी विस्फोटकीय भी होती हैं। इसके विपरीत, अल्फ़ा-कण के स्रोत से प्रतिक्रिया करते समय एल्यूमिनियम द्वारा उत्पादित धन-इलेक्ट्रान-स्रोत के हटाने के बाद भी कुछ देर तक निकलते रहते हैं। उत्सर्जित इलेक्ट्रानों की संख्या तीन मिनट में आधी हो जाती है।

"फलतः यह वास्तविक रेडियमधर्मिता है, जिसकी सूचना धन इलेक्ट्रान के उत्सर्जन से मिलती है।

1. Les Prix Nobel en 1935 से अनूदित।

"हम लोगों ने यह दिखा दिया है कि अल्फ़ा-कण रूपी बम फेंके जाने पर बोरॉन अथवा मैग्नीशियम में भी रेडियम-धर्मिता आ जाती है और इसके साथ धन अथवा ऋण इलेक्ट्रान उत्सर्जित होने लगते हैं। ये कृत्रिम रेडियो तत्त्व बिलकुल प्राकृतिक रेडियो तत्त्वों की भाँति कार्य करते हैं।"

फ्रेडरिक जोलियो[1]

अल्फ़ा-किरणों द्वारा उपविकिरित एल्यूमिनियम फ़िल्म पर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के विलयन की प्रतिक्रिया से उसको घोला जाता है। इस रासायनिक प्रतिक्रिया से हाइड्रोजन निकलता है और जब जल पर पतली दीवार वाली नली औंधा दी जाती है तो यह रेडियमधर्मी तत्त्व उसमें भरने लगता है। इस पृथक्करण से यह स्पष्ट है कि उपविकिरण के समय एल्यूमिनियम से भिन्न कोई तत्त्व बना था। यह तत्त्वांतरण को निश्चित रूप से सिद्ध करता था; इन्हीं परिस्थितियों में एल्यूमिनियम से सूक्ष्म मात्रा में फ़ास्फ़ोरस पृथक् होना चाहिए।

सक्रिय एल्यूमिनियम को अम्लीय आक्सीकारक विलयन में भी घोला जा सकता है। इसमें सोडियम फ़ास्फ़ेट और ज़र्कोनियम लवण की सूक्ष्म मात्रा को मिला दिया जाता है; ज़र्कोनियम के फ़ास्फ़ेट के अवक्षेपण के समय रेडियमधर्मी तत्त्व भी उसके साथ आ जाता है। एल्यूमिनियम के साथ ये प्रयोग बड़े कठिन हैं, क्योंकि इनको केवल ६ मिनट में करना होता है, नये बने रेडियमधर्मी तत्त्व का अर्द्ध जीवन ५ मिनट से भी कम है। इस प्रकार की रासायनिक परख से ज्ञात हुआ कि अल्फ़ा-किरणों के प्रभाव द्वारा बोरॉन से नाइट्रोजन का समस्थानिक बनता है।

हम लोगों ने इन रेडियमधर्मी तत्त्वों (ज्ञात तत्त्वों के समस्थानिक, जो प्रकृति में नहीं पाये जाते) के नाम—रेडियो-नाइट्रोजन, रेडियो फ़ास्फ़ोरस, रेडियो-एल्यूमिनियम (अल्फ़ा उपविकिरण की दशा में मैग्नीशियम) रखने और उनको इन प्रतीकों—RN^{13}, RP^{30}, RAl^{28} से व्यक्त करने का प्रस्ताव किया है।

"इन आविष्कारों के पश्चात् शीघ्र-ही हम लोगों ने यह बात सामने रखी कि अल्फ़ा-किरणों के स्थान पर दूसरे कणों—उदाहरणतया प्रोटान, डायट्रान एवं न्यूट्रान—की टक्कर से होने वाले तत्त्वांतरण में ऐसी ही घटनाएँ हो सकती हैं।"

1. Les Prix Nobel en 1935 से अनूदित।

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

साधारण रूप से—ऊष्मा, दाब, रासायनिक प्रतिक्रिया द्वारा—हम लोग पदार्थों के गुणधर्मों में जो अंतर करने की चेष्टा करते हैं उससे रेडियम-धर्मिता में परिवर्त्तन नहीं होता; अतः वह तत्त्वों की भाँति अपरिवर्त्तनीय जान पड़ती है। अब एक ऐसी विधि ज्ञात हो गयी जिससे साधारण तत्त्व में रेडियम-धर्मिता लायी जा सकती थी। तत्त्व रेडियमधर्मी बन जाता है और तत्त्वों के वर्गीकरण में अपने पड़ोसी का समस्थानिक बन जाता है। इस आविष्कार के पश्चात् लगभग ४०० समस्थानिकों का वर्णन किया गया है। जोलियो लोगों ने कृत्रिम रेडियमधर्मिता के लिए जिस विधि को बताया, वह केवल अकेली ही नहीं रही; साइक्लोट्रान एवं नाभिकीय प्रतिकारक पुंज (Nuclear reactor pile) से भी अनेक प्रकार के रेडियमधर्मी तत्त्व बने और उनकी मात्रा में वृद्धि हुई। मूलतः नये तत्त्व केवल विकिरण के रूप में ज्ञात थे। इसके पश्चात् शुद्ध रेडियम-धर्मी तत्त्वों की थोड़ी मात्राओं का उत्पादन हुआ। चूँकि वे अपनी सारी रासायनिक प्रतिक्रियाओं में साधारण रूप से समस्थानिक की भाँति कार्य करते हैं, अतः उनका सूचक (indicators) के रूप में उपयोग होता है; विशिष्ट विकिरण की सहायता से सूक्ष्मतम मात्राओं की उपस्थिति का ज्ञान हो जाता है। १४ परमाणु-भार वाले रेडियम सक्रिय कार्बन को, जिसका विकिरण काफ़ी दिनों तक रहता है, आक्सीकृत करके कार्बन-डाइ-आक्साइड प्राप्त की जा सकती है; इसकी सहायता से यह दिखाया जा सकता है कि हरी पत्तियों में स्वीकरण के समय किस प्रकार कार्बन यौगिक बनते हैं। रेडियो सक्रिय आयोडीन थायरायड ग्रंथियों में अवशोषित हो जाती है। इससे तुलनात्मक शारीर (anatomy) के अध्ययन में सहायता मिलती है। जब रेडियो-सक्रिय फ़ास्फ़ोरस पशुओं को सोडियम फ़ास्फ़ेट के रूप में खिलाया जाता है तो उससे इस पदार्थ के रासायनिक विपचन एवं शरीर में इसके परिवर्त्तन को जानने में सहायता मिलती है। रेडियो-सक्रिय चिह्न की सहायता से पशु को भी पहिचानने में सहायता मिलती है। संश्लिष्ट औषधों में रेडियो-सक्रिय तत्त्वों का उपयोग किया गया है और इस प्रकार जीव में उनके प्रभाव और उनके क्रिया से संबंधित ज्ञान प्राप्त किया गया है।

ये कृत्रिम रेडियमधर्मी तत्त्व पहले ज्ञात तत्त्वों के समस्थानिक हैं। बिलकुल हाल में ही, इस प्रकार के कृत्रिम उत्पादन से अज्ञात एवं उच्च परमाणुभार वाले तत्त्वों का पूरा संश्लेषण किया गया है।

१९३६

पीटर जे० डब्लू० डिबाई (Peter J.W. Debye)

(१८८४–   )

"डाइपोल घूर्णों (Dipole moments) पर किये गये अपर अन्वेषणों द्वारा आणव रचना एवं एक्स-किरणों तथा गैसों में इलेक्ट्रान के डिफ्रैक्शन के अध्ययन में आपकी सेवाओं के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

पीटर डिबाई का जन्म मास्ट्रिक्थ, हालैंड में हुआ था। उसी शहर में आपने हाई स्कूल तक शिक्षा पायी; इसके पश्चात् आप अपने देश की सीमा—आखेन—पर चले गये और वहाँ विद्युतीय इंजीनियर बन गये। वहाँ से आपने सैद्धांतिक भौतिकी की शोध के केन्द्रों में यात्रा की; विशेषतया, आप म्यूनिख में रहे, जहाँ से १९१० में आपको डाक्टर की उपाधि मिली। ज़ूरिख में सैद्धांतिक भौतिकी के एक वर्ष तक (१९११–१२) प्रोफ़ेसर रहने के बाद आप दो वर्षों के लिए हालैंड (यूट्रेक्थ) लौट आये। इसके पश्चात् आप गाटिन्जेन में ५ वर्ष तक रहे; यहाँ गणित और सैद्धांतिक भौतिकी के अच्छे ख्यातिप्राप्त विशेषज्ञ थे। इसके पश्चात् आप ज़ूरिख (१९१९–२७) लाइपज़िग और बर्लिन में रहे; बर्लिन में १९३५ से १९४० तक आप सैद्धांतिक भौतिकी के क़ैसर विलहेलम इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर रहे। १९४० से आप कार्नेल विश्वविद्यालय में हैं।

डिबाई महोदय ने भौतिकी और रसायन में जो अनेक महत्त्वपूर्ण सेवाएँ की हैं, उनमें आपने परमाणुओं एवं अणुओं पर कम्पनों की प्रतिक्रिया समझने की चेष्टा की है। ये कम्पन ऊष्मा की बड़ी तरंग अथवा प्रकाश की छोटी तरंग के रूप में हो सकते हैं। आपके आरंभिक कार्य का उदाहरण आप का विशिष्ट ऊष्मा संबंधी सिद्धांत है। ताप-परिवर्त्तनों में ताप के एक डिगरी के परिवर्त्तन के लिए किसी पदार्थ के इकाई-भार को जितनी कलरियों की आवश्यकता होती है, उसको उसकी विशिष्ट ऊष्मा कहते हैं। चूँकि ऊष्मा-तरंगें विभिन्न परमाणुओं की आपस की दूरी से बड़ी होती हैं, अतः आपने

यह मान लिया कि पदार्थों का यह गुणधर्म आणव न होकर निरन्तरिक (continuous) होता है। इससे आप विशिष्ट ऊष्मा का संबंध ताप से स्थापित करने में सफल हुए; यह बहुत निम्न तापों, जहाँ ऊष्मा-तरंगों की लंबाई सबसे अधिक होती है, के लिए बिलकुल सरल है।

उसी समय १९१२ में डिबाई ने विद्युत्-चुंबकीय तरंगों से भी पदार्थों का अन्वेषण किया। इन तरंगों से आणव रचना स्पष्ट होती है; विशेष रूप से इनसे यह भी पता चलता है कि धन एवं ऋण के विद्युत् चार्जों का किस हद तक संपात (coincidence) होता है। जहाँ इन चार्जों के परिणामस्वरूप गुरुत्व-केन्द्र एक दूसरे से दूर होते हैं तो अणु ध्रुवीय होता है; चुंबकीय क्षेत्र में अणु को लाने पर उनके एक रेखा में होने से यह स्पष्ट हो जाता है। ऐसे अणुओं में परमाणु की एक दूसरे के प्रति घूर्णक गतियाँ सीमित हो जाती हैं।

विलयन में अणुओं की अवस्था के लिए एर्‌हीनियस ने (दे० १९०३ का विवरण) एक सिद्धांत बनाया था; यह केवल उच्च तनूकरण के लिए ठीक था। डिबाई ने आयनीकरण के विचार को ठोस--पदार्थ के केलासित रूप—तक विस्तृत किया। सांद्र विलयनों के लिए विलेयक के प्रभाव का मापन हो सकता था और उसको ठीक से बताया जा सकता था। आयन एक दूसरे के जितने अधिकतम निकट आ सकते हैं, उसको मध्यमान आयनीय व्यास कहते हैं। केलास विज्ञान (crystallography) में मापे गये व्यास से यह काफ़ी अधिक होता है। विलेयक के अणुओं के साथ आयनीय व्यास काफी बड़ा होता मालूम पड़ता है। (डिबाई-ह्वीकेल सिद्धांत, १९२३)।

पदार्थ के उपविकिरण से जिस प्रकार का ज्ञान प्राप्त होता है, वह तरंग-दैर्घ्य की तुलना में रचनात्मक आकार पर निर्भर होता है। गामा अथवा रंटजन किरणों से केलास की परमाणव रचना स्पष्ट होती है। गाटिन्जेन में डिबाई और पी० शेरर (P. Scherrer) ने इसका आविष्कार किया कि गामा-किरणों (जिनसे अणु की आकाशीय (Spatial) व्यवस्था ज्ञात होती है) के व्यतिकरण (interference) को प्राप्त करने के लिए अच्छे बने केलासों की आवश्यकता नहीं होती; बारीक चूर्ण से भी काम चल जाता है। बिलकुल हाल में ही डिबाई ने प्रकाश-तरंगों से बड़े अणु वाले विलयनों के अन्वेषण की विधि निकाली है। अणुओं, विशेष रूप से उच्च बहुअश (polymer) अथवा साबुन के अणुओं, द्वारा प्रकाश का प्रकीर्णन (scattering) होता है। जिस अंश तक प्रकीर्णन होता है उसका मापन कर उससे घुलित द्रव्य के आकार एवं रूप का संबंध स्थापित किया जाता है। गणित सूत्रों की (जिनमें आइन्स्टाइन-

के पहले के –१९१०– सिद्धांतों का उपयोग होता है) सहायता से रसाकर्षक दाब एवं अणु-भार भी इन प्रकाश-विधियों से ज्ञात कर लिये जाते हैं।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"विरल गैसों के परमाणु अध्रुवीय होते हैं। यह उनके इलेक्ट्रान बादल की केन्द्रीय सम्मित रचना के कारण होना भी चाहिए। द्विपरमाणुक अणुओं को भी, जिनमें एक ही परमाणु (N_2, O_2) होते हैं, इसी प्रकार अध्रुवीय सिद्ध किया गया है। तथापि जैसे ही ये दो परमाणु विभिन्न हो जाते हैं, फ़ौरन आणव ध्रुवता दिखाई देने लगती है। यदि ये दोनों तत्त्व आवर्त वर्गीकरण में पास-पास होते हैं (CO) तो यह ध्रुवता कम होती है और केवल HCl जैसे अणुओं में अधिक होती है। H^- आयन और Cl^- आयन से बनी रचना का जो डाइपोल घूर्ण होना चाहिए, वह HCl के डाइपोल घूर्ण के परिमाण के निकट नहीं होता; वह उस मान का केवल १।६ होता है, क्योंकि μ* का मान १.०४ $\times$ १०$^{-१८}$ प्राप्त किया गया है। यदि HCl अणु को ऐसा समझा जाय जिसमें दो आयन पास लाये गये हैं, तो उसके अनुसार हाइड्रोजन का नाभिक क्लोरीन-आयन के गोले में बेधता (penetrates) है; इससे पहले वाले चुंबकीय घूर्ण के ५।६ भाग की क्षतिपूर्ति हो जाती है। इसकी वास्तविक क्वांटम-सैद्धांतिक गणना कठिन जान पड़ती है। तब भी किर्कवुड (Kirkwood) ने HF, HCl, HBr और HI अणुओं की अब तक जो गणना की है, उससे कुछ परिणाम निकला है।

"जिन अणुओं में तीन परमाणु होते हैं, उनका दो समूहों में विभाजन किया जा सकता है—CO_2 और CS_2 अध्रुवीय हैं, किन्तु H_2O, H_2S, SO_2 का एक स्थायी घूर्ण होता है। इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है—पहली दशा में परमाणुओं की व्यवस्था एक रेखा में है किन्तु दूसरी दशा में परमाणु त्रिकोण के तीन कोनों पर हैं। अवस्थितित्व (inettia) का घूर्ण जो सपट्ट वर्णक्रम से स्पष्ट होता है, इन रचनाओं को स्वतंत्र रूप से सिद्ध करता है। इसी प्रकार NH_3, PH_3, AsH_3 के अणुओं की परीक्षित ध्रुवता से एक त्रिपार्श्व वाले पिरामिड की रचना करनी पड़ी; इसमें N, P, अथवा As बीच के एक बिन्दु पर होता है और हाइड्रोजन के तीन परमाणु उसके आधार के तीन कोनों पर होते हैं।

1. Les Prix Nobel en 1936 से अनूदित।

* विद्युतीय चार्ज, संहति और लम्बाई के संबंध को स्पष्ट करने वाला यह प्रतीक "चुम्बकीय घूर्ण" है।

"रसायनज्ञों का यह दृढ़ विश्वास था कि अणु में परमाणुओं की आकाशीय व्यवस्था से जो रचनात्मक सूत्र बनता है, वह किसी प्राकृतिक रचना को व्यक्त करता है; यह पहले की गणना से पूर्ण रूप से निश्चित हो गया है। कभी-कभी इसमें केवल एक कमी रह जाती है और वह है ठीक नापों की कमी। अतः हम लोग अणु में दूरी ठीक तरीके से नापने की विधि खोजने का प्रयत्न करेंगे। केलास-व्यतिकरण का जब से लावे (Laue) महोदय ने आविष्कार किया है तब से हमको मालूम है कि एक्स-किरणों का तरंग-दैर्घ्य इस कार्य के लिए काफ़ी छोटा पड़ जाता है। तथापि यदि हम स्वतंत्र अणुओं का परीक्षण करना चाहें तो एक और कठिनाई उन कणों से उठ पड़ती है, जो केलास की भाँति, निश्चित रूप से एक जगह पर जमाये नहीं जा सकते। सौभाग्यवश, हम लोग यह दिखा सके हैं कि एक्स-किरणों के उपविकिरण से प्रत्येक परमाणु रचना के छितरित विकिरण में काफ़ी व्यतिकरण का उत्पादन होता है; यह तब भी होता है, जब उसकी आकाश-दशा (orientation) में स्थायी एवं अनियंत्रित रूप से परिवर्तन हो जाता है। केलासीय चूर्ण और द्रवों के व्यतिकरण के समय मुझ पर और शेरर पर इस विचारधारा का काफ़ी प्रभाव रहा। १९२८ में किये गये ये प्रयोग प्रयास के लिए प्रथम सीढ़ी की भाँति थे, ये बेवीलोगुआ (Bewilogua) और एरहार्डट (Ehrhardt) के साथ किये गये थे और इनमें CCl_4–वाष्प का छितरन द्वारा व्यतिकरण किया गया था।

"बेंज़ीन अणु के लिए और बहुत खूबसूरती से हेक्साक्लोरो बेंज़ीन के लिए यह सिद्ध किया जा सकता है कि ६–कार्बन वाला घेरा एकतल में ही होता है और यह हीरे के घेरे से न मिल कर लिखज के घेरे से मिलता है। यह C—C की दूरी से ही स्पष्ट है; इसका मान ऐलीफ़ैटिक यौगिकों के लिए १.५४° A है, किन्तु गंधित (ऐरोमेटिक) पदार्थों के लिए केवल १.४१° A है। द्विगुण अथवा त्रिगुण बंधकों की दशा में यह और कम हो जाता है।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

अणुओं में विद्युतीय ध्रुवता के विचार और उसके परिमाण के मापन से रसायनज्ञो ने अणुओं के जो चित्र खींचे थे, उनमें यथार्थता आ गयी। अब अणु में परमाणुओं की वास्तविक दूरी ज्ञात की जा सकती है। जहाँ परमाणुओं की सापेक्ष स्थिति में संदेह होता है, जैसे जटिल समावयवताओं में, तो इस विधि में निश्चयात्मक निष्कर्ष संभव होता है। जब भवन-निर्माण के पदार्थों में कुछ विद्युतीय गुण पाये गये तो इस

ध्रुवता का व्यावहारिक महत्व भी स्पष्ट हो गया, विशेष रूप से जब उसको पृथक्कारियों में लगाया गया। संश्लिष्ट रेज़ीनों और उनके प्लास्टिककारों में ध्रुवीय घूर्णों के ज्ञान से रेडार अथवा सोनार (Sonar) यंत्रों में उपयुक्त पदार्थों का चयन उस समय के सुलभ पदार्थों से किया गया।

डिबाई ने इस क्षेत्र में जो मार्ग-प्रदर्शक का कार्य किया है, उसको अमर बनाने के लिए ध्रुवीय घूर्ण की इकाई, "एक डिबाई" (जो $१०^{-१८}$ के समीप होती है) रखी गयी है।

१९३७

वाल्टर नार्मन हावर्थ (Walter Norman Haworth)

(१८८३-१९४९)

"कार्बोहाइड्रेट एवं विटामिन सी की रचना पर आपकी शोध के लिए ।"

(१९३७ का पुरस्कार पाल कैरर के साथ दिया गया था; आगे देखिए)

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

वाल्टर हावर्थ का जन्म शार्ली, लंकाशायर, इंग्लैण्ड में हुआ था। आपने मैन्चेस्टर एवं गाटिन्जेन विश्वविद्यालयों में अध्ययन किया, जहाँ आटो वालाख़ (Otto Wallach) और डब्लू० एच० पर्किन (W. H. Perkin) आपके अध्यापक थे। आप दोनों गंध-तेलों के प्रमुख शोध-कार्य-कर्त्ता थे; अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि जब आपने गाटिन्जेन से (१९१० में) पी० एच० डी० और मैन्चेस्टर से (१९११) डी० एस–सी० प्राप्त की तो आपने उसके बाद १९१२ से लेकर स्काटलैंड के सेंट ऐन्ड्रज़ विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर रह कर पाइन की जड़ों एवं फ़र नीडिल के तेलों पर शोध-कार्य आरंभ किया। इसके कुछ वर्ष बाद आपने शर्करा रसायन पर कार्य आरम्भ किया; १९२० में आर्म्स-ट्रांग कालेज, न्यू केसिल और १९२५ से लेकर बर्मिंघम में आपने कार्य जारी रखा।

शोध के ये दोनों क्षेत्र, कम-से-कम आंशिक रूप में, एक ही आरम्भिक पदार्थ-लकड़ी-के होने के कारण, कुछ मिलते थे। कार्बनिक विलेयकों से गंध-तेलों का सार बनाया जाता है; जलीय-क्षारीय विलयन से एक जटिल शर्करा प्राप्त होती है। इसको क्साइलान (Xylan) का जो लकड़ी के लिए ग्रीक शब्द है, नाम दिया गया। उस समय तक शर्करा-जैसा केवल यही पदार्थ पौधों से प्राप्त किया जा सकता था। जब इसको कुछ अम्लीय जल से उबाला जाता था, तो क्साइलान टूट (जल-विश्लेषित हो) जाता था; शर्करा के एक अणु में ५ कार्बन परमाणु होते थे और इसके साथ थोड़ी मात्रा में इसका समावयव आरैबिनोज़ होता था। हावर्थ और आपके सहकारियों ने शर्करा के ऐल्डी-हाइड समूह की मेथेनाल से प्रतिक्रिया करके उसमें मेथिल समूह जोड़ने अथवा हाइड्रोजन

को मेथिल समूहों से हटाने की फिशर महोदय की विधि का विस्तार किया। शर्कराओं की रचना को स्पष्ट करने के लिए ये मेथिल समूह-युक्त-यौगिक बड़े उपयोगी सिद्ध हुए। इसके फलस्वरूप यह दिखाया जा सका कि शर्करा के कार्बन परमाणु एक आक्सिजन परमाणु से मिलकर घेरा बनाते हैं। उनमें ५ कार्बन परमाणु और एक आक्सिजन परमाणु होता है—इस दशा में वे पिरानोज़ (pyranose) कहलाते हैं; अथवा, उनमें चार कार्बन परमाणु और एक आक्सिजन परमाणु होते हैं—इस दशा में वे फ़्यूरानोज़। (furanose) कहलाते हैं, क्योंकि फ़रफ़्यूराल की ऐसी ही रचना होती है। इन रचनाओं को जब सामूहिक रूप से हावर्थ ने प्रस्ताव रूप में सामने रखा, तो शीघ्र ही वे स्वीकृत हो गये।

क्साइलान के आधारभूत अणु में ५ कार्बन परमाणु होते हैं; स्टार्च और सेल्युलोज़ में ६ होते हैं। पौधों के इन कार्बोहाइड्रेटों का एक संबंधी ग्लाइकोजन भी है; यह जिगर में पाया जाने वाला बहुअंशी (polymer) कार्बोहाइड्रेट है। जैसा स्टार्च और सेल्युलोज़ में होता है, उसी प्रकार ग्लाइकोजन बनाने की इकाई द्राक्षशर्करा है। इन कार्बोहाइड्रेटों की रचना में प्राप्त अनुभव से हावर्थ और आपके साथियों ने विटामिन सी–ऐसकार्बिक अम्ल–की समस्या पर ध्यान दिया। एफ़ मिशील (F. Micheel) ने यह दिखा दिया था कि आक्सीकरण की विशेष प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यह अम्ल बनाता था और इस प्रकार कार्बोहाइड्रेटों से संबंधित था। यह एक शर्करा–सारविटोज़–से जो फलशर्करा की भाँति होती है, बनाया जा सकता है। जब इसके आक्सीकरण से अम्ल बनाये जाते हैं, तो अणु के भीतर से ही जल के अणु टूट कर निकलने लगते हैं; यह टूटना सबसे पहले लैक्टिक अम्ल में देखा गया और इसे लैक्टोन बनना कहते हैं। १९३४ में हावर्थ और उसके सहकारियों ने ऐसकार्बिक अम्ल के संश्लेषण की एक विधि बतायी। इससे उसकी रचना का अंतिम सबूत प्राप्त हुआ; इससे यह भी ज्ञात हुआ कि किन विविध दिशाओं से इस महत्त्वपूर्ण विटामिन का टेक्निकल विधियों से संश्लेषण हो सकता है।

दूसरे विश्वयुद्ध के समय, सर नार्मन ने परमाणु ऊर्जा के उपयोग संबंधी रासायनिक समस्याओं पर सक्रिय कार्य किया।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"**कार्बोहाइड्रेटों और विटामिन सी की रचना**—इस समय एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि स्टार्च, सेल्युलोज़ एवं ग्लाइकोजन में जो इकाइयाँ बार-बार जुड़ती हैं, तो उनसे

1. Lex Prix Nobel en 1937 से अनूदित।

कितनी लम्बी शृंखला बनती है। अब यह कहा जा सकता है कि ग्लाइकोजन और स्टार्च की आंतरिक रचना एक ही होती है। इसके विपरीत क्साइलान अथवा लकड़ी के गोंद की योजना सेल्युलोज़ की भाँति होती है; अर्थात् अंतर केवल यह होता है कि मुख्यतया द्राक्षशर्करा के स्थान पर क्साइलोज़ इकाइयाँ होती हैं। बुद्धिमत्ता तो यह है कि इस जटिल समस्या को हल करने के लिए सब सुलभ पाली-सैकराइडों का एक समूह रूप में साथ-साथ अध्ययन किया जाय। एक पालीसैकराइड के अध्ययन से जो बात स्पष्ट न हो सके, वह कदाचित् दूसरे के अध्ययन से स्पष्ट हो जाय और यह भी संभावित है कि एक ऐसा निष्कर्ष निकले जो समान रूप से सबमें लग सके। यह अनुमान युक्तियुक्त है कि प्रकृति में इन पालीसैकराइडों के बनने की एक ही योजना है। इस कारण मैंने शृंखला की लंबाई ज्ञात करने के लिए जो विधि निकाली है, उसमें आरम्भिक रूप से मेथिल-युक्त पालीसैकराइडों के अंतिम समूह की परीक्षा होती है। अगर इन शृंखलाओं की रचना में बराबर फंदे (loops) नहीं होते तो उनके अंत में एक समूह ऐसा अवश्य होना चाहिए, जिसमें शृंखला के मध्य समूहों से विभिन्न एक अनवकारक (non-reducing) हाइड्राक्सिल समूह और होना चाहिए; अथवा, बाकी बचे अंतिम समूह को एक अवकारक इकाई से समाप्त होना चाहिए। इस दृष्टि-कोण से हमारा क्साइलान का अध्ययन काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। क्साइलान में लगभग १७ अथवा १८ β-क्साइलोपिरोनोज़ की इकाइयाँ एक शृंखला में होती हैं और इसके अंत में अरैबो-फ़्यूरोनोज़ की एक इकाई होती है। बाद वाली इकाई को जब विश्लेषण से सरलता से हटाया जा सकता है, तब केवल क्साइलोज़ इकाइयों की शृंखला रह जाती है। १९३४ में मैंने यह बताया कि क्साइलान का यह चित्र कदाचित् दूसरे पाली सैकराइडों के नमूने की भाँति हैं, क्योंकि सीमित लम्बाई वाली शृंखलाएँ मिलकर एक बड़ी शृंखला बनाती हैं; इसके साथ मैंने पास-पड़ोस वाली शृंखलाओं के बंधकों पर पड़े प्रभाव को भी बताया था। यह कहा गया कि ये मुख्य संयोजकता वाले बंधकों से अथवा किसी दूसरे बंधक से जो इस निर्देशन (coordination) के लिए उत्तर-दायी है, बनी होती हैं। कड़ी अथवा बंधक किसी प्रकार का भी हो, मैं इसको बहु-अंशी बंधक कहना पसंद करता हूँ; इस प्रकार यह मुख्य संयोजकता से भिन्न है और कदाचित् अन्य बहुअंशी पदार्थों में भी इसका उपयोग हो।

"उदाहरणतया, स्टार्च में २६ अथवा ३० α-ग्लूकोपिरोनोज़ इकाइयों के बाद एक-एक शृंखला समाप्त होती है और ये शृंखलाएं उन्हीं उपर्युक्त एकत्र-कारक बलों द्वारा जुड़ जाती हैं। स्टार्च में इस एकत्रण (aggregation) को तोड़ने की

उलटी विधि भी संभव है। स्टार्च के दोनों पर हलके अम्ल की प्रतिक्रिया के बाद ऐसीटीकरण एवं मेथिलीकरण से यह संभव है। बिलकुल हाल में ही मेरे पहले सहकारी ई० एल० हर्स्ट (E L. Hirst) ने भी इस परीक्षण की पुष्टि की है। आप ने α-ग्लूकोपिरानोज़ की २६ इकाइयों की एक अकेली शृंखला के मेथिल युक्त रूप को पृथक् किया है। ग्लाइकोजन में ये शृंखलाएँ लम्बाई में आपेक्षिक रूप से छोटी होती हैं; हम लोगों ने ग्लाइकोजन के ऐसे नमूनों का भी परीक्षण किया है, जिनमें १२ और १८ α-फलशर्करा इकाइयों की निरंतर शृंखलाएँ होती हैं। ये शृंखलाएँ बहुअंशी बंधक से पुनः जुड़ी होती हैं और १,०००,००० अथवा इससे भी अधिक अणु-भार वाले आणव संकुल को बनाती हैं।

"इन्हीं प्रायोगिक विधियों से सेल्युलोज़ के आणव आकार को समझने की चेष्टा की गयी है।

"**ऐसकार्बिक अम्ल की रचना**—ऐसकार्बिक अम्ल एकक्षारीय (monobasic) होता है। इसके $C_6 H_7 O_6 M$ प्रकार के सुस्पष्ट लवण बनते हैं। यह बलशाली अवकारक है और इसका आक्सीकरण कई पगों पर हो सकता है। पहले आक्सीकरण के लिए आक्सिजन का एक परमाणव अनुपात आवश्यक होता है। जब आक्सीकरण को इस अवस्था पर रोक लिया जाता है तो अवकारकों—जैसे हाइड्रोआयोडिक अम्ल अथवा हाइड्रोजन सल्फ़ाइड—की सहायता से इसको परिमाणात्मक (Quantitative) रूप से ऐसकार्बिक अम्ल में परिवर्त्तित किया जा सकता है। ताँबे की सूक्ष्म मात्रा जब उत्प्रेरक के रूप में उपस्थित होती है तो ऐसकार्बिक अम्ल का गैसीय आक्सिजन द्वारा आक्सीकरण विशेष रूप से संवेदी (sensitive) होता है, किन्तु इन परिस्थितियों में प्रतिक्रिया परिवर्त्य (reversible) अवस्था से परे चली जाती है और अणु का विनाश हो जाता है।

"एक महत्त्वपूर्ण परीक्षण यह था कि ऐसकार्बिक अम्ल के प्रथम परिवर्तन के समय आक्सीकरण के फलस्वरूप बने पदार्थ में अम्लीय गुणधर्म नहीं होते; यह हर प्रकार से लैक्टोन की भाँति प्रतिक्रिया करता है और इसके जलीय विलयन में अम्लीयता फिर आ जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि ऐसकार्बिक अम्ल (ascorbic acid) का अम्लीय लक्षण इनालिक हाइड्राक्सिल समूह के कारण है और इसमें कार्बाक्सिल समूह नहीं है। फलतः, ऐसकार्बिक अम्ल की रचना ज्ञात करने के लिए प्रथम आक्सीकृत पदार्थ में लैक्टोन घेरे की स्थिति को जानना शेष रहा। ऐसकार्बिक अम्ल के मुख्य लक्षण अब स्थापित हो चुके थे और १९३३ के आरम्भ में बर्मिंघम् विश्वविद्यालय से

२—कीटो-एल-ग्लूकोनिक अम्ल के लैक्टोन और इसके विभिन्न चलावयव रूपांतरों में इसकी रचना की घोषणा की गयी।

एल-ऐसकार्बिक अम्ल के संश्लेषण की ओर दूसरी सरल विधि यह है कि एल-सारबोज़ का (इसमें डी—फलशर्करा की भाँति C_1 पर प्रथम ऐलकोहलीय समूह आक्सीकरण के लिए विशेष रूप से संवेदी होता है) सीधे आक्सीकरण कर लिया जाय; इसको मैं पहले प्रयोग से दिखा चुका हूँ।"

पाल कैरर (Paul Karrer)
(१८८६—   )

"कैरोटिन्वायडों, फ़्लाविनों एवं विटामिन ए तथा बी की रचनासंबंधी शोधों के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

पाल कैरर का जन्म मास्को में हुआ था। आपके माता-पिता स्विट्ज़रलैण्ड के थे और १८९२ में वे वहाँ चले भी आये। यहीं आप स्कूल में पढ़ने भेजे गये। १९११ में ज़ूरिख विश्वविद्यालय से आपने डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। आप वहीं आल्फ्रेड वर्नर (Alfred Werner) के भाषण-सहायक के रूप में रहे; आपने आर्सेनिक के कार्बनिक यौगिकों पर कार्य आरम्भ किया। पाल एरलिश (Paul Ehrlich) ने इस कार्य में रुचि दिखायी और फ्रांकफ़ोर्ट के गेआर्ग स्पेयरहाउस में अपने साथ कार्य करने के लिए आपको आमंत्रित किया। वर्नर के विद्यार्थी के नाते आपको धातु के संकुल लवणों का अनुभव हो चुका था; आपने इस अनुभव का औषधोपयोगी आर्सेनिकलों के बनाने में उपयोग किया और एक रजत-सैल्वर्सन संकुल बनाया। ६ वर्ष बाद आप फ्रांकफ़ोर्ट लौट आये और १९१९ में वर्नर के उत्तराधिकारी हुए। औषध-रसायन के स्थान पर जीव-रसायन का अब आरम्भ हुआ; बड़े अणुवाले कार्बोहाइड्रेटों पर, जिनमें स्टार्च, सेल्युलोज़ और लाइकेन से प्राप्त लाइकेनिन है, कार्य किया गया। शीघ्र ही टैनिन, लेसिथिन और प्रोटीन से प्राप्त एमीनो अम्लों पर भी कार्य होने लगा।

१९२६ में कैरर ने पौधों के रंगद्रव्यों पर कार्य किया; विशेष रूप से पीले रंगद्रव्यों पर जो गाजर में पाये जाते हैं और इसलिए कैरोटिन्वायड कहलाते हैं। स्वयं कैरोटीन के कई अवयवों को पृथक् किया गया; इनका रासायनिक संगठन एक प्रकार का था पर बड़े परमाणुओं के अंत में कार्बन परमाणुओं के द्विगुण बंधकों की व्यवस्था भिन्न थी।

कैरोटीन के कार्बन परमाणुओं की मध्य शृंखला में एक बंधक और द्विगुण बंधक एकान्तर (alternate) पर होते हैं। जब कार्बन परमाणुओं में द्विगुण बंधक होते हैं, तो अणु में उनकी उपस्थिति प्रकट करने के लिए अणु के नाम में–ईन (–ene) जोड़ दिया जाता है। फलतः कैरोटीन को बहुईन (Polyene) कहा गया। मानव शरीर में वे विटामिन ए में परिवर्तित हो जाते हैं। कैरर द्वारा ज्ञात विधि के अनुसार उनके सममित अणु के मध्य में रासायनिक जलयोजन होता है। दुग्ध अथवा यीस्ट में जो पीला पदार्थ––लैक्टोफ़्लाविन––होता है, वह रासायनिक दृष्टिकोण से विटामिन ए से भिन्न होता है, पर विटामिन बी और उसके एन्ज़ाइमों से संबंधित होता है।

१९२७ में कैरर ने कार्बनिक रसायन पर अपनी पाठ्यपुस्तक प्रकाशित की। कई भाषाओं में इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"पुष्पों एवं बेरीयों के नीले और लाल रंग द्रव्य, जो ऐन्थोसायन कहलाते हैं, पहले एक समान और कई पौधों के लक्षण स्वरूप समझे जाते थे। नये अन्वेषणों से यह दिखाया जा सका है कि ऐन्थोसायन आपस में संबंधित अनेक पदार्थों के मिश्रण हैं। कदाचित् एक भी पुष्प अथवा बेरी ऐसी नहीं है, जिसका रंग केवल एक ऐन्थोसायन के कारण हो। प्राकृतिक रंगद्रव्य के दूसरे समूह कैरोटिन्वायड में भी ऐसी ही परिस्थितियाँ होती हैं। कैरोटिन्वायड पर एल० एस० पामर (L. S. Palmer) की प्रसिद्ध पुस्तक में, जो १९२२ प्रकाशित हुई थी, केवल ६ ऐसे कैरोटिन्वायडों का वर्णन है, जिनका उस समय तक विश्लेषण हो चुका था और जिनके केलास बनाये जा चुके थे। ये ६ कैरोटिन्वायड हैं––कैरोटीन, लाइकोपीन, ज़ैंथोफ़िल, लुटीन, फ़्यूकोज़ैंथिन और र्होडोज़ैंथिन। इनके अतिरिक्त बिक्सीन भी उस समय ज्ञात था। ४ वर्ष पहले प्रकृति में पाये जाने वाले इन ज्ञात यौगिकों की संख्या बढ़कर १५ हो गयी। आज हमको इस समूह के ४० प्राकृतिक रंगद्रव्य ज्ञात हैं। पृथक्करण की नयी विधियों से ही उनका शुद्धीकरण संभव हो सका है।

"हाल में कैरोटिन्वायडों ने सबका ध्यान आकर्षित किया है। इसका कारण उनकी बेजोड़ रचना ही नहीं, पर विटामिन से उनका नज़दीक संबंध है। कुछ कैरो-

1. Lex Prix Nobel en 1937 से अनूदित।

टिन्वायड विटामिन ए के प्रोविटामिन होते हैं और पशु-प्राणी द्वारा विटामिन ए में परिवर्त्तित कर लिये जाते हैं। विटामिनों का रचनात्मक अन्वेषण कैरोटीन से ही आरम्भ हुआ। जब १९३० में β—कैरोटीन के रचनात्मक सूत्र को सही तरीके से जान लिया गया, तो उस समय तक और किसी विटामिन अथवा प्रोविटामिन (Provitamin) की रचना ज्ञात न थी। तथापि इसके थोड़े समय पश्चात् ही स्वयं विटामिन ए की रचना स्पष्ट हो गयी। इस प्रकार सबसे पहले विटामिन ए की रचना का ज्ञान प्राप्त किया गया। इस समय हमको कदाचित् यह याद आये कि १० वर्षों से कम पूर्व ही कुछ रसायनज्ञ इसकी द्रव्यात्मक विशिष्टता में संदेह करते थे और कहते थे कि यह पदार्थ की नयी अवस्था है—कलिलीय प्रकृति का एक नया रूप विटामिन के इन अजीब परीक्षित प्रभावों का कारण है।

"इस प्रकार विटामिन ए की प्रतिक्रिया असाधारण रूप से विशिष्ट होती है और एक बिलकुल निश्चित रचना पर निर्भर रहती है। जीवशास्त्रीय विधि से आजकल किसी बहुईन में पशु से विटामिन ए के लाक्षणिक गुणों का विश्वसनीय रूप से परिचय प्राप्त किया जा सकता है; यह अन्य किसी विधि—जैसे निम्नीकरण की रासायनिक प्रतिक्रिया अथवा वर्णक्रम-विश्लेषण के मापन—से सम्भव नहीं है। यह उच्च विशिष्टता आश्चर्य-जनक है, क्योंकि बहुत-से हार्मोनों में भी कोई विशेष लाक्षणिक रचना नहीं होती—उदाहरणतया स्त्री संबंधी लैंगिक हार्मोन पौधों की वृद्धि के हार्मोन से मिलते हैं। पशु-प्राणियों में इसी प्रकार के कायिकी प्रभाव केवल आपस में संबंधित रासायनिक पदार्थों से ही नहीं होते, अपितु कभी-कभी प्राकृतिक पदार्थों से बिलकुल भिन्न रचना वाले यौगिकों के कायिकी प्रभाव प्रायः एक-से होते हैं।

"विटामिनों की रचना की इस सुस्पष्ट विशिष्टता को हाल के कुछ अन्वेषणों के परिणाम से जोड़ा जा सकता है; उससे यह स्पष्ट हुआ है कि अनेक विटामिन ख़मीरों के क्रियाकारी (functional) समूह होते हैं। इन खमीरों के उच्च विशिष्ट गुणधर्म पहले से ही ज्ञात हैं। पहले विटामिन बी$_२$ अथवा लैक्टोफ़्लाविन (lactoflavin) में इस प्रकार के ख़मीर एवं विटामिनों के संबंध को सिद्ध करना संभव हुआ। वारबुर्ग (Warburg) एवं थियोरेल (Theorell) के अन्वेषणों के अनुसार विटामिन बी$_२$ का फ़ास्फ़ोरिक अम्ल का एस्टर पीले आक्सीकारक खमीर का क्रियाकारी समूह होता है। आज लैक्टोफ़्लाविन एवं दूसरे फ़्लाविनों का संश्लेषण किया जा सकता है और इस प्रकार हम लोग किसी रचना से संबंधित विटामिन के प्रभाव का अन्वेषण करने में सफल हुए।"

सिद्धांत एवं व्यवहार पर प्रभाव

बहुअंशी कार्बोहाइड्रेटों की पृष्ठभूमि में हावर्थ और कैरर ने विटामिन पर शोध-कार्य आरम्भ किया। स्टार्च और सेल्युलोज़ से संबंधित नयी सूचना से प्लास्टिक रेशों एवं सरेसों के परिवर्तन एवं उनसे बने पदार्थों की टेक्निकल तैयारी में काफ़ी सहायता मिली।

यह बहुत पहले से ज्ञात था कि साइट्रस फल और हरी तरकारियों से स्कर्वी की बीमारी को रोका और अच्छा किया जा सकता है। इन प्राकृतिक पदार्थों में स्कर्वी-नाशक अथवा ऐसकार्बिक (anti-scorbic अथवा ascorbic) अम्ल को अब एक निश्चित रासायनिक यौगिक का रूप दिया जा सका। अब प्रयोगशाला में और कुछ बाद ही उद्योग-क्षेत्रों में इसकी तैयारी की जा सकती थी। जब नील की रासायनिक रचना स्पष्ट हुई थी तो शीघ्र ही इस रंगसामग्री का संश्लेषण, व्यापारिक उत्पादन और उससे संबंधित अन्य नीलों का बनाना संभव हुआ था। विटामिनों के लिए जीव-शास्त्रीय प्रभाव इतना विशिष्ट होता है कि आणव रचना में किसी प्रकार का परिवर्तन संभव नहीं। यह विटामिन सी के लिए भी संभव नहीं है और विशेष रूप से विटामिन ए के लिए असंभव है। फलों और तरकारियों में विटामिन सी के महत्त्व के कारण पकाने अथवा फलों के रखने के समय इस मूल्यवान् पदार्थ के स्थायित्व पर काफ़ी अन्वेषण हुआ। दुग्ध और मक्खन विटामिन ए के स्रोत थे और इन पर खूब ध्यान लगाया गया। मछली के जिगर से प्राप्त तैलों का सार बनाने की एक नियंत्रित रासायनिक उद्योगशाला बन गयी।

विटामिन सी आक्सीकरण के लिए संवेदी होता है; अतः भोजन के स्वीकरण के समय उसका महत्त्व स्पष्ट हुआ। नेत्रों की क्रिया पर विटामिन ए का प्रभाव और स्पष्ट हुआ, जब इसका चक्षुपटल (retina) के रंगद्रव्यों से (जी० वल्ड–G. Wald) द्वारा संबंध स्थापित हुआ।

१९३८

रिचर्ड कून (Richard Kuhn)

(१९००--   )

"कैरोटिन्वायडों और विटामिनों पर कार्य के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

जब रिचर्ड कून को नोबेल पुरस्कार मिला तो जर्मन सरकार ने उसको स्वीकार करने के लिए मना कर दिया। युद्ध के पश्चात् आपको स्वर्ण-पदक और पुरस्कार का डिप्लोमा प्राप्त हुआ।

कून का जन्म वियना में हुआ था और आप म्यूनिख की विल्सटैटर की प्रयोगशाला के सबसे छोटे स्नातक थे। आपने अपनी डाक्टर की उपाधि के लिए लिखी गयी थीसिस (१९२२) में विल्सटैटर के एन्ज़ाइम के कार्य को और आगे बढ़ाया। १९२६ में आप ज़ूरिख के स्विस टेक्निकल हाई स्कूल के प्रोफ़ेसर हो गये। तीन वर्ष बाद आप हाइडेलबर्ग चले गये और वहाँ विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर तथा रसायन शाखा में औषध-शोध के कैसर विलहेल्म इंस्टीट्यूट के डाइरेक्टर हो गये।

कून ने १९२७ में एन्ज़ाइम के रसायन, भौतिकी रसायन और जीवशास्त्र पर जो पुस्तक लिखी उसमें प्रायोगिक बारीकियों के साथ नये अनुभवों का क्रमवद्ध संयोजन एक विशेषता थी। आपने रंगद्रव्यों के अन्वेषण के साथ एन्ज़ाइम के अध्ययन की विल्सटैटर विधि की भाँति कार्य किया। रंग और ख़मीर प्रक्रिया के गहरे संबंध पर आटो वारबुर्ग (Otto Warburg) ने अपने विचार प्रकट किये थे (देखिए, "कायिकी एवं औषध में नोबेल पुरस्कार", १९३१)। कून ने उसके रासायनिक एवं जीवशास्त्रीय अर्थ को समझने की चेष्टा की। क्रमबद्ध कार्बनिक रसायन से इसका आरम्भ हुआ। बहुत समय से रसायनज्ञ बेंज़ीन के ६ कार्बन परमाणु वाले घेरे से मोहित थे। विल्सटैटर ने इस मोह को मोड़ा और दिखाया कि एक ऐलकेलाइड—पेलीटियरीन (Pelletierine) में, जो अनार से बनता है, आधारस्वरूप ८ कार्बन परमाणुओं का घेरा होता है। इन

कार्बन परमाणुओं में एकांतर रूप से एक गुण एवं द्विगुण बंधक होते थे; यह कौन्जुगेटी (conjugate) बंधकों का क्रम था। कून ने ऐसे कौन्जुगेटी कार्बन परमाणुओं की खुली शृंखला बनायी। वे कार्बनिक रसायन के लिए रोचक थे और इसलिए भी क्योंकि वे अनेक पौधों के रंगद्रव्यों में——गाजर की कैरोटीन, टमाटर की लाइकोपीन और क्रोसस की क्रोसेटिन में—पाये जाते हैं। कून और कैरर दोनों ही इन रंग-द्रव्यों की वास्तविक रासायनिक रचना को स्पष्ट करने के लिए आपस में होड़ करते थे। इन रंगद्रव्यों की विशेष जीवशास्त्रीय सक्रियता होती है और आंशिक रूप में में ये विटामिन से संबंधित होते हैं। विशेषतया कुछ निम्न पौधों के स्पोरों (गैमीटों) के लैंगिक पकन (ripening) में कून ने क्रोसेटिन के उच्च विशिष्ट प्रभावों को दर्शाया। सूक्ष्म विधि एवं स्पष्ट विचारधारा के फलस्वरूप कुछ मिलीग्राम पदार्थों से जटिल रासायनिक रचना का निर्धारण किया गया। विशिष्ट जीवशास्त्रीय प्रति-क्रियाओं के लिए प्रकृति अनेक प्रकार की रासायनिक रचनाओं का उपयोग करती है। उदाहरणस्वरूप, समुद्र के अर्चिन एक हार्मोन का स्राव करते हैं; यह नैफ़्थलीन पदार्थ (हाइड्राक्सिल युक्त नैफ़्थोक्वीनोन) है। यीस्ट में भी एन्ज़ाइम और विटामिन होते हैं। एक विटामिन, जो 'बी' समूह का है, एक चर्म रोग का नाशक है; फलतः इसको एडर्मीन कहा गया। इसके दूसरे नाम भी हैं; विटामिन बी$_६$ और पिरीडा-क्सिन। बाद के नाम से इसका रासायनिक संगठन स्पष्ट होता है। यह आक्सिजन युक्त पिरीडीन से बना होता है। जिस वर्ष नोबेल पुरस्कार दिया गया, कून ने इस विटामिन का पूर्ण रासायनिक सूत्र दिया। चूहे के दैनिक भोजन में जब इसके १ मिली-ग्राम के सौवें भाग को मिला दिया जाता है तो इससे उसकी डर्मेटाइटिस ठीक हो जाती है।

अनेक प्राकृतिक स्वरूपों में एन्ज़ाइम, रंगद्रव्य और विटामिन शर्करा, वसा और विशेषतया प्रोटीन से संयुक्त होते हैं। विल्सटैटर ने इन ढीले रासायनिक संयोगों को सिम्प्लेक्स (symplex) कहा, क्योंकि वे आपस में रहते हुए कई जीवित प्राणियों के सहजीवन (symbioses) से तुलनीय हैं। कून ने इन सिम्प्लेक्सों को घोलकर पौधों का अपवृत साबुन बनाने में व्यावहारिक उपयोग किया; ये साबुन अपवृत इसलिए कहलाते हैं क्योंकि इनमें कार्बनिक अम्ल और अकार्बनिक क्षार के स्थान पर अकार्बनिक अम्ल और कार्बनिक क्षार होते हैं। इनमें से कुछ अपवृत साबुन पुराने हैं, किन्तु औषध क्षेत्रों में उनका उपयोग नवीन है।

आई० जी० फ़ार्बेन कंपनी के हाल के पुनःसंघटन में टेक्निकल प्रशासन के लिए कून ने महत्त्वपूर्ण पद ग्रहण किया।

१९३९

लियोपाल्ड रुज़िका (Leopold Ruzicka)

(१८८७-   )

"पालीमेथिलीन और उच्च टरपीनों पर कार्य के लिए।"

(१९३९ का पुरस्कार एडोल्फ़ बूटीनान्ड्ट (Adolf Butenandt) के साथ दिया गया था। (आगे देखि)

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

लियोपाल्ड रुज़िका का जन्म वुकोवर, यूगोस्लाविया में हुआ था। आपने १९१८ में अपना शिक्षात्मक जीवन आरम्भ किया। १९२६ में आप यूट्रेक्थ (हालैंड) विश्व-विद्यालय के प्रोफ़ेसर हो गये पर तीन वर्ष बाद आप ज़ूरिख के टेक्नीशे होख़्शूले मे लौट आये। गंध-तेलों पर जो कार्य आपने किया, उससे उच्च टरपीनों का एक पृथक् समूह बन गया। आटो वालाख़ (Otto Wallach देखिए पृ० ४१) ने यह ज्ञात किया था कि टरपीन ऐसे पदार्थ से संबंधित होता है जो प्राकृतिक रबर के आसवन से प्राप्त होता है। उसका रासायनिक सूत्र $C_5 H_8$ होता है। उसके अणु में ४ कार्बन परमाणु होते हैं जो एकान्तर रूप से कौन्जुगेटीय द्विगुणक बंधकों से जुड़े होते हैं। टरपीनों का साधारण सूत्र $C_{10} H_{16}$ होता है; वालाख़ ने $C_5 H_8$ सूत्र वाले पदार्थ को आधा अथवा अर्ध-टरपीन (hemiterpene) समझा; इसको आइसोप्रीन कहते हैं। उच्च टरपीनों को बनाने के लिए दो से अधिक अर्ध-टरपीनों का संयोग होता है। रुज़िका ने आइसोप्रीन इकाई को कई अ-टरपीन (non-terpene) प्राकृतिक पदार्थों में भी पहचाना और आपने इससे आइसोप्रीन नियम बनाया। कैरोटिन्वायडों की आणव रचना को समझने में यह नियम बहुत सहायक होता है।

वसीय अम्लों को, जिनमें किसी पार्श्व शृंखला के बिना एक लंबी शृंखला होती है, बनाने के लिए प्रकृति में आइसोप्रीनों का उपयोग नहीं होता। कुछ तेज़ सुगंधि वाले प्राकृतिक तैलों की रचना में वसीय अम्ल की शृंखला एक घेरा बनाती-सी जान पड़ती थी; इसका अम्लीय कार्बाक्सिल समूह–COOH–एक कीटोन समूह C=O में परिवर्तित हो जाता था।

सुगंधों में सिवेट (Civet–मुश्क बिलाव से निकली हुई कस्तूरी) एक महत्त्व-पूर्ण पदार्थ है। रुज़िका ने इसके एक मूल पदार्थ में असाधारण रूप से लंबी १७ कार्बन परमाणुओं की श्रृंखला के घेरे को पाया। बाद में आपने ऐम्बर्ग्रिस का, जो वीर्य ह्वेल (Sperm whale) की पाचक नली का एक निदान-शास्त्र संबंधी पदार्थ है, अन्वेषण किया और आपने इसका संबंध वायलेटों (violets) की कोमल सुगन्धि से स्थापित किया।

बेंज़ीन के घेरे की तुलना में टरपीनों के ६ कार्बन वाले घेरे में हाइड्रोजन अधिक होता है। टरपीनों पर शोध के लिए जिस विधि का रुज़िका ने उपयोग किया, उसमें अधिक हाइड्रोजन को निकालने के लिए विहाइड्रोजनीकरण किया जाता था; इससे हाइड्रोऐरोमेटिक पदार्थ बेंज़ीन सरीखे ऐरोमेटिक पदार्थ में परिवर्त्तित हो जाता है; इनका ज्ञात पदार्थों से संबंध सरलता से स्थापित हो गया।

ज़ूरिख के टेक्नीशे होख़्शूले में रुज़िका महोदय कई दिशाओं में अब भी कार्य कर रहे हैं।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"सिवेटोन से आधारभूत प्रयोग किये गये। १७–सदस्य वाले घेरे की उपस्थिति के विरुद्ध साधारण और मेरे पक्षपात की अपेक्षा इस पदार्थ की जटिलता के स्पष्टीकरण में मुझे कम संघर्ष करना पड़ा।

"जब यह ज्ञात हुआ कि हाइड्रोजनीकरण के फलस्वरूप प्राप्त पदार्थ डाइ-हाइड्रो-सिवेटोन और उसी डाइ-कार्बाक्सिलिक अम्ल $C_{17} H_{32} O_4$ से वोल्फ़ किर्शनर प्रति-क्रिया से प्राप्त पदार्थ एक ही थे तो सिवेटोन के लिए बिलकुल सममित सूत्र पर विचार करना था। डाइ-कार्बाक्सिलिक अम्ल $C_{17} H_{32} O_4$ का सूत्र हेप्टा-डिकेन–डाइ-अम्ल (hepta-decane-di-acid) बताया गया था और संश्लिष्ट अम्ल से इसकी तुलना निश्चित रूप से सिद्ध की जा सकती थी।

```
      HC═CH
     /     \
 (CH2)7   (CH2)7
     \     /
       CO
```

सिवेटोन

1. Lex Prix Nobel en 1939 से अनूदित।

"ऊपरी तौर से सिवेटोन और मस्कोन प्राकृतिक यौगिक नहीं जान पड़ते, क्योंकि पुराना अनुभव है कि प्रकृति में उचक-फाँद नहीं होती ("Natura non fecit saltus")। जब इन दोनों कीटोनों की उत्पत्ति का जीव-रसायन के दृष्टिकोण से विचार किया गया तो उससे उनकी अजीब रचना की एक संभावित व्याख्या की जा सकी। सिवेटोन ओलीनिक अम्ल के ६–आक्सीकरण से बन सकता है और बाद में सिवेट बिल्ली में असंतृप्त डाइ-कार्बाक्सिलिक अम्ल का चक्रीकरण (cyclization) होता है। इसी प्रकार मस्कोन भी वसा-विपचन से बन सकता है—

CH——$(CH_2)_7$——CH_3	CH——$(CH_2)_7$——COOH
//	//
CH——$(CH_2)_7$——COOH	CH——$(CH_2)_7$——COOH
ओलीक अम्ल	असंतृप्त डाइ कार्बोनिक अम्ल

"आणव रचना की बारीकियों और कायिकी गुणधर्मों में जो संबंध है वह इन चक्रीय कीटोनों के घेर–सजातीय (ring-homologous) क्रम से स्पष्ट हो जाता है। ५–८ सदस्य वाले घेरों से जो गंधित पदार्थ बनते हैं उनमें कड़ुवे बादाम, कैंखे Caraway और पिपरमिंट की गंध आती है; १०–१२ सदस्य वाले घेरों से कपूर जैसी गंध आती है। जिन कीटोनों के घेरे में १४–१८ सदस्य होते हैं, उनसे मुश्क की सुगंधि आती है।

"१९२० से हम लोगों ने विस्तारपूर्वक सेस्क्वीटरपीन, डाइटरपीन और बाद में ट्राइटरपीन यौगिको का अन्वेषण किया है; इनको "उच्च टरपीनों" अथवा "बहुटरपीनों" के समूह में रखा गया है। कार्य के लिए एक सरल अनुमान बनाया गया और फिर शीघ्रता से उस पर कार्य कर इन यौगिकों के कार्बन-ढाँचे के विभिन्न पार्श्वों को ज्ञात करके उच्च टरपीन यौगिकों का एक क्रम बनाया गया। कार्य करने के लिए उस समय जो अनुमान बनाया गया था, वह अब आइसोप्रीन नियम के नाम से प्रसिद्ध है; इसका आधार यह मानकर बनाया गया था कि उच्च टरपीनों का ढाँचा आइसोप्रीन के भागों से मिलकर बनता है।

"प्रकृति में उच्च टरपीन यौगिकों की बड़ी संख्या और उनकी जटिल रचना से इसकी सूचना मिलती थी कि क्रमबद्ध रचनात्मक विश्लेषण की साधारण विधि से इच्छित थोड़े समय में आइसोप्रीन नियम का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। हम लोगों की समझ में यह आया कि विहाइड्रोजनीकरण से परिणाम अधिक शीघ्र निकल सकते हैं।

"संक्षेप में, इस पर मुझको बल देना चाहिए कि जिस विधि का चयन किया गया था उससे प्रत्याशित परिणाम शीघ्र निकले और इस प्रकार हमारी विधि की सफलता सिद्ध हुई।

CH_2OH

Phytol

CH_2OH

Vitamin A
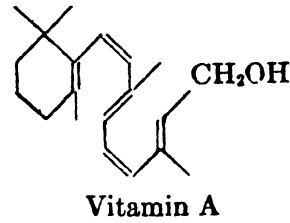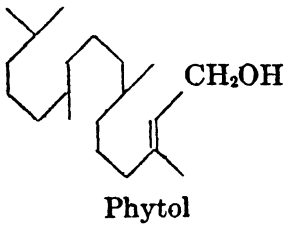
"ये सूत्र दो महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक यौगिकों—फ़ाइटॉल, जो पर्णहरिम का एलकोहलीय अवयव है, और विटामिन ए—के हैं। इन यौगिकों की रचना की व्याख्या अति कठिन हुई होती, क्योंकि इनकी थोड़ी ही मात्रा हमको प्राप्य थी; किन्तु आइसोप्रीन नियम द्वारा बतायी विधि से यह संभव हो सका। दोनों दशाओं में प्राप्त सूत्र को या तो स्वयं प्राकृतिक पदार्थ (फ़ाइटॉल) अथवा उसके परहाइड्रो यौगिक (विटामिन) का संश्लेषण करके पुष्ट एवं नियंत्रित करना था।

"ऐन्ड्रोस्टीरोन के पूर्ण सूत्र को विश्लेषण द्वारा निश्चित नहीं किया जा सका था, किन्तु यदि लिंग-हार्मोनों एवं कोलस्टीरोल के संबंध में हमारे अनुमान सही थे तो ऐन्ड्रो-स्टीरोन का सूत्र $C_{19}\ H_{30}\ O_2$ होना चाहिए। चार पृथक् विन्यास समावयवी स्टीरीन थीं और इनमें से किसी एक का ऐन्ड्रोस्टीरोन के कृत्रिम उत्पादन के लिए उपयोग किया जा सकता था। इन चार समावयवों के ऐसीटेटों के आक्सीकरण से १९३३।४ में हम लोग $C_{19}\ H_{32}\ O_2$ के प्रत्याशित चार समावयवी ऐसीटेटों को प्राप्त कर सके; इनमें से एक जो एपी-डाइहाइड्रोकोलस्टीरोल से प्राप्त किया गया था, वह ऐन्ड्रोस्टीरोन से मिलता है।

"यह लिंग हार्मोन का पहला कृत्रिम उत्पादन ही नहीं, अपितु उसकी रचना का पूरा सबूत था; इससे लिंग हार्मोन का स्टीरोल से (जिसमें सूक्ष्मतम स्टीरिक बारीकियाँ शामिल हैं) संबंध पूर्णरूप से प्रदर्शित हुआ।"

एडोल्फ़ बूटीनान्ड्ट (Adolf Butenandt)
(१६०३--   )

"लिंग हार्मोनों पर कार्य के लिए।"

(१९३९ का पुरस्कार लियोपाल्ड रुज़िका के साथ दिया गया था; पीछे देखिए)

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

एडोल्फ़ बूटीनान्ड्ट का जन्म वेसरमुएंडे, जर्मनी में हुआ था। आपने गाटिन्जेन में विनडाउस (Windaus) से रसायन की शिक्षा प्राप्त की और १९२७ में आप स्नातक हुए। तीन वर्ष बाद आप कार्बनिक एवं जीव-रासायनिक प्रयोगशाला के डाइरेक्टर हो गये। उल्का की भाँति आपका जीवन, रिचर्ड कून के जीवन से मिलता-जुलता है; और उनके साथ ही पुरस्कार न प्राप्त कर सकने का दुर्भाग्य आपको भी सहना पड़ा।

जीवन-रसायन के इतिहास में १९२९ का वर्ष चिरस्मरणीय रहेगा। इस वर्ष ड्वायसी (Doisy) द्वारा अमेरिका में और स्वतंत्र रूप से बूटीनान्ड्ट द्वारा जर्मनी में वह लिंग हार्मोन शुद्ध एवं केलास रूप में प्राप्त किया गया, जो मादाओं के लैंगिक विकास के लिए उत्तरदायी है। यह पदार्थ पहले फ़ालीक्युलिन (folliculin) कहलाता था, क्योंकि इससे उसके स्रोत एकसेवनी (follicle) का पता चलता था। अब इसको एस्ट्रोन कहते हैं। यह वह पदार्थ है, जो प्राणी को गर्भ-चक्रों के लिए तैयार करता है; इसका उच्च निर्वात पर आसवन किया जा सकता है। २५६° सें० का इसका निश्चित गलनांक होता है, और इसके एक ग्राम के २५ लाखवें भाग से बधिया किये हुए चूहे में यूटेरस का विकास होने लगता है।

यह हार्मोन गर्भिणी स्त्रियों के मूत्र में पाया जाता था; फलतः मनुष्यों के मूत्र में नर-लैंगिक हार्मोन का खोजना युक्तियुक्त था। लंडन के सी० फ़ंक (C. Funk) महोदय ने उसमें इसकी उपस्थिति को दर्शाया और इसके अलग करने की विधियों का श्रीगणेश किया। जब यह पदार्थ ख़सी मुर्ग़ को खिलाया जाता है तो उसकी कलॅंगी बढ़ने लगती है। प्रति उपयुक्त भार द्वारा वृद्धि के वेग से हार्मोन की सक्रियता को मापा जा सकता है। नर-मूत्र से प्राप्त शुद्ध उदासीन तेल में हार्मोन की मात्रा इतनी बढ़ा दी जाती है, जिसके लगभग २० मिलीग्राम से एक हार्मोन की इकाई बन सके। बूटीनान्ड्ट ने अम्लों और क्षारों से इसके सार को निकाल कर २० मिलीग्राम की

सक्रियता को केवल ०.३ ग्राम से ही प्राप्त किया। इस दशा में यह यौगिक शुद्ध मादा हार्मोन की सक्रियता की तुलना में अशुद्ध था। जिन अशुद्धियों पर संदेह किया गया था, वे अधिशोषण अथवा निष्कर्षण (extraction) की विधियों से दूर न हो सकीं; किन्तु जब इसमें हाइड्राक्सिल एमीन को जोड़ा गया तो यह प्रतिकर्मक कीटोन C=O समूह से जुड़ गया; इसके फलस्वरूप पदार्थ का एक छोटा भाग केलासित हो गया। सावधानी से पृथक् किये गये केलासों की सक्रियता तिगुनी हो गयी। जब एमीन समूह को पुनः तोड़ लिया गया और इस अवशेष का निर्वात में ऊर्ध्वपातन किया गया, तो एक केलास रूप पदार्थ प्राप्त हुआ। इसके एक ग्राम के दस लाखवें भाग को जब १० भागों में ५ दिन तक लगाया जाता था तो इससे निश्चित रूप से हार्मोन प्रभाव होता था। १९३१ में बूटीनान्ड्ट ने रिपोर्ट दी कि इस पदार्थ का १५ मिलीग्राम बनाया जा चुका था। इतने पदार्थ में ७००० गैलन मूत्र की सक्रियता थी।

बूटीनान्ड्ट ने १९३३ में डान्ज़िग में इस कार्य को जारी रखा। १९३६ से लेकर आप बर्लिन–डाह्लेम के कैसर विलहेल्म इंस्टीट्यूट के जीव-रसायन के डाइरेक्टर रहे। वहाँ भी आप इस पर कार्य करते रहे। आपने मेरियन (Merian लंदन–१९३०) के साथ ही साथ इस हार्मोन के कार्बन ढाँचे को कोलस्टीरोल और कोलिक अम्ल से संबंधित किया और पशुओं एवं पौधे के बीजों के लिए विशिष्ट सक्रियता वाले कई पदार्थों का आविष्कार किया। इनमें से एक हार्मोन में कीटोन समूह तीसरे कार्बन परमाणु पर होता है और १७वें कार्बन परमाणु पर हाइड्राक्सिल समूह होता है। यदि इस यौगिक में चौथे और ५वें कार्बन परमाणु एक द्विगुणक बंधक से जुड़े होते हैं, तो यह एक तीव्र नर-हार्मोन की भाँति क्रिया करता है; यदि द्विगुणक बंधक पहले और दूसरे कार्बन परमाणु पर चला जाता है तो हार्मोन में काफ़ी तीव्र एस्ट्रोजनीय (etrogenic) प्रभाव होते हैं। आपके कार्य का यह सबसे महत्त्वपूर्ण एवं रोचक परिणाम था।

इस रोचक अन्वेषण से यह चेतावनी मिलनी चाहिए कि हार्मोन सांद्रों के औषधोपयोग में काफ़ी सावधानी रखनी चाहिए। इसी के साथ-साथ लिंग हार्मोनों एवं कैंसर–उत्पादक पदार्थों की रासायनिक रचना का संबंध केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही रोचक नहीं है। एक विस्तृत परीक्षा में ३००० चुहियों पर प्रयोग किया गया। एक-सेवनियों से प्राप्त हार्मोनों के संभावित कैंसर-उत्पादक गुणधर्मों की इनमें खोज की गयी। कम-से-कम इन विशिष्ट हार्मोनों के लिए आपने यह दिखाया कि इनके इस प्रकार के कोई प्रभाव नहीं होते।

१९४५ से बूटीनान्ड्ट ने ट्वीबेन्गेन के इस इंस्टीट्यूट (अब मैक्स प्लांक इंस्टीट्यूट) के डाइरेक्टर-पद के साथ-साथ वहीं के विश्वविद्यालय के कायिकी रसायन का आचार्य पद भी सुशोभित किया है।

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

जब हम प्रायोगिक परिणामों से सार्वभौमिक निष्कर्ष निकालते हैं, तो हमें अपवादों एवं उनकी सीमाओं के लिए तैयार रहना चाहिए; कभी-कभी उनसे नये एवं आश्चर्यजनक नियम भी बनते हैं। उच्च टरपीनों के रसायन से अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं। जब रुज़िका ने यह ज्ञात किया कि कार्बन परमाणुओं के घेरे में १७ तक सदस्य हो सकते हैं तो घेरे संबंधी पुराने नियमों के स्थान पर नये नियम बनाने पड़े। इसके विपरीत, इन सार्वभौमिक निष्कर्षों का हम को अधिकतम उपयोग करना पड़ता है; उनकी सीमाएँ जब जान ली जाती हैं, तो उनका स्वरूप निश्चित हो जाता है। "आइसोप्रीन नियम" इस क्षेत्र में शोध-कार्यकर्त्ताओं के लिए उपयोगी रहेगा, यद्यपि और दूसरे नियम होने के कारण इसका क्षेत्र सीमित रहता है।

जीवशास्त्रीय एवं औषधीय दृष्टिकोण से सक्रिय रासायनिक पदार्थों के क्षेत्र में सार्वभौमिक निष्कर्ष विशेष रूप से कठिन होते हैं। ऐसे पदार्थों के अणु में परमाणुओं की सापेक्ष स्थिति अथवा उनके संगठन के थोड़े अंतर से ही प्राणियों पर उनके प्रभाव में निश्चित परिवर्त्तन हो जाता है। आणव रचना में ऐसे ही छोटे सापेक्ष परिवर्त्तनों से कोलस्टीरोल का उन अवयवों (Organs) पर प्रभाव पड़ता है, जो प्राणी के लैंगिक पकन (परिपक्वता) से संबंधित होते हैं। लिंग हार्मोनों की रासायनिक रचना की अच्छी जानकारी के फलस्वरूप बड़े औषधोपयोगी पदार्थों का संश्लेषणात्मक उत्पादन संभव हुआ है। इन हार्मोनों से मिलते-जुलते पदार्थ से आर्थ्राइटिस (Arthritis) का निदान किया जा सका। इस पदार्थ—कार्टीसोन—के संश्लेषणात्मक उत्पादन से इसका मूल्य २०० डालर से ३५ डालर प्रति ग्राम तक गिर गया और बढ़ती हुई माँगों की पूर्ति के लिए इसका उत्पादन बढ़ाना पड़ा।

१९४०-१९४१-१९४२

कोई पुरस्कार नहीं दिया गया

१९४३

जार्ज डी हेवेसी (George De Hevesy)

(१८८५--   )

"रासायनिक प्रक्रमों में खोजक (tracer) रूप में समस्थानिकों के उपयोग संबंधी कार्य के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

हेवेसी ने अपनी मातृभूमि, बुडापेस्ट के स्कूल में अध्ययन किया। तत्पश्चात् आप अध्ययन के लिए जर्मनी और इंग्लैण्ड चले गये। १९०८ में आपने फ्राइबुर्ग इम ब्राइस-गाउ से डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। वहाँ से आप कार्ल्सरुहे में हाबेर के पास गये; तत्पश्चात् मैन्चेस्टर में रदरफ़ोर्ड के पास चले गये। रदरफ़ोर्ड ने निष्क्रिय रेडियम जी० और सीस से रेडियमधर्मी रेडियम डी को पृथक् करने की समस्या आपको दी। इस समस्या को हल करने का प्रयास हेवेसी के जीवन-कार्य के लिए निश्चयात्मक बन गया। जब आपने यह दिखा दिया कि यह पृथक्करण सब सुलभ रासायनिक विधियों से असंभव है, तो आपने इस असफलता को रेडियम डी के विचित्र गुणधर्म के उपयोग में सफलीभूत किया; इससे सीस की उपस्थिति सूचित होती थी और इसकी मात्रा का निर्धारण रेडियमधर्मी समस्थानिक द्वारा दी गयी रेडियमधर्मिता के मापन से होता था। आपने १९१३ में रेडियम-शोध के वियना इंस्टीट्यूट में एफ० पैनेथ के साथ इस विधि का विकास किया।

हेवेसी बुडापेस्ट लौट आये और वहीं १९१८ में प्रोफेसर बन गये; किन्तु वहाँ आप बहुत दिनों तक नहीं रहे। नील्स ब्होर द्वारा आमंत्रित किये जाने पर आपने कोपेन-हागेन में सैद्धांतिक भौतिकी के इंस्टीट्यूट में कुछ वर्ष बिताये। रंटजन किरणों द्वारा आपने ज़र्कोनियम खनिजों का अन्वेषण किया और कास्टर (Coster) के साथ एक नये तत्त्व हैफ़नीयम का १९२२ में आविष्कार किया। इस समय आपने समस्था-निकों को भौतिक विधि से पृथक् करने का भी प्रयास किया। यह इस पूर्व विचार

धिक मात्रा में होना चाहिए, यदि मिश्रित तत्त्व के साथ
ा लिया जाय। पारद और क्लोरीन से (हाइड्रोक्लोरि
सूक्ष्म प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि अवशेष के परमाणु-भार
(fraction) का परमाणुभार वस्तुतः ०.१ प्रतिशत क
१९२६ में फ़ाइबुर्ग में हेवेसी ने पृथ्वी और सृष्टि में
ाहुल्य का अध्ययन किया। एक्स-किरण प्रति-दीप्प वि
गये रासायनिक विश्लेषण द्वारा गणना पर यह अध्य

ाधारण रूप से ३१ के स्थान पर ३२ परमाणु-भार व

थोरियम बी की १,००,००० सापेक्ष इकाइयों को १० मिलीग्राम सीस वाले सीस नाइट्रेट में मिलाया गया और इस नाइट्रेट को क्रोमेट में परिवर्त्तित करके लेबेल लगा हुआ सीस बनाया गया। जब इस यौगिक के संपृक्त विलयन को ताप स्थापी (thermostat) में काफ़ी देर तक रख लिया गया तो इसके कुछ घन सेंटीमीटर को वाष्पीभूत करके इसको सुखा लिया गया। इस प्रकार इसके संगठन (composition) का निश्चय करके विद्युत्दर्शी से प्रायः अदृश्य मात्रा के अवशेष की रेडियमधर्मिता नापी गयी। थोरियम बी की ज्ञात इकाइयों की संख्या से सीस की मात्रा की गणना की गयी; एक इकाई $१०^{-६}$ ग्राम सीस के बराबर थी; इस प्रकार सीस क्रोमेट की विलेयता की गणना अणु (moles) प्रति लिटर $२.१०^{-७}$ में की गयी।

"कार्बन डाइसल्फाइड पर न्यूट्रान रूपी बम फेंक कर हमने रेडियमधर्मी फ़ास्फ़ोरस का समस्थानिक बनाया और इससे शीविट्ज़ (Chicwitz) के साथ फ़ास्फ़ोरस विपचन का अध्ययन किया। इन प्रयोगों में प्रो० नील्स ब्होर द्वारा कृपा करके दिये गये रेडियम और बेरिलीयम से उत्सर्जित सभी न्यूट्रानों का १० लिटर कार्बन डाइसल्फ़ाइड द्वारा अवशोषण कर लिया जाता था। इस प्रकार बने ^{32}P को तनु नाइ-ट्रिक अम्ल अथवा जल से प्रतिक्रिया करके निकाल लिया जाता था; फ़ास्फ़ोरस के निकल जाने के बाद इस कार्बन डाइसल्फ़ाइड का न्यूट्रान रूपी बमों के अवशोषण में पुनः उपयोग हो सकता था।

"समस्थानिक सूचकों के उपयोग से जो सबसे अद्भुत परिणाम हुआ, वह कदाचित् शरीर के अवयवों की गतिशील अवस्था का आविष्कार है। जिन अणुओं से पौधे अथवा पशु के अंगों का निर्माण होता है वे निरंतर नये बनते रहते हैं। नये बनने की इस प्रक्रिया में केवल भोजन से प्राप्त अणु और परमाणु ही भाग नहीं लेते, अपितु किसी इंद्रिय अथवा एक प्रकार के अणु में उपस्थित परमाणु अथवा मूलक शीघ्र ही किसी दूसरी इंद्रिय या किसी दूसरे प्रकार के अणु में उसी या किसी दूसरी इंद्रिय में पाये जाते हैं। भोजन के साथ लिया गया फ़ास्फ़ेट मूलक पहले आँत की म्यूकोज़ में द्राक्षाशर्करा के फ़ास्फ़ोरिलेशन (Phosphorylation) में भाग लेता है; इसके पश्चात् स्वतंत्र फ़ास्फ़ेट के रूप में रक्त-धारा में प्रवाहित होता है; वहाँ रुधिर कोण (red corpuscle) में प्रवेश करके ऐडीनोसीन ट्राईफ़ास्फ़ोरिक अम्ल के अणु से गुँथ जाता है और उसके ग्लाइकाल संबंधी प्रक्रम में भाग लेकर पुनः रक्त धारा-प्रवाह में सम्मिलित हो जाता है। तत्पश्चात् वह यकृत की कोशिकाओं में प्रवेश करता है और फ़ास्फ़ेटाइड अणु के बनाने में भाग लेता है; थोड़ी देर बाद इस रूप में वह रक्त में आ जाता है और तिल्ली में

प्रवेश करता है। कुछ देर बाद वह लिम्फ़ोसाइट (lymphocyte) का अवयव बन कर इस इंद्रिय से निकल जाता है। प्लाज्मा (plasma) के अवयव के रूप में हमें फ़ास्फ़ेट मूलक पुनः मिलता है; यहाँ से उसे अस्थि-पिंजर में जाने का मार्ग मिलता है। अस्थि-पिंजर की सबसे ऊपर वाली आणव सतह में जमा होकर इसे प्लाज़्मा अथवा लिम्फ़ (lymph) के अन्य फ़ास्फ़ेट मूलकों से विस्थापित होने का अवसर मिलता है, किन्तु यह भी संभव है कि इसे वहाँ स्थायी रूप से टिकने का सौभाग्य प्राप्त हो जाय। यह तब होता है जब यह नयी बनी अपाटाइट की तरह की हड्डी–क्रिस्टेलाइट (crystallite) में नीचे बैठ जाता है।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

किसी तत्त्व में रेडियम धर्मी लेबेल को जोड़ कर हम वस्तुतः उस तत्त्व में एक ऐसा भौतिक गुणधर्म जोड़ देते हैं, जिसका सरलता से मापन हो सकता है। इससे शुद्ध रूप में तैयार अथवा पृथक् किये बिना १ ग्राम की दस लाखवीं मात्रा का निर्धारण भी संभव हो जाता है। इस निर्धारण का व्यावहारिक महत्त्व इस बात से स्पष्ट है कि एक ग्राम के १ खरबवें ($१०^{-९}$) भाग में किसी तत्त्व, जैसे क्लोरीन के ६००,००० खरब परमाणु होते हैं। यह पता चला है कि कुछ तत्त्व पौधों की वृद्धि अथवा उनके पकने की जीव-शास्त्रीय प्रतिक्रियाओं में काफ़ी महत्वपूर्ण भाग लेते हैं; बिलकुल सूक्ष्म मात्रा में भी उनकी उपस्थिति पर पशुओं का स्वास्थ्य निर्भर रहता है।

एर्हीनियस (Arrhenius) महोदय ने विलयन में पदार्थ की आयनीय अवस्था का (दे० पृ० १५) जो सिद्धांत बताया था वह हेवेसी की विधि से पूर्ण रूप से सीधे ही सिद्ध हो गया। हरे पौधों द्वारा कार्बन डाइ आक्साइड और जल के स्वीकरण के हमारे ज्ञान में इससे काफ़ी वृद्धि हुई है। थायर्‌वायड द्वारा आयोडीन का अवशोषण वस्तुतः रेडियमधर्मी आयोडीन के मापन से यथार्थ रूप में ज्ञात हुआ है। भोजनों, औषधियों और विषों का शरीर में जो हाल होता है, वह रेडियमधर्मी खोजक विधियों से स्पष्ट हुआ है। जब ग्रंथियों, मांस-पेशियों अथवा अस्थि के तंतुओं के महीन सैक्शन फ़ोटोग्राफ़िक पटल पर रखे जाते हैं तो पटल के प्रति वर्ग सेंटीमीटर से निकले २० लाख β–कणों का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

साइक्लोट्रान अथवा यूरेनियम-पुंजों से अब कार्बन, फ़ास्फ़ोरस और आयोडीन के समस्थानिक सुलभ मात्रा में प्राप्त किये जा सकते हैं। इस कारण इन पदार्थों का औषधि रूप में उपयोग बढ़ता जाता है। बिलकुल हाल में ही उच्च औषध सक्रियता और विकिरण वाले "कोबाल्ट ६०" का औषध-क्षेत्र में पदार्पण हुआ है।

१९४४

ओटो हॉन (Otto Hahn)

(१८७९–   )

"भारी नाभिकों के खंडन के आविष्कार के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

माइन पर स्थित फ्रांकफोर्ट, जर्मनी में आटो हॉन का जन्म हुआ था। आपने म्यूनिख और मार्बुर्ग में रसायन का अध्ययन किया और १९०१ में कार्बनिक रसायन की थीसिस से डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। मार्बुर्ग में कुछ वर्ष तक आप असिस्टेंट रहे; इसके पश्चात् आपने एक वर्ष लंदन में सर विलियम रैमज़े की प्रयोगशाला में बिताया। आपने थोरियम के रेडियमधर्मी विच्छेदन पर अन्वेषण किया। इससे थोरियम श्रेणी में एक नया तत्त्व––रेडियोथोरियम––बढ़ गया। बाद में (१९०७) आपने इसके पूर्व तत्त्व मेसो-थोरियम को भी ज्ञात किया। इसके एक वर्ष पहले आपने मान्ट्रियल में रदरफोर्ड की प्रयोगशाला में कार्य करके रेडियो-ऐक्टीनियम (radio-actinium) का आविष्कार किया था। यह रेडियम-धर्मी तत्त्व विरल मृदा के एक तत्त्व लैन्थेनम् से रासायनिक रूप में एक समान था। जब आप युद्धोपरांत शोधकार्य में व्यस्त हुए, तब ऐक्टीनियम के रहस्यों ने आपका ध्यान १९१८ में पुनः आकर्षित किया। लिसे माइटनर (Lise Meitner) के साथ आपने एक नया तत्त्व–– प्रोटो-ऐक्टीनियम––ज्ञात किया, यह जटिल ऐक्टीनियम श्रेणी का पहला तत्त्व है।

बर्लिन–डाह्लेम के कैसर विलहेल्म इंस्टीट्यूट में यह रासायनिक शोध-कार्य किया गया। १९२८ में आप इसके डायरेक्टर हो गये। अभी तक जितने रेडियमधर्मी रूपान्तर किये गये थे, यहाँ तक कि न्यूट्रान रूपी बमों की कृत्रिम विधि से भी, उन सबमें बने नये तत्त्व, मूल तत्त्वों के या तो समस्थानिक होते थे या उनके निकट संबंधी। ६ जनवरी १९३९ को हॉन का पहला प्रकाशन निकला जिसमें "नाभिकीय भौतिकी

के सभी पूर्व परिणामों के विरोधी प्रयोगों" का वर्णन था। यूरेनियम के नाभिक का दो भागों में खंडन किया गया था; ये दो तत्त्व, आवर्त्त वर्गीकरण में यूरेनियम से काफी दूर थे। आपने शीघ्र ही ज्ञात किया कि भारी नाभिक के खंडन के फलस्वरूप इन दो भागों के अतिरिक्त अनेक छोटे-छोटे अन्य टुकड़े भी निकलते थे।

जर्मनी में युद्ध के वर्षों में भी हॉन वैज्ञानिक कार्य करते रहे। पश्चिमी क्षेत्र की कैसर विलहेल्म गिजेलशाफ्ट के आप १९४६ में सभापति हो गये; जर्मनी के विज्ञान-क्षेत्र में यह महत्तम सफलता है।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"कई वर्षों के कार्यों के फलस्वरूप हम (हॉन–Hahn, माइटनर–Meitner, और स्ट्रासमान –Strassman) ने १९३५–३८ में कृत्रिम रूप से प्राप्त रेडियमधर्मी परमाणुओं के अनेक विविध रूपों का उत्पादन किया। ये थोड़े समय तक जीवित यूरेनियम के कृत्रिम अनुमानित समस्थानिकों से सीधी अथवा जटिल विधि से β–विकिरण के फलस्वरूप बनते थे; इसलिए इनको पार यूरेनियम (Trans-uraniums) अथवा यूरेनियम से परे––कहना पड़ा।

"क्यूरी (Curie) और साविच (Savitch) ने १९३७–३८ में हॉन, माइटनर और स्ट्रासमान से स्वतंत्र रहकर एक तथाकथित ३.५ घंटे वाले पदार्थ का वर्णन किया था; इसको इन लोगों ने यूरेनियम के साथ न्यूट्रान के उपविकिरण से प्राप्त किया था। इसके रासायनिक गुणधर्मों का निर्धारण सरल नहीं था।

"यह ३.५ घंटे वाला पदार्थ पार-यूरेनियम का समझा जाता था। अतः मैंने स्ट्रासमान के साथ कार्य करके इसको फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न किया। बारीकी से परीक्षण करने पर हम अद्भुत निष्कर्षों पर पहुँचे। ये परिणाम इस प्रकार हैं— हॉन, माइटनर और स्ट्रासमान द्वारा वर्णित पार-यूरेनियम के अतिरिक्त दो उत्तरोत्तर α– विकिरण के फलस्वरूप, तीन अन्य कृत्रिम एवं β–विकिरणशील रेडियम समस्थानिक निकलते हैं; इनका अर्द्ध-जीवन विभिन्न होता है। तत्पश्चात् ये कृत्रिम सक्रिय β–विकिरण शील ऐक्टीनियम समस्थानिक बन जाते हैं।

"तथापि, उपर्युक्त उपविकिरण की परिस्थितियों में रेडियम का उत्पादन काफी अजीब था। जब निम्न ऊर्जा वाले न्यूट्रानों का प्रयोग होता था, तो α– विकिरण

1. Lex Prix Nobel en 1940-44 से अनूदित।

वाले रूपांतरों का परीक्षण नहीं हुआ था। किन्तु यहाँ, जैसा पार-यूरेनियमों के साथ होता है, एक ही समय में कई समस्थानिक बन जाते थे।

"विभिन्न दिशाओं में प्रयोग किये गये। चूँकि नये बने पदार्थों का विकिरण कमज़ोर होता था और चूँकि नये समस्थानिकों के अधिकतम स्थायी समस्थानिक की β– किरण का काफी अवशोषण होता था, अतः हम लोगों ने कृत्रिम 'रेडियम' को सह-अवक्षेपित (carrier) की भाँति प्रयुक्त बेरियम से पृथक् करने का यथा-सम्भव प्रयत्न किया।

"नये कृत्रिम रेडियम समस्थानिकों को बेरियम से पृथक् करने के हमारे सारे प्रयत्न असफल रहे।

"हम लोगों ने शुद्ध प्राकृतिक रेडियम समस्थानिकों को अपने उन कृत्रिम 'रेडियम समस्थानिकों' से मिलाया जिनसे रूपांतर के फलस्वरूप बने पदार्थों को पृथक् कर लिया गया था। पहले की ही विधि से इनका प्रभाजन (fractionation) किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि प्राकृतिक रेडियम समस्थानिकों को बेरियम से पृथक् किया जा सका; किन्तु कृत्रिम समस्थानिकों को पृथक् नहीं किया जा सका।

"हम लोगों ने इन परिणामों की दूसरी विधि से भी जाँच की। हम लोगों ने फिर ज्ञात किया कि क्षारीय मृदा (alkaline earth)–समस्थानिक, जिसको हम लोगों ने रेडियम समझा था, वस्तुतः कृत्रिम सक्रिय बेरियम था।

"अतः इस प्रक्रम में ९२ नाभिकीय चार्जवाले यूरेनियम के नाभिक का खंडन होता है और इससे दो बीच के भारी नाभिक बनते हैं। यदि उनमें से एक बेरियम है, जिसकी परमाणु-संख्या ५६ है, तो इसके साथ-साथ दूसरा क्रिप्टान होना चाहिए, जिसकी परमाणु संख्या ३६ है। यूरेनियम की संहति की जब स्थायी समस्थानिकों—बेरियम और क्रिप्टान—से तुलना की जाती है, तो ज्ञात होता है कि यूरेनियम में न्यूट्रान की संख्या अपेक्षतया काफी अधिक है; दूसरे शब्दों में उसमें न्यूट्रान प्रचुरता में हैं। फलतः वे β–किरणों का उत्सर्जन करके उच्च परमाणु-संख्या वाले स्थायी तत्त्वों को बनाते हैं।

"श्री स्ट्रासमान और मैंने (१० फरवरी १९३९ वाले प्रकाशन में) इस संभावना पर भी विचार किया है कि खंडन-प्रक्रम में ही न्यूट्रान निकलें। एफ० जोलियो (F. Joliot) ने सर्वप्रथम ज्ञात किया कि वस्तुतः ऐसा ही होता है।

"युद्ध के समय, रसायन के कैसर विलहेल्म इंस्टीट्यूट में, हम लोगों ने इन जटिल खंडन प्रतिक्रियाओं पर क्रमबद्ध शोध जारी रखा; इस प्रकार नयी प्रतिक्रियाओं का आविष्कार हुआ। जापानी कार्यकर्त्ताओं ने ज्ञात किया कि धीमे किये गये न्यूट्रानों

की अपेक्षा तीव्र न्यूट्रानों से यूरेनियम का खंडन अधिक सम्मित रूप से होता है। १९४५ के आरम्भ में रसायन के कैसर विलहेल्म इंस्टीट्यूट में हम लोग २५ विभिन्न तत्त्वों की एक तालिका बनाने में सफल हुए। इनकी परमाणु-संख्या ३५ (ब्रोमीन) से लेकर ५९ (प्रेज़ीओडिमियम) तक थी। ये तत्त्व यूरेनियम खंडन से तुरंत अथवा जटिल विधि से प्राप्त १०० विभिन्न सक्रिय प्रकार के परमाणु के रूप में थे। परमाणुओं के सक्रिय प्रकार, जिनको हमने १९३९ तक पार-यूरेनियम कहा था, वे सक्रिय खंडन के और उससे बने पदार्थ थे; वस्तुतः वे तत्त्व यूरेनियम के परे नहीं थे।"

सिद्धान्त और व्यवहार पर प्रभाव

प्राकृतिक रेडियमधर्मिता में परमाणु का नाभिक स्वतः और अचानक घटता जाता है। इस विघटन में छोटे कण बड़ी चाल से निकलते हैं। परमाणु-भार की थोड़ी-सी वृद्धि (देखिए, पीछे जोलियो–क्यूरी) से इसका उलटा प्रक्रम कृत्रिम रूप से किया जा सका। हॉन ने यह देखा कि विघटन इस प्रकार हो सकता है जिससे लगभग बीच के भार वाले नाभिक बनें। कृत्रिम रूप से रेडियमधर्मी तत्व β–कणों का उत्सर्जन करते हैं। हॉन का ध्यान सबसे पहले इसी ओर गया। खंडन के समय जो अधिक भारी पदार्थ होते हैं उनमें से पार्श्व-प्रतिक्रिया की भाँति न्यूट्रान निकलते हैं। लिसे माइटनर ने परमाणु रचना संबंधी ब्होर के सिद्धांत के आधार पर नये परिणामों की गणना से ज्ञात किया कि इस प्रतिक्रिया में काफी अधिक ऊर्जा निकलनी चाहिए। नाभिक खंडन की बड़ी ऊर्जा का प्रायोगिक मापन फ्रिश (Frisch) ने किया और बाद में जोलियो ने इसे कुछ दृढ़ किया।

तत्त्वों के एक दूसरे से और द्रव्य के ऊर्जा से संबंध पर जिन सिद्धान्तों का बहुत दिनों से विकास हो रहा था उनसे यह निष्कर्ष निकलता था कि भारी परमाणुओं में काफी अधिक ऊर्जा जमा है। ऐस्टन (Aston) ने इस पर विचार भी किया था (देखिए पृ० ८८) कि यदि हम इस ऊर्जा को विकसित कर सकें तो इसके क्या परिणाम होंगे। अब द्रव्य के ऊर्जा में परिवर्तन की विधि ज्ञात हो गयी है। यह विधि कदाचित् मानवता को नष्ट कर दे या उसका भविष्य उज्ज्वल कर दे।

१९४५

आरटूरी इलमारी विरटानैन (Artturi Ilmari virtanen)

(१८९५--   )

"खेती एवं पोषकाहारी रसायन पर शोध-कार्य एवं आविष्कारों के लिए, विशेषतया चारे (fodder) को ठीक तरह से रखने के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

आरटूरी इ० विरटानेन का जन्म हेलसिनकी, फिनलैण्ड में हुआ था। आपने वहीं के विश्वविद्यालय में रसायन का अध्ययन किया। आपने प्रोफे० ओ० अशान् (O. Aschan) की संरक्षता में डाक्टर की उपाधि के लिए थीसिस संबंधी कार्य किया। इसमें आपने पाइन रोज़िन (pine rosin) के मुख्य भाग एबीटिक अम्ल की रचना का स्पष्टीकरण किया था। १९१९ में स्नातक होने के बाद आपने अपने रासायनिक प्रशिक्षण को पूर्ण नहीं समझा। अतः आपने स्विट्ज़रलैण्ड, जर्मनी और स्वीडेन की यात्राओं में भौतिक एवं जीवन-रासायनिक विधियों का अध्ययन किया। आप १९२४ में हेलसिनकी विश्वविद्यालय के डोसेन्ट (docent) हो गये; १९३१ में फिनलैण्ड के टैक्निकल हाई स्कूल के जीव-रसायन में प्रोफेसर हो गये; तदुपरांत १९३९ में विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हो गये।

लगभग १९२० से लेकर विरटानेन ने हरे चारे के जमा करने में जो प्रक्रम होते हैं उनका अध्ययन किया। किण्वनों से लैक्टिक और ब्यूटिरिक अम्ल बनते हैं। प्रोटीन से टूट कर बने पदार्थ हरे चारे को खराब कर देते हैं; इससे उसके पोषकाहारी पदार्थों में कमी हो जाती है। जब दबे हुए हरे चारे में अम्ल मिला कर उसका हाइड्रोजन आयन सांद्रण $१०^{-४}$ कर दिया जाता है (जिसको pH=4 कह कर भी व्यक्त करते हैं) तो जीव-रासायनिक नाशक प्रक्रमों में कमी हो जाती है। इस प्रकार का अम्लीय चारा किस प्रकार उपयोगी था? क्या इसका प्रभाव स्वास्थ्य एवं दुग्ध पर खराब होता था? १९२८–१९२९ में किये गये विस्तृत परीक्षणों से यह दिखाया

जा सका कि यह चारा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (कुछ गंधकाम्ल के साथ) मिला दिये जाने पर भी अम्लीयता के संरक्षण में अति उत्तम रहता था। केवल कलरियाँ और स्वाद ही नहीं ठीक रहता था, अपितु विटामिन ए और सी में भी कमी नहीं होती थी।

इसके पश्चात् आपने नाइट्रोजन को उपयोगी बनाने में जीवाणु और एन्ज़ाइम संबंधी प्रक्रमों, विशेषतया लेग्यूमिनस पौधों की जड़ों की ग्रन्थियोंमें उपस्थित नाइट्रोजन-दायक जीवाणुओं पर अनेक वर्षों तक कार्य किया। विरटानेन ने पोषकाहारी पदार्थों के उपयोग के लिए जिन एन्ज़ाइम संबंधी प्रतिक्रियाओं और बंधुताओं को उत्तरदायी ठहराया है, उनको अभी पूर्ण रूप से माना नहीं गया है।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"१९२५ में जब मैंने लेग्यूमों और लेग्यूम-जीवाणुओं के अन्वेषण के संबंध में ताजे चारे को ठीक रखने की समस्या पर विचार किया, तो परिस्थिति ऐसी थी कि लेग्यूम की फस्लों का पूर्ण लाभ उठाने के लिए चारा-गृह (silage) की समस्या का सिद्धांत और व्यवहार दोनों में पुन: अन्वेषण करना पड़ा।

मैंने प्रोटीन के विच्छेदन में और अमोनिया से एमीनो-अम्लों के बनाने में विभिन्न जीवाणुओं की क्षमता का पहले अध्ययन किया था। इन महत्त्वपूर्ण परीक्षणों के आधार पर यह संभावित जाना पड़ा कि चारा-गृह में हानिकारी प्रक्रमों को ताजे चारे में 4pH से नीचे तक कृत्रिम अम्लीकरण करके रोका जा सकता था।

"व्यावहारिक रूप में चारा-गृहों के प्रयोग करके यह दिखाना था कि खराब करने वाले प्रक्रमों–श्वसन, प्रोटीन का टूटना (विशेषतया अमोनिया का बनना) एवं हानिकारक किण्वनों–को ताजी फस्ल में 4pH से नीचे तक अम्लीकरण करके रोका जा सकता था, या नहीं। इस दशा में व्यावहारिक प्रयोगों से जो परिणाम प्राप्त हुए वे सैद्धान्तिक अनुमानों से बिलकुल मिलते थे क्योंकि उपर्युक्त सभी हानिकारक प्रक्रमों को बड़ी दक्षता से रोका जा सका था।

"एक दूसरा महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक प्रश्न यह था कि चारा-गृह में pH के मान को ३–४ तक जमा करने के सारे समय तक रखा जाय या नहीं। यदि ताजी घास को जलरुद्ध पात्र में कस कर रख दिया जाय और खनिज अम्लों से उसका pH ३.५ कर दिया जाय तो सारी घास की अम्लीयता धीरे-धीरे घटती जाती है; कुछ महीनों बाद pH

1. पहला चयन "Cattle Fodder and Human Nutrition" (Cambridge 1938) से है; दूसरा Nature, vol. CLVIII (1946), पृष्ठ ५१५ से है।

का मान क्रांतिक सीमा ४ तक पहुँच जाता है। जब एक बार ऐसा हो जाता है तो खराब करने वाले प्रक्रम फौरन आरम्भ हो जाते हैं और घास खराब होने लगती है। यदि यह बहुत गंभीर न भी हो तो भी मवेशी साधारणतया इसे पसंद नहीं करते और कभी-कभी द्रव में डुबाये ऐसे चारे को खाने से इनकार कर देते हैं। तथापि यह दिखाया गया कि जब अधिक द्रव को चारे से निकाल दिया गया, तो उसके pH का मान अपरिवर्तित रहा।

"फिनलैण्ड में ए० आई० वी० (A. I. V.) प्रक्रम के ९ वर्षों तक के विस्तृत व्यावहारिक उपयोग से इस विधि की यथार्थ पूर्णता निश्चित रूप से सिद्ध हो गयी है। गाय को ४५ किलोग्राम तक इस प्रकार का चारा खिलाने पर भी इससे किसी प्रकार के हानिकारक प्रभाव नहीं हुए।

"हमारे नये प्रयोगों से जो प्रकाश पड़ा है, विशेषतया नाइट्रेट और अमोनिया-नाइट्रोजन की कुछ एमीनो अम्लों के साथ सफल होड़ से, उससे हम लोगों को यह संभावित जान पड़ता है कि प्राकृतिक परिस्थितियों में पौधे, नाइट्रोजन पोषकाहार के लिए कुछ नाइट्रोजन के कार्बनिक यौगिकों का भी उपयोग करते हैं; कम से कम कुछ मिट्टियों में ऐसा अवश्य होता है। साधारण रीति से लगाये गये पौधों में कार्बनिक नाइट्रोजन का अधिक उपयोग नहीं होता, क्योंकि कार्बनिक नाइट्रोजन वाले यौगिक मिट्टी में शीघ्र ही अमोनिया और नाइट्रेट लवणों में बदल जाते हैं। किन्तु पौधों द्वारा कार्बनिक नाइट्रोजन के थोड़े से भी उपयोग से अद्भुत परिवर्त्तन होते हैं; अतः इन यौगिकों का बड़ा महत्त्व है। अभी, ऐलानीन (alanine) के प्रभाव से मटरों के आकार में काफी परिवर्त्तन किया जा सका है। फिनाइल ऐलानीन के विकार्बाक्सीकरण (decarboxylation) से प्राप्त फिनाएल एथिल एमीन को नाइट्रेट युक्त पोषकाहारी घोलों में मिला कर मटरों में एक विभिन्न प्रकार की शाखाएँ बनायी गयी हैं। प्रकृति की कुछ परिस्थितियों में भी ऐसे परिवर्त्तनों की आशा की जा सकती है।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

फिनलैण्ड के लिए, जहाँ शरद् ऋतु काफी लम्बी होती है, विरटानेन ने इस विधि का विशेषतया विकास किया था। हरी फस्लों में अम्लों की सहायता से नियंत्रित अम्लीकरण से वर्ष के सब महीनों में स्वादयुक्त एवं पोषकाहारी हरे चारे को सुलभ बनाया जा सकता है। फसल काटने के बाद किसान इस प्रकार ऋतु परि-वर्त्तनों से पराधीन नहीं रहता। विस्तृत प्रयोगों से यह दिखाया जा चुका है कि अम्ल

से बसाये चारे को गायों को खिला कर उत्तम प्रकार का दुग्ध और मक्खन प्राप्त किया जा सकता है। इस विधि का बड़ा विस्तृत उपयोग हुआ है।

उच्च पौधों में नाइट्रोजन पोषकाहार पर विरटानेन ने जो शोध-कार्य किया है उससे ज्ञात हुआ है कि लेग्यूमों की जड़-ग्रंथिओं[1] में हीमोग्लाबिन और मेथिमोग्लाबिन होती है। लाल और भूरे रंगद्रव्य का संतुलन प्रकाश की तीव्रता एवं पौधे की वृद्धि पर निर्भर होता है। जल्दी से बढ़ने वाले पौधों में सूर्य-प्रकाश के दिन जड़-ग्रंथियाँ लाल होती हैं; इससे उनमें अधिक हीमोग्लाबिन की उपस्थिति सूचित होती है। काटी हुई जड़ग्रंथिओं के भूरे रंग से निम्नसक्रियता की सूचना मिलती है। जब न तो हीमोग्लाबिन और न मेथिमोग्लाबिन उपस्थित होती है तो रंग हरा होता है; उस समय नाइट्रोजन स्थिरीकरण समाप्त हो चुका होता है।

लेग्यूम ही ऐसे पौधे हैं जो वायु की नाइट्रोजन को स्थिर कर सकते हैं। इसमें से कुछ नाइट्रोजन मिट्टी में स्रावित हो जाती है। कार्बनिक नाइट्रोजन यौगिकों के महत्त्व पर, जैसा विरटानेन ने इन एमीनो अम्लों से ज्ञात किया है, अभी काफी कार्य होना चाहिए, तभी इसका स्पष्ट चित्र बन सकेगा।

1. Root nodules

१९४६

जेम्स बी० सुमनेर (James B. Sumner)

(१८८७–   )

"एन्ज़ाइम केलासित किये जा सकते हैं—इस आविष्कार के लिए।"
(१९४६ का पुरस्कार जान हारवर्ड नार्थ्रोप (John Horward Northrop) एवं वेन्डेल मेरेडिथ स्टैन्ली Wendell Meredith Stanley—के साथ दिया गया था; आगे देखिए, पृ० १८०)

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

जेम्स बाशेलेर सुमनेर का जन्म कैन्टन, मसा० (मसाचूसेट्स) में हुआ था। स्कूल में आपकी रुचि भौतिकी और रसायन में थी, किन्तु अन्य विषयों में आपका मन नहीं लगता था। आपने हार्वर्ड कालेज में १९०६–१९१० तक पढ़ा। अपने परिवार की रूई बिनने की एक फैक्टरी में आपने थोड़े दिनों तक कार्य किया। फिर कुछ समय तक रसायन पढ़ाने के बाद आप हार्वर्ड लौट आये; इस बार आप आटो फोलिन (Otto Folin) की संरक्षता में औषध स्कूल में आये। १९१४ में आप जीव-रसायन में डाक्टर हो गये। थोड़े ही दिन बाद आपने कार्नेल के एक औषध स्कूल में पद ग्रहण किया। १९२९ तक वहीं आप जीव-रसायन के प्रोफेसर रहे। १९२९ में आप हन्स फान यूलेर चेल्पिन (Hans von Euler Chelpin—दे० पृ०११५) और स्वेदबर्ग (Svedberg) के साथ अपने केलासित एन्ज़ाइमों के अन्वेषण के लिए स्टॉकहोम चले गये।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"मुझे जैक फली (Jack bean) असाधारण रूप से यूरियेज़ में प्रचुर जान पड़ी और मुझे इसके एन्ज़ाइम को शुद्ध रूप में पृथक् और उसकी रासायनिक रचना

1. Lex Prix Nobel en 1946 से अनूदित।

को ज्ञात न कर सकने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ा। क्लाड बर्नार्ड (Claude Bernard) ने कहा था कि प्रतिकर्मक अथवा मूल पदार्थ के चयन पर ही सफलता अथवा असफलता निर्भर है। विलसटैटर का यह दुर्भाग्य था कि उन्होंने इस एन्ज़ाइम को पृथक् करने के लिए सैकरेज़ (saccharase) को चुना। मेरा यह सौभाग्य था कि मैंने यूरियेज़ (urease) को चुना।

"मैंने १९१७ के अंत में यूरियेज़ को पृथक् करना आरम्भ किया, क्योंकि इसके पहले मैं विश्लेषक विधियों में व्यस्त था।

"पहले मैंने जैक फली भोजन से यूरियेज़ का सार जल द्वारा निकालना आरम्भ किया। ये जलीय सार श्यान (viscous) होते थे और इसलिए इनका छानना बहुत कठिन था। ग्लिसराल से जो सार बनाये गये उनसे और अधिक परेशानी हुई। मुझे यह पता चला कि फोलिन (Folin) ने विश्लेषक कार्यों के लिए ३० प्रतिशत ऐलकोहल से फली का सार प्राप्त किया था और इसका यूरियेज़ के स्रोत की भाँति प्रयोग किया था। यह ज्ञात हुआ कि ३० प्रतिशत ऐलकोहल से सार बनाने की विधि में काफी लाभ थे, क्योंकि यह विलायक अधिकतम यूरियेज़ का विलयन तो बना लेता था, किन्तु अन्य प्रोटीनों की काफी मात्रा को नहीं घोल पाता था। अतः इस विलायक के प्रयोग से काफी शुद्धीकरण हो जाता था। ऐलकोहलीय सार बड़ी शीघ्रता से छन जाते थे और इस प्रकार अघुलित पदार्थ छनने-कागज पर रह जाते थे। ३० प्रतिशत ऐलकोहल का केवल एक दोष यह था कि यूरियेज़ पर इस विलायक की धीरे-धीरे असक्रियकारी क्रिया होती रहती थी। तथापि निम्न ताप पर रखने से इस एन्ज़ाइम से असक्रियता नहीं होती थी।

"जब जैक फली भोजन के ऐलकोहलीय सार को निम्न ताप पर रखा जाता था, तो अवक्षेप बनते थे। इन अवक्षेपों में प्रायः सारा यूरियेज़ होता था और इसके साथ कानकेनेवेलिन A (Concanavalin), कानकेनेवेलिन B और अन्य प्रोटीन होते थे। इस समय हमारी प्रयोगशाला में बर्फ की शिलाएँ नहीं थीं, अतः हम इनको खिड़की के पास वाली जगह में रख देते थे और ठंडे मौसम के लिए प्रार्थना करते रहते थे।

"मनोरंजन के लिए मैंने ३० प्रतिशत ऐलकोहल के स्थान पर ऐसीटोन का प्रयोग किया और यह देखा कि इस विलायक से शुद्धिकरण की विधि में कोई लाभ होता है या नहीं। तदनुसार मैंने ३१६ घ० से० शुद्ध ऐसीटोन को १००० घ० से० तक तनु किया और यूरियेज़ का सार इससे निकाला। मैं क्रमबद्ध रूप से ऐसीटोन को इसी प्रकार तनु करता रहा, क्योंकि मैं आसवन से प्राप्त ९५ प्रतिशत ऐलकोहल से ३०

प्रतिशत ऐलकोहल में भी यही करता था। जब बर्फ की शिलाएँ आ गयीं तो मैंने ऐसीटॉन के सार को रात भर तक उन पर रखा। दूसरे दिन प्रातः काल मैंने छनित का परीक्षण किया। इसमें अवक्षेप लगभग बिलकुल नहीं था; इस प्रकार यह ऐलकोहलीय सार से भिन्न था। तथापि, जब मैंने इसके एक बूंद को सूक्ष्मदर्शी में देखा तो इसमें छोटे-छोटे केलास दिखाई पड़े। इनका आकार ऐसा था कि मैंने पहले इनको कभी नहीं देखा था। मैंने कुछ केलासों को सेन्ट्रीफ्यूज़ किया और देखा कि वे शीघ्र ही जल में घुल जाते थे। तब मैंने जलीय विलयन का परीक्षण किया। इसमें प्रोटीन थी और इसकी यूरियेज़ सक्रियता काफ़ी उच्च थी। तब मैंने अपनी पत्नी से फोन पर कहा, 'मैंने एन्ज़ाइम को सबसे पहले केलासित कर लिया है।'

जान हार्वर्ड नार्थ्रोप (John Horward Northrop)

(१८६१--)

वेन्डेल मेरेडिथ स्टैनली (Wendell Meredith Stanley)

(१६०४--)

"शुद्ध रूप में एन्ज़ाइमों और वायरस प्रोटीनों की तैयारी के लिए।"

(१९४६ का पुरस्कार जेम्स बी० सुमनेर के साथ दिया गया था; पीछे देखिए)

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

नार्थ्रोप

जान हार्वर्ड नार्थ्रोप का जन्म यान्कर्स, न्यूयार्क में १८९१ में हुआ था। आपके पिता प्राणिशास्त्री थे और आपकी माता वनस्पतिशास्त्रज्ञ। इन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से १९१५ में पीएच० डी० उपाधि प्राप्त की। १९१७ से १९१९ तक आप युद्ध संबंधी रासायनिक सेवाओं से संबंधित रहे। इस बीच में आपने "ऐसीटोन के किण्वन-प्रक्रम एवं उसकी तैयारी का आविष्कार किया।" आप १९२४ से प्रिंसटन के राकफ़ेलर इंस्टीट्यूट के सदस्य हैं।

स्टैन्ली

वेन्डेल मेरेडिथ स्टैनली का जन्म रिजविले, इन्ड० में हुआ था। १९२९ में इलीन्वाय विश्वविद्यालय से आप स्नातक हुए और हाइनरिश वीलैंड के साथ म्यूनिख में स्टीरोल पर कार्य करते रहे। १९३१ से आप राकफेलर इंस्टीट्यूट की औषधशोध से संबंधित हैं। दूसरे महायुद्ध के दौरान में आपने इन्फ्लुएंजा वायरस के पृथक्करण पर कार्य किया और उससे वैक्सीन तैयार करने का प्रयत्न किया।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

नार्थ्राप

"मेरे पूर्व के कार्यकर्त्ताओं की राय थी कि एन्ज़ाइम कदाचित् प्रोटीन हैं। १८९६ में पेकेलहेरिंग (Pekelharing) ने एक प्रोटीन को आमाशय-रस (gastric juice) से पृथक् किया और इसको आपने पेप्सिन नामक एन्ज़ाइम समझा। आप प्रोटीन को केलासित न कर सके। फलतः आपके एन्ज़ाइम और प्रोटीन की पहचान को कभी मान्य नहीं समझा गया। मैंने १९२० में इन प्रयोगों को दोहराया किन्तु उस समय उन पर अधिक कार्य नहीं कर सका।

"सुमनेर के परिणामों से मुझे प्रोत्साहन मिला और मैंने पेप्सिन समस्या को फिर से हल करने की चेष्टा की। १९३० में मैंने व्यापारिक पेप्सिन से एक केलास-प्रोटीन को पृथक् किया। यह एन्ज़ाइम पेप्सिन जान पड़ती थी। तब से अब तक पाँच और एन्ज़ाइम एवं उनके पूर्ववर्त्तियों को मेरी प्रयोगशाला में पृथक् किया जा सका है। ट्रिप्सिन और उसके पूर्ववर्ती ट्रिप्सिनोजन, जो ट्रिप्सिन का रोकने वाला पाली-पेप्टाइड है, और इस पदार्थ का ट्रिप्सिन के साथ एक यौगिक काइमोट्रिप्सिनोजन, और काइमोट्रिप्सिन के तीन रूपों को कूनिट्ज़ (Kunitz) और मेरे द्वारा पृथक् करके केलासित किया गया। कूनिट्ज़ और मैक्ड़ोनल्ड (Mc Donald) ने राइबोन्यूक्लीएज़ और हेक्सोकाइनेज को पृथक् और केलासित किया। ऐन्सन (Anson) ने कार्बोक्सी-पेप्टीडेज़ को केलासित किया और हेरियट (Herriott) ने पेप्सिनोजन को पृथक् और केलासित किया। ये प्रयोग काफ़ी कठिन थे और इनमें काफी परेशानी उठानी पड़ती थी और मेरे सहयोगियों के बिना––हेरियट, ऐन्सन, डेसराऊ

1. Lex Prix Nobel en 1946 से अनूदित।

(Desreux) मैकडोनल्ड, होल्टर, क्रूएगेर, (Kruegcr) बटलर (Butler) और विशेषतया डा० कूनिट्ज़, जिनमें इन अस्थायी एवं भ्रमोत्पादक पदार्थों को समझने की विलक्षण प्रतिभा थी—यह कार्य सफल नहीं हो सकता था।

"इन प्रयोगों के फलस्वरूप यह संभावित जान पड़ता है कि सब एन्ज़ाइम और कम से कम कुछ वायरस प्रोटीन हैं। केवल यही तथ्य कि तैयार किये गये पदार्थ केलासित प्रोटीन हैं, इस निष्कर्ष के लिए पर्याप्त नहीं है। वस्तुतः, हम लोगों ने अपने पदार्थों की शुद्धता को स्थापित करने में और प्रत्येक विधि से उनकी जाँच करके प्रोटीन और उसकी सक्रियता में संबंध स्थापित करने में काफी समय बिताया है।

"इन परिणामों पर बहस करने के पूर्व संक्षेप में उन प्रायोगिक विधियों का वर्णन करूँगा जिनका मैंने इन सक्रिय प्रोटीनों के पृथक् और केलासित करने में उपयोग किया है। एक ऐसी कोई भी विधि ज्ञात नहीं हुई है जो एन्ज़ाइम को पृथक् केलासित कर सके; किन्तु कुछ साधारण सिद्धांत इस दिशा में बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं। सबसे पहले, पदार्थों की काफी बड़ी मात्रा का उपयोग किया गया जिससे तनु विलयन के स्थान पर वास्तविक ठोस पदार्थ प्राप्त हो सके। पहले एन्ज़ाइमों के पृथक् करने में जो अस-फलता प्राप्त होती थी उसका कारण मेरी समझ में यह है कि कार्य अति तनु विलयनों से किया जाता था। दूसरे, जहाँ कहीं भी संभव होता था, चूषण से छनाई की गयी, क्योंकि मातृ-द्राव से सेन्ट्रीफ़्यूज की अपेक्षा इस विधि द्वारा अवक्षेप काफी अच्छी तरह से पृथक् होता है। यदि पेकेलहेरिंग ने अवक्षेप को सेन्ट्रीफ़्यूज करके और उसको काफ़ी जल में घोलने के स्थान पर अपने पेप्सिन पदार्थ को छान कर काफ़ी कम जल में घोला होता तो मेरा विश्वास है कि पचास वर्ष पहले ही एन्ज़ाइम केलासित हो गया होता।

"तीसरे, प्रभाजन साधारणतया सांद्र उदासीन लवणों से किया गया; इनकी उपस्थिति में तनु-लवण-विलयनों की अपेक्षा प्रोटीन काफ़ी अधिक स्थायी रहते हैं। उदाहरणतया हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के २·७ pH और ०° से० ताप पर पेप्सिन ३ प्रतिशत प्रतिदिन के वेग से विघटित होती है। लगभग संपृक्त मैग्नीशियम सल्फ़ेट के विलयन से ०° से० पर (जो सबसे अच्छी स्थायी कारी परिस्थिति है) यह वेग १ प्रति-शत प्रतिदिन होता है।

"८.० pH और ३०° से० पर ट्रिप्सिन की ९० प्रतिशत सक्रियता प्रतिदिन घटती रहती है। यह प्रतिक्रिया असाधारण है, क्योंकि यह द्वि-आणव (bimolecular) है और इस दशा में तनु विलयन सांद्र विलयनों की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है।"

स्टैन्ली[1]

"१८९८ में बाइजेरिंक (Beijerinck) के कार्य के साथ साधारण गुणधर्मों के अध्ययन द्वारा वायरसों की प्रकृति जानने के प्रयास आरम्भ हुए और विभिन्न प्रयोगशालाओं में तीस वर्षों से अधिक समय तक ये प्रयास असफल रहे। यद्यपि बाइजेरिंक और ऐलर्ड (Allard) ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया था तथापि १९२७ से १९३१ तक किया हुआ विनसन (Vinson) और पेट्रे (Petre) का कार्य सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। आपने दिखलाया कि वायरस-सक्रियता को बिना कोई हानि पहुँचाये तंबाकू के मोज़ैक (mosaic) वायरस में कई प्रकार के रासायनिक उलट-फेर किये जा सकते थे। तथापि जब १९३२ में वायरसों पर कार्य आरम्भ हुआ तब वायरसों की वास्तविक प्रकृति पूर्णरूपेण रहस्यमयी थी। अब १९४६ में इसके लिए रसायन का नोबेल पुरस्कार मिला है। यह नहीं ज्ञात था कि वे अकार्बनिक हैं या कार्बोहाइड्रेट, या हाइड्रोकार्बन, या लाइपिड या प्रोटीन या प्राणी-संबंधी जीव। फलतः यह आवश्यक था कि कुछ प्रयोग ऐसे किये जायँ, जिनसे उनकी वास्तविक प्रकृति का निश्चित ज्ञान हो। आरम्भ के प्रयोगों के लिए तम्बाकू के मोज़ैक वायरस को चुना गया, क्योंकि इससे कुछ असाधारण लाभ थे। काफ़ी तेज़ी से प्रभाव डालने वाली इसकी बड़ी मात्राएँ सुलभ थीं और वायरस असाधारण रूप से स्थायी था तथा इस वायरस की मात्रा का मापन सरलता, शीघ्रता और बड़ी यथार्थता से किया जा सकता था।

"तम्बाकू के मौज़ैक वायरस पर एक सौ से भी अधिक रसद्रव्यों के अध्ययन के फलस्वरूप, यह ज्ञात हुआ कि जिन रसद्रव्यों में सीधी असक्रियकारी क्षमता थी, वे साधारणतया आक्सीकारक थे; प्रोटीन के अवक्षेपक और हाइड्रोजन आयन का सांद्रण करने वाले रसन्द्रव्य भी वायरस को असक्रिय बना देते थे। यह निष्कर्ष निकाला गया कि साधारण रूप से परिणाम इस प्रकार के हैं, जिनसे ज्ञात होता कि वायरस प्रोटीन हैं। इस अध्ययन के फलस्वरूप उन दिशाओं में निश्चित रूप से प्रयास किये जाने लगे जिनसे प्रोटीनों का सांद्रण और शुद्धीकरण हो सके। विनसन और पेट्रे द्वारा प्रस्तावित तम्बाकू के मौज़ैक वायरस के लिए सीस ऐसिटेट की विधि की तीन मुख्य सीढ़ियों को सर्वोत्तम प्रकार से करने के लिए हाइड्रोजन-आयन का सांद्रण ज्ञात किया गया। इस विधि के उपयोग से रंगहीन, आंशिक रूप से शुद्ध, विलयन प्राप्त हुए;

1. Les Prix Nobel en १९४६ से अनूदित।

इनमें वायरस की सक्रियता मूल की अपेक्षा लगभग उतनी ही या कुछ अधिक थी। बाद को यह ज्ञात किया गया कि वायरस का सांद्रण और शुद्धीकरण समविद्युतीय (isoelectric) अवक्षेपण और अमोनियम सल्फ़ेट से लवण निकाल कर शीघ्रता से किया जा सकता है।

"छनित में अमोनियम सल्फेट के विलयन की पर्याप्त मात्रा धीरे-धीरे मिलायी जाती है और उसका खूब क्षोभन किया जाता है जब तक विलयन में बादल-से नहीं बनते। इसके पश्चात् १० प्रतिशत ग्लेशियल ऐसिटिक अम्ल और अर्द्ध संपृक्त अमोनियम सल्फ़ेट मिलाया जाता है, जब तक हाइड्रोजन आयन सांद्रण ५ pH तक न हो जाये। इस प्रकार छनित में प्रोटीन केलासित हो जाती है।

"यह कहना आवश्यक है कि कुछ समय तक यह संदेहजनक रहा है कि केलासित पदार्थ तम्बाकू का मोज़ैक वायरस है या नहीं। इसका कारण मुख्यतया वे पुराने विचार थे, जिनके अनुसार वायरस जीवित अणु थे। अनेक प्रकार के प्रयोगों से परीक्षा की गयी कि केलासित पदार्थ तम्बाकू का मोज़ैक वायरस है या नहीं। इस पदार्थ की वायरस-सक्रियता मूल पदार्थ की अपेक्षा ५०० गुनी थी। केवल $१०^{-९}$ ग्राम पदार्थ युक्त इसका १ मि० ली० विलयन बीमारी फैला सकता है।

"श्यानता (viscosity) एवं कल्कन (sedimentation) के निर्धारण से जो परिणाम प्राप्त हुए उनसे यह निष्कर्ष निकला कि तम्बाकू के मोज़ैक वायरस के कण छड़ की भाँति होते हैं। उनका व्यास लगभग १२ mμ और उनकी लम्बाई लगभग ४०० mμ होती है; उनका अणुभार लगभग ४ करोड़ होता है।

"तम्बाकू के मोज़ैक वायरस का एक रोचक एवं बड़ा महत्त्वपूर्ण गुणधर्म यह है कि उनके सिरे एक दूसरे से जुड़ कर समूह बनाते हैं। वायरस सक्रियता के लिए पूरी छड़ आवश्यक जान पड़ती है, क्योंकि छड़ जब दो भागों में टूट जाती है तो वायरस सक्रियता का नाश हो जाता है।"

सिद्धान्त और व्यवहार पर प्रभाव

"एन्ज़ाइम" शब्द के वास्तविक अर्थ हैं "यीस्ट में"। यीस्ट अथवा माल्ट अंकुरणों (sprouts) से सार प्राप्त किय गये। ये कार्बनिक पदार्थों की बड़ी मात्राओं पर प्रतिक्रिया करते थे, जैसा स्टार्च का शर्करा के ऐलकोहल में परिवर्त्तन से होता है। विलसटैटर ने जिन्होंने एन्ज़ाइम-विज्ञान में मात्रात्मक मापनों के आरम्भ कराने में काफी कार्य किया, एन्जाइमों को रस-द्रव्य मानने का काफ़ी विरोध किया। इसके वास्त-

विक प्रमाण का प्रदर्शन तब हुआ जब एन्ज़ाइम शुद्ध पदार्थों की भाँति पृथक् कर लिये गये। रासायनिक विधि एवं रासायनिक सिद्धांत के लिए यह महान् विजय थी। सक्रियता का पहले रहस्यमय कारण अब एक इकाई शुद्ध पदार्थ के एक अणु में सीमित हो गया। यह सक्रियता रंगद्रव्यों के रंग की भाँति एक आणव गुणधर्म है।

केलासन सफलतापूर्वक किया जा सका। उदाहरणतया, आलू के एक्स वायरस के साथ, टमाटर के बुशी स्टंट वायरस (bushy stunt virus) के साथ जो तम्बाकू के मोज़ैक वायरस की भाँति छड़ बनाता है, और इन्फ्लुएंज़ा के विभिन्न प्रकारों के साथ जिसके शुद्ध कण गोलाकार होते हैं। इन वायरसों का निर्माण एमीनो अम्लों से होता है, जैसा अन्य प्रोटीनों में भी होता है। शुद्ध वायरसों के साथ कुछ रासायनिक परिवर्तन भी किये जा सकते हैं जिनके बाद भी वे सक्रिय और बीमारी फैला सकने योग्य रहते हैं। फ़ार्मेल्डीहाइड की प्रतिक्रिया से उनकी रचना में जो परिवर्तन होते हैं, उनसे उसकी सक्रियता पर भी प्रभाव पड़ता है; जब मूल रासायनिक रचना पुनः बना दी जाती है तो सक्रियता भी फिर से आ जाती है।

इन अन्वेषणों से जीव-रसायन एवं औषध के दृष्टिकोण से बड़े महत्त्वपूर्ण अन्वेषणों का एक अध्याय समाप्त हुआ। तथापि डा० स्टैन्ली द्वारा नोबेल पुरस्कार प्राप्त करते समय किये गये भाषण के अंत में यह कहा गया, "वायरस-शोध का नया क्षेत्र अभी वस्तुतः अपनी शैशवास्था में है और अभी बहुत कुछ करने को बाकी है।" एन्ज़ाइम-शोध के लिए भी यही कहा जा सकता है। रंग-सामग्रियों के लिए रंग और रासायनिक रचना में कुछ संबंध स्थापित कर लिये गये हैं। एन्ज़ाइमों और वायरसों के लिए ऐसे संबंध अभी दृष्टिगोचर नहीं हुए हैं, किन्तु पहले की अपेक्षा अब समस्या का हल अधिक विश्वास से सोचा जा सकता है।

१९४७

राबर्ट राबिन्सन (Robert Robinson)

(१८८६-   )

"जीव-रासायनिक दृष्टिकोण से बड़े महत्त्वपूर्ण कुछ वनस्पति-पदार्थों, विशेषतया ऐलकेलाइडों, की शोध के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

राबर्ट राबिन्सन का जन्म बफ़र्ड में हुआ था; यह चेस्टरफ़ील्ड के पास डर्बीशायर, इंग्लैण्ड में है। यहाँ आपके पिता दफ़्ती के बक्से और स्वयं चीड़-फाड़ करने वाले यन्त्रों एवं सामग्री को स्वयं आविष्कृत मशीनों पर बनाते थे। आप १९१० में मैनचेस्टर विश्वविद्यालय से डाक्टर हो गये। १९१२ से १९१५ तक आप सिडनी विश्वविद्यालय, आस्ट्रेलिया में कार्बनिक रसायन के प्रोफ़ेसर रहे। इंग्लैण्ड लौटने पर आप कई विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर रहे। १९२९ से आप आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के मैग्डालेन कालेज में हैं।

राबिन्सन की रुचि पहले वनस्पति रंगद्रव्यों की रासायनिक रचना में थी; बाद में यह ऐलकेलाइडों तक विस्तृत हो गयी। पुष्पों, जड़ों, लकड़ी अथवा छाल के लाल, नीले अथवा बैंगनी रंग बड़े जटिल पदार्थ हैं और ये ऐन्थोसायेनिन कहलाते हैं। कुछ प्रकार की लकड़ियाँ बहुत दिनों से रंगने के काम में लायी जाती थीं। पहले राबिन्सन इनमें विशेष रूप से रुचि रखते थे। जो रंग-सामग्रियाँ उनसे प्राप्त की जा सकती हैं, वे हैं—ब्रैज़िलिन और हीमाटाक्सिलिन। राबिन्सन ने विश्लेषण को संश्लेषण से सदैव पुष्ट करने का प्रयत्न किया। आपने ट्रोपीनोन के संश्लेषण की एक विधि ज्ञात की; इसका एक संबंधी ऐट्रोपीन के अणु के एक लाक्षणिक भाग को बनाता है। ऐट्रोपीन एक ऐलकेलाइड है जिसका औषध में प्रयोग होता है; उदाहरणतया, आँख जाँचने के पहले पुतली को बड़ा करने में। आपने मार्फ़ीन की आणव रचनाओं में परमाणुओं की व्यवस्थाओं को ठीक से बताने में काफ़ी महत्त्वपूर्ण भाग लिया। पापी

(poppies) के बीजों के रस पर भी, जिसमें पपावरीन और नार्कोटीन भी आती हैं, आपने काफ़ी कार्य किया। इनमें कार्बन की खुली शृंखलाएँ घेरों में बंद हो जाती हैं और जगह में परमाणु-समूहों के हिलने-डुलने (orientation) का निर्धारण करना पड़ता है।

राबिन्सन ने अपने संबंध में कहा, "जो कुछ भी मैंने किया है उसका महत्त्व केवल वैज्ञानिक क्षेत्र तक ही सीमित है; पदार्थों के आर्थिक अथवा जीव-रासायनिक महत्त्वों का अध्ययन अभी नहीं किया गया है।"

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"ब्रैज़िलिन और हीमाटाक्सिलिन का अध्ययन अभी वस्तुत: समाप्त नहीं हुआ है और इस संबंध में मैं एक साधारण परीक्षण बतलाना चाहूँगा। ब्रैज़िलिन के संश्लेषण का कोई औद्योगिक महत्त्व नहीं है; इसका जीव-रासायनिक महत्त्व भी एक समस्या है। किन्तु तब भी इसके संश्लेषण का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि हमें नहीं मालूम कि इसे किस प्रकार किया जाय। जिस प्रकार शुद्ध गणित का संबंध भौतिकी से है, उसी प्रकार कार्बनिक रसायन का संबंध जीव-रसायन से है। दोनों दशाओं में उनके उपयोगों पर ध्यान दिये बिना अति कठिन समस्याओं के हल करते समय आधारभूत ज्ञान की सृष्टि निश्चयपूर्वक होती है।

"ब्रैज़िलिन के अन्वेषण के दो और विषय मिले। एक तो, पायरीलियम लवणके संश्लेषण से पहले ऐन्थोसायेनिडिन और बाद में ऐन्थोसायेनिन (नीचे देखिए) का संश्लेषण हुआ। दूसरे β–३ : ४ डाइमेथाक्सीफ़िनाइल प्रोपियोनिक अम्ल के घेरे के सरलता से बंद होने के कारण कीटोन (II) के बनाने से पपावरीन के संश्लेषण का मार्ग ज्ञात हुआ।

"मैंने पौधों से प्राप्त पदार्थों के अणुओं में सरलता से पहचाने जा सकने वाले अवयवों के आधार पर उनके रचनात्मक एवं जीव-रासायनिक संबंधों को समझने की सदैव चेष्टा की। आरम्भ में इसका उदाहरण बेरबेरीन की रचना में प्रस्तावित परिवर्त्तन से मिलता है (१९१०)। यह काफ़ी अप्रत्याशित जान पड़ा कि हाइड्रेस्टिस कैनेडेन्सिस के कनजीनर (congeners in Hydrastis canadensis) हाइड्रेस्टीन और बेरबेरीन में पूर्ण रूप से भिन्न मेथाक्सिल समूह हों। आक्सीबेरबेरीन (पर्किन Perkin और रे Ray १९२५ के साथ) द्वारा बेरबेरीन का जब पहला संश्लेषण हुआ

1. Les Prix Nobel en 1947 से अनूदित।

तो प्रस्तावित परिवर्तन ठीक सिद्ध हुआ। जे० एम० गुलंड (J. M. Gulland) के साथ १९२३–२४ में मार्फ़ीन और उससे सम्बन्धित यौगिकों की रचना को फिर से बतलाने में भी ये ही विचार आधारभूत थे।

"स्ट्रिक्नीन और ब्रूसीन के रसायन के विकास में जो परस्पर सहायता मिली है, उसको उपयोगिता के दृष्टिकोण से संक्षेप में नहीं कहा जा सकता और उसको अलग बताना चाहिए। इसमें ७ जुड़े हुए घेरे हैं; कार्बनिक रसायनज्ञों के लिए इसका अणु बड़ा रोचक है और उनके लिए यह अच्छा खेल का मैदान है। निम्नीकरण (degradation) के अध्ययन के लिए भविष्य में अनेक वर्षों तक यह उपयुक्त सामग्री के रूप में रहेगा। तथापि मेरा विश्वास है कि हर बारीकी में इसकी रचना की समस्या संतोषजनक रूप से हल हो गयी है। बहुत दिनों तक सूत्र (xxv) संतोषजनक दिखाई पड़ा, किन्तु १९४५ में प्रिलोग (Prelog) और ज़्पिलफ़ागेल (Szpilfogel) ने यह मानने के लिए अच्छे कारण दिये कि घेरे 'च' में ६ सदस्य होने चाहिए। इसी दिशा में और भी प्रमाण मिले हैं। निओस्ट्रिक्नीन के जो द्वि-बंधक की स्थिति के परिवर्तन के समावयव के रूप में बनती है, रसायन ने भी अस्थायी रूप से कुछ परे-
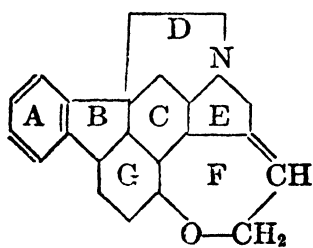
(XXV)
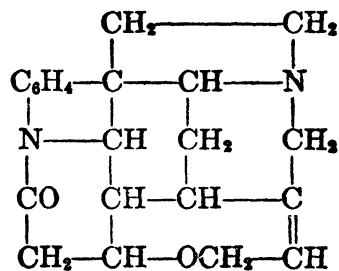
(XXVI)

शान किया। ये कठिनाइयाँ इस प्रकार हल हो गयीं। निओस्ट्रिक्नीन में $>N-\overset{\alpha}{C}H=\overset{\beta}{C}<$ होता है, जिसके आक्सीकरण से परबेंज़ोइक अम्ल $>N-CHO$ $>CO$ बनता है। ब्रोमीन से यह ब्रोमो-हाइड्रोब्रोमाइड में बदल जाता है जो गुनगुने पानी में $>N-\overset{\beta}{C}-\overset{\alpha}{C}HO, HBr$ बन जाता है। (आर० एन० चक्रवर्ती के साथ

१४५–४६)। सावधानी से और लंबे विचार-विमर्श के पश्चात् मैं संतुष्ट हूँ कि स्ट्रिक्नीन (xxv) है (Experientia 1946) और इसकी इसके अतिरिक्त और कोई दूसरी रचना हो ही नहीं सकती।"

सिद्धान्त और व्यवहार पर प्रभाव

जटिल कार्बनिक पदार्थों, जैसे ऐलकेलाइडों के संश्लेषण का आरम्भ सरल यौगिकों की तैयारी से होता है; तैयारी की विधि रासायनिक रूप से सुस्पष्ट होनी चाहिए। ये यौगिक मिलकर ऊँची रचना बनाते हैं और तब हम इन जटिल रचनाओं को समझ सकते हैं, क्योंकि हमने उनको बनाया है। इस प्रकार से प्राप्त ज्ञान केवल निर्मित ऐलकेलाइड तक ही सीमित नहीं रहता; उस पदार्थ को उपमाओं और सादृश्यों से दूसरों से संबंधित कर दिया जाता है। इस प्रकार, संश्लेषण की विधि और ऐल-केलाइडों की रचना में अंतर्दृष्टि से कुछ मलेरिया-नाशक औषधियों के बनाने की कठिन विधियों में सफलता मिल सकी। सर राबर्ट राबिन्सन ने पिछले युद्ध के दौरान में इस कार्य में प्रमुख भाग लिया।

प्राकृतिक ऐलकेलाइडों के ज्ञान से नये प्रयास के लिए विशिष्ट लक्ष्यों का बनाना संभव हुआ और इस प्रकार औषधोपयोगी पदार्थों की रचना की युक्तियुक्त भविष्य-वाणी की जा सकी। पहले जिन विधियों का विकास किया गया था, उनसे नये पदार्थों के बनाने का मार्ग सरल हो गया।

१९४८

आर्ने टिजेलियस (Arne Tiselius)

(१९०२--   )

"इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस (electrophoresis) और अधिशोषण-विश्लेषण पर शोध-कार्य के लिए, विशेषतया सीरम प्रोटीनों की जटिल प्रकृति संबंधी आविष्कारों के लिए"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

आर्ने विलहेल्म काउरिन टिज़ेलियस का जन्म स्टाकहोम में हुआ था। आप गाथेनबर्ग के स्कूल में गये। रसायन का अध्ययन आपने उप्पसल में किया। यहाँ आपके बाबा गणित के प्रोफेसर थे। १९२५ से लेकर स्वेदबर्ग (Svedberg) के असिस्टेंट रहे। डाक्टर की उपाधि के लिए आपकी थीसिस १९३० में प्रकाशित हुई। इसमें आपने "प्रोटीनों की इलेक्ट्रो फ़ोरेसिस के अध्ययन में गतिशील सीमा की विधि" पर कार्य किया था। विद्युतीय चार्ज के प्रभाव से घुलित पदार्थों के विस्थापन को इलेक्ट्रोफोरेसिस कहते हैं। यह कई बातों पर निर्भर होता है, जैसे विलयन का सांद्रण, अणुओं का रूप और आकार, विद्युतीय आवेश (चार्ज) का परिणाम एवं वह माध्यम जिसमें अणु घुले होते हैं। प्रोटीन के लम्बे एवं संवेदी अणुओं के अध्ययन के लिए इस विस्थापन की विधि का प्रयोग करने के काफी प्रयास किये जा चुके थे। उपयुक्त परिस्थितियों एवं ऐसी प्रकाश-प्रणाली, जिससे अणुओं की गति का पता चल सके, का चयन आवश्यक था। इस गति की सीमा "गतिशील सीमा" को व्यक्त करती है।

डाक्टर की उपाधि पाने के थोड़े दिन बाद टिज़ेलियस ने नोवेल पुरस्कार के उद्धरण (citation) में वर्णित दूसरे विषय—अधिशोषण—पर अन्वेषण आरम्भ किया। आपने अपना कार्य प्रिंसटन में १९३४-३५ में जारी रखा। १९३७ में उप्पसल लौटने पर आपने रक्त सीरम में प्रोटीनों को पृथक् करने के लिए इलेक्ट्रोफ़ारेसिस की विधि का प्रयोग किया। जीवन के रसायन एवं उसकी भौतिकी के अध्ययन के हेतु

आपके लिए प्रोफेसर के एक नये पद की सृष्टि की गयी और इस कार्य के लिए एक नया इंस्टीट्यूट भी बनाया गया।

टिजेलियस महोदय वैज्ञानिक शोध की साधारण समस्याओं में काफ़ी रुचि रखते हैं। १९४६ में प्राकृतिक विज्ञानों की शोध के लिए बनी स्वीडेन की राष्ट्रीय काउंसिल के आप आरम्भ से सभापति रहे हैं।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस विधि की सबसे अधिक उपयोगिता उसकी सादगी और उच्च विशिष्टता में है। पृथक्करण के पूरे समय तक पदार्थ विलयन में रहता है और उसकी रचना भी प्रायः स्थिर रहती है; इस प्रकार उसके विकृतीकरण (denaturation) और अन्य अपलटनीय (irreversible) परिवर्तनों का, जो अवक्षेपण पर पराधीन प्रक्रमों के ऊपर इतनी सरलता से प्रभाव डालते हैं, खतरा जाता रहता है। अक्सर अवक्षेपण अथवा बार-बार पुनःकेलासीकरण (recrystallization) द्वारा शुद्धीकृत प्रोटीनों, एन्ज़ाइमों और दूसरे पदार्थों को इलेक्ट्रोफोरेटिक विधि से असमांग पाया गया। ऐसा कदाचित् इस कारण होता है कि इन पदार्थों में अवक्षेपण के समय अन्य पदार्थों के अवशोषण की क्षमता होती है। विलयन में इन अवयवों के पृथक् रहने की काफ़ी सम्भावना होती है और चूँकि इलेक्ट्रोफोरेसिस की विधि में पृथक्करण गतिशीलता (mobility) के अंतर पर निर्भर होता है, अतः इसका कोई महत्त्व नहीं कि अशुद्धियाँ थोड़ी मात्रा में हैं या नहीं। अन्य विधियों के विपरीत इस विधि में पृथक्करण शीघ्र होता चला जाता है।

"तथापि, विधि की इतनी सरलता की कुछ सीमाएँ भी हैं और इनको बतलाना चाहिए। विलयन में एक दूसरे से स्वतंत्र रहने वाले अणुओं अथवा कणों को ही इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस की विधि से पृथक् किया जा सकता है। यदि उनमें कुछ संकुल समूह अथवा संयोग बन गये हैं तो उनका पृथक्करण उतना ही हो सकता है जितना उन संकुलों का विघटन हो गया हो। एक ऐसा अवयव, जो इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस के समय समांग जान पड़ता हो, विभिन्न परिस्थितियों में (धीमी प्रतिक्रिया न करने पर अथवा केवल pH के परिवर्त्तन से) बिलकुल संकुल बन सकता है। तब भी इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस (जैसे अतिसेन्ट्रीफ़्यूज़) द्वारा इनके परीक्षण बिलकुल दूसरेही दृष्टिकोण से बहुत

1. Lex Prix Nobel en 1948 से अनूदित।

महत्त्वपूर्ण हैं। जितने धीमे से प्रतिक्रिया की जाती है, उससे यह भी निष्कर्ष निकलना चाहिए कि ऐसे संकुल, जो प्राप्त किये गये हैं, कदाचित् मूल पदार्थों में भी उपस्थित होते हैं; अर्थात् जब हम प्रोटीन पर कार्य करते हैं तो वे जीवित प्राणी में भी हो सकते हैं। यह राय देने के लिए कदाचित् जीवनवादी (vitalist) होना आवश्यक नहीं है कि जो रसायनज्ञ के दृष्टिकोण से अशुद्धता है (उदाहरणतया, लाइपो-संकुल में लाइपिड) वह कदाचित् जीव-शास्त्र के दृष्टिकोण से जीवनोपयोगी हो। स्वाभाविकतया संपूर्ण जीवन-रसायन में जीव-शास्त्रीय पदार्थों से रसद्रव्यों के निकालने में मुख्य रुचि रहती है, किन्तु अब यह प्रायः निःसंदेह है कि भविष्य में जीव प्राणी में उपस्थित इन विशिष्ट संकुलों पर भी काफ़ी ध्यान दिया जायेगा। एक दूसरे से संबंधित प्रतिक्रियाओं की शृंखला से ही जीवन-प्रक्रम बनते हैं और विशिष्ट कार्यों को इन शृंखलाओं अथवा प्रतिक्रियाओं का परिणाम समझना चाहिए।

"१९४० में मैंने प्रोटीन और उससे टूट कर बने पदार्थों का क्रोमैटोग्राफी से विश्लेषण करने के प्रयोग आरम्भ किये। इस विधि को उपयुक्त समझा गया और अद्भुत विशिष्टता के कारण इसको अपनाना पड़ा। १९०६ और इसके बाद में स्वेट (Tswett) द्वारा किये गये अन्वेषणों से कार्बनिक पदार्थों की इस विशिष्टता का ज्ञान हो चुका था। पेप्टाइड और इसी प्रकार के टूटे पदार्थों की इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस में जो विशेष कठिनाइयाँ (जैसे सीमा के अपवाद) सामने आयीं उनके कारण एक ऐसी विधि ज्ञात करना आवश्यक था, जिससे इनका पृथक्करण सरल हो जाय।

"साधारण रूप से कोमैटोग्राफ़ी की सब विधियों की भाँति ये काफी विभिन्न पदार्थों के विश्लेषण में उपयोगी सिद्ध हुई हैं। हम लोगों ने अनुभव के लिए एमीनो अम्लों, पेप्पाइडों, शर्कराओं और वसीय अम्लों आदि के साथ अनेक प्रयोग किये हैं।

"इन चित्रों के परिमाणात्मक निर्धारण के लिए यह अत्यावश्यक है कि यथासंभव निम्न सांद्रण का उपयोग किया जाय। तदनुसार, क्लेसन (Claesson) अभी हाल में ही एक नये अधिशोषण-विश्लेषण-व्यतिकरण मापी (interferometer) को बनाने में सफल हुए। यह सुनकर आपको आश्चर्य होगा कि पहले यंत्र की अपेक्षा यह पाँच गुना अधिक संवेदी है। इस यंत्र से क्लेसन महोदय पालीमेटाक्रिलेट के बहुअवयवों एवं नाइट्रोसेल्यूलोज़ से संबंधित पदार्थों को पृथक् करने में सफल हुए हैं। इससे यह स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में अधिशोषण-विश्लेषण का निकट भविष्य में ही बड़ा महत्त्व हो जायेगा।"

सिद्धान्त और व्यवहार पर प्रभाव

टिज़ेलियस द्वारा और उनके इंस्टीट्यूट में जिन विधियों का विकास हुआ है, उनसे उन पदार्थों का बारीकी से विश्लेषण किया जा सकता है, जिनकी रासायनिक रचना थोड़ी-सी ही विभिन्न है। यह बड़े महत्त्व की बात है क्योंकि इस थोड़ी-सी विभिन्नता वाले यौगिकों का सजीव प्राणियों पर प्रभाव काफ़ी भिन्न हो सकता है। इन विधियों का विकास करने के लिए रसायनज्ञ को अच्छा भौतिकीज्ञ और यंत्र-आयोजक होना पड़ा।

इस प्रकार से प्राप्त पृथक्करण प्रकाश के वर्तन द्वारा बड़े अंतरों की सूचना देते हैं। जब घुलित पदार्थ समांग नहीं होता, तो इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस के चित्रों में कई चोटियाँ-सी दिखाई देती हैं। इस प्रकार यह दक्ष विश्लेषक यंत्र की भाँति प्रयुक्त हो सकता है। हार्वर्ड में रक्त प्लाज़्मा के प्रभाजन से शुद्ध प्रोटीनों के उत्पादन के समय ऐसा ही किया गया। इन प्रभाजनों की औषधीय उपयोगिता काफ़ी विशिष्ट है और इसके द्वारा जीवशास्त्रीय रूप से हस्तक्षेप करने वाले पदार्थों को पृथक् किया जा सकता है। कुछ दशाओं में इलेक्ट्रोफ़ोरेसिस के यंत्र में ही प्रभाजन किया जा सकता है।

अधिशोषण से पृथक्करण सर्वोपयोगी है, क्योंकि इस विधि में कई प्रभावात्मक खंडों को मिलाया जा सकता है। ये खंड इस प्रकार हैं—वे पदार्थ, जिन पर अधिशोषण किया जाय, वे विलायक जिनसे पदार्थों को अवरुद्ध किया जाय और फिर उनको पृथक् किया जाय। इस विधि से संश्लिष्ट रेज़ीनों में बहु-अवयवी पदार्थों की उपस्थिति की बहुमूल्य सूचना प्राप्त हुई है। यद्यपि इस विधि को साधारणतया क्रोमैटोग्राफी की विधि की संज्ञा दी जाती है, तथापि इसका प्रयोग रंगहीन पदार्थों के साथ भी किया जा सकता है; पहले इससे केवल रंगीन पदार्थ पृथक् किये जा सकते थे।

क्रोमैटोग्राफ़ी की विधि का विशेष रूप से प्रभाव डालने वाला उपयोग है—विरल-मृदा यौगिकों का पृथक्करण। इनके रासायनिक गुणधर्म प्रायः एक-से होते हैं, परमाणु-विखंडन में इन तत्त्वों ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया है।

१९४९

विलियम फ्रान्सिस ग्याउक्यू (William Francis Giauque)

(१८९५–)

"रासायनिक ऊष्मा-गतिकी के क्षेत्र में आपके कार्य के लिए, विशेषतया अति निम्न ताप पर पदार्थों के आचरण के अध्ययन के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

विलियम ग्याउक्यू का जन्म नियागरा जल-प्रपात, ओण्टेरियो में हुआ था। आपने हाई स्कूल के पश्चात् दो वर्ष एक औद्योगिक प्रयोगशाला में बिताये। इसके बाद आपने कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में रसायन का अध्ययन किया। वहाँ गिलबर्ट एन० लीविस (Gilbert N. Lewis) ने आपका ध्यान ऊष्मा-गतिकी की समस्याओं और सुन्दरताओं की ओर आकर्षित किया। डाक्टर की उपाधि पाने के कुछ वर्ष पश्चात् (१९२२) आपने विशिष्ट ताप पर पदार्थों की आंतरिक ऊर्जा की क्षमता का अध्ययन किया। इसके द्वारा आप इस क्षमता पर चुंबकत्व के प्रभाव (जिसको साधारणतया एन्ट्रापी कहा जाता है) की गणना कर सके। अनेक वर्षों बाद इन गणनाओं का प्रायोगिक परीक्षण हुआ। १९३३ में ग्याउक्यू ने कैलीफ़ोर्निया में और डे हास (de Haas) ने हालैंड में ऐसा ताप प्राप्त किया, जो परम शून्य से केवल ०.५ डिगरी कम था।

एन्ट्रापी और ऊष्मा-गतिकी के दृष्टिकोणों से द्रव्य के सारे गुणधर्म एक दूसरे से संबंधित होते हैं और उनमें से किसी एक का उपयोग करके दूसरे गुणधर्म पर प्रभाव डाला जा सकता है, अथवा उसको समझा जा सकता है। जैसे ही आपने चुम्बकत्व को ऊष्मा से जोड़ा, वैसे ही आक्सिजन के वर्णक्रमदर्शी मापनों से यह निष्कर्ष निकाला कि उससे सारे परमाणुओं की संहति एक-सी नहीं हो सकती। आपने भविष्यवाणी की कि भली प्रकार से ज्ञात आक्सिजन के परमाणु के साधारण भार १६.०० के अतिरिक्त १७ एवं १८ भार वाले परमाणुओं को भी उपस्थित रहना चाहिए। १९२८ में की गयी भविष्यवाणी शीघ्र ही ठीक सिद्ध हुई।

कैलीफ़ोर्निया विश्वविद्यालय में रसायन के प्रोफ़ेसर पद पर आप १९३४ से रहे। तब से आप बड़े यंत्रों की सहायता से निम्न ताप की शोध का बराबर विकास करते रहे हैं। दूसरे महायुद्ध के दौरान में आपके सैद्धान्तिक कार्य का द्रव-आक्सिजन के उत्पादन में उपयोग हुआ जिसकी उस समय बड़ी आवश्यकता थी।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"जब एन्ट्रापी का सावधानी से निर्धारण किया जाता है, तो इसके साथ-साथ प्रायः अप्रत्याशित भौतिक गुणधर्मों का आविष्कार होता है। १७ एवं १८ परमाणुभार वाले आक्सिजन के समस्थानिकों का आविष्कार इसी प्रकार का था।

"डाक्टर एच० एल० जान्सटन (H. L. Johnston) के साथ आक्सिजन की निम्न ताप ऊष्म-क्षमता का यथार्थ मापन आरम्भ किया गया। इस दशा में, जैसा पहले से मालूम था, गैस अवस्था में पहुँचने के पहले इसके तीन केलासित रूप होते हैं। फलतः, अवस्था के प्रत्येक परिवर्तन के समय एन्ट्रापी में वृद्धि का मापन करना आवश्यक है।

"इस सम्बन्ध में एन्ट्रापी के निर्धारण के लिए हम लोगों ने शोध की जिन विधियों पर कार्य किया था, उनमें से एक प्रमुख विधि थी—क्वांटम सांख्यिकी और गैस अणुओं की एन्ट्रापी सतहों की सहायता से एन्ट्रापी और अन्य ऊष्मा-गतिकी की संख्याओं की गणना। ये एन्ट्रापी पट्ट (band) वर्णक्रमों से प्राप्त किये जा सकते हैं।

"आक्सिजन अणु की ऊर्जा-सतहों का निर्धारण इस वर्णक्रम से सम्भव हो जाता है। जब इन तीव्र रेखाओं (आक्सिजन वर्णक्रम में) से आक्सिजन गैस की एन्ट्रापी ज्ञात की गयी तो निम्न ताप से प्राप्त मान से वह बिलकुल मिलती थी।

"वर्णक्रम में अनेक धीमी रेखाएँ भी होती हैं। ऐसा विश्वास था कि ये आक्सिजन के कारण हैं, पर ये समझी नहीं जा सकती थीं। यह मनोरंजक बात है कि बैबकाक (Babcock) द्वारा किये गये सूर्य के अन्वेषण में भी ये अप्रत्याशित रूप से पायी गयी थीं। जब सूर्य-प्रकाश पृथ्वी के वातावरण के अणुओं में से होकर आता है तो ये रेखाएँ कुछ प्रकाश के अंश को चुनकर अवशोषित कर लेती हैं। यह प्रभाव सूर्य का फ़ोटो लेने पर बढ़ सकता है; इसके लिए सूर्य को निम्न क्षितिज पर होना चाहिए, क्योंकि तब प्रकाश वायु के अधिक भाग को प्रभावित करता है।

"पट्ट-वर्णक्रम पर आधारित एन्ट्रापी गणना को संतोषजनक नहीं माना जाता; जब तक वर्णक्रम की पूरी व्याख्या न हो जाय। धीमी रेखाओं की एक व्याख्या यह मान

1. Les Prix Nobel en 1949 से अनूदित।

कर हो सकती है कि वे अणुओं की कुछ उच्च ऊर्जा-अवस्था के कारण हैं। वे धीमी इस कारण हैं, क्योंकि उच्च ऊर्जा-अवस्था में काफ़ी अणु नहीं होते। आक्सिजन के वर्णक्रम में बहुत-सी धीमी रेखाएँ इसी कारण होती हैं, किन्तु उन सबकी व्याख्या इस प्रकार नहीं हो सकती।

"इस समस्या पर महीनों विचार करने के फलस्वरूप इससे संबंधित सारी संख्याएँ कंठस्थ हो गयीं। एक दिन प्रातःकाल मैं इस अनुभूति के साथ सोकर उठा कि इन रेखाओं का मूल विभिन्न प्रकार के समस्थानिक हैं। डाक्टर जान्सटन और मेरे द्वारा की गयी सूक्ष्मतम गणनाओं से यह बिलकुल यथार्थ सिद्ध हुआ और इससे मेरी अनुभूति दृढ़ हो गयी। यह बतलाया गया कि पृथ्वी के वातावरण में १७ एवं १८ परमाणुभार वाले समस्थानिक होते हैं।

"अति निम्न ताप से संबंधित आरम्भिक कार्य में एक प्रश्न सदैव पूछा जाता था, वह यह है—'आपको कैसे मालूम है कि वह ठंडी हो जाती है?' यह प्रश्न ठीक है। स्पष्टतया, किसी ने भी ऐसा तापमापी नहीं बनाया था, जिससे ऐसे ताप ज्ञात किये जा सकें जिन पर अभी पहुँचा ही नहीं गया था। चूँकि हीलियम गैस का भी दाब इन तापों पर प्रायः गौण होता है, अतः गैस-तापमापी भी अनुपयोगी है।

"ताप पदार्थ के उसी गुण धर्म से नापा जा सकता है, जो ताप से प्रभावित होता हो। इस दशा में जैसे-जैसे ताप कम होता है वैसे-वैसे उसकी चुंबकीय प्रवृत्ति (Susceptibility) बढ़ती जाती है।

"जब प्रत्यावर्ती धारा एक मापी सर्पिल से चलायी जाती है तो जैसे-जैसे चुंबक-प्रवृत्ति बढ़ती जाती है वैसे-वैसे धारा का उसमें प्रवाह कठिन होता जाता है। इस प्रभाव के कारण चुंबक-प्रवृत्ति का मात्रात्मक निर्धारण हो सकता है।

"द्रव हीलियम के ताप पर मापी सर्पिलों के तार का प्रतिरोध इतना कम हो जाता है कि सर्पिल में तार के घुमावों की संख्या बहुत बड़ी रखी जा सकती है। इन निम्न तापों पर सर्पिलों से जो संवेदिता प्राप्त होती है, वह ऐसी है कि उसमें पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र के कारण होनेवाले छोटे उच्चावचनों (fluctuations) को पूरा करना पड़ता है।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

ताप से सारे रासायनिक एवं भौतिक गुणधर्मों का संबंध स्थापित करना ऊष्मा-गतिकी का मुख्य विषय है और इस विषय का मुख्य विचार एन्ट्रापी है। ताप अणुओं

की गति के फलस्वरूप होता है और यह गरम करने पर गैसों के विस्तार से प्राप्त मापक्रम (scale) से नापा जा सकता है। इस मापक्रम एवं उन विचारों से जिनसे यह मापक्रम बनाया गया है, एक परम शून्य बिन्दु होता है। इस बिन्दु पर, जो केल्सियस (Celcius) के सेंटीग्रेट मापक्रम के शून्य से २७३ डिगरी नीचे है, सारी आणव गति को शांत हो जाना चाहिए। ताप की यह परम शून्य अवस्था बड़ी मनोरंजक है; नर्न्स्ट महोदय ने इस अवस्था के निकट वाली परिस्थितियों से कुछ बड़े व्यावहारिक सिद्धांत निकाले थे। आप ऐसा इसलिए कर सके थे, क्योंकि हम लोगों ने साधारण रूप से प्राप्य तापक्रमों की सहायता से इस ताप की भविष्यवाणी की थी। ऊष्मा-गतिकी की गणनाओं से वायु का द्रवण एवं द्रव आक्सिजन तथा द्रव नाइट्रोजन का उत्पादन संभव हो सका है। जब वायु को दबाया जाता है तो उसकी आणव ऊर्जा का एक भाग ताप में परिवर्तित हो जाता है। इस ऊर्जा को ठंडे माध्यम के प्रक्रम के अवशोषण की सहायता से हटाया जा सकता है। जब यह ठंडी दबी हुई गैस पुनः विस्तृत होती है तो उसकी आंतरिक ऊर्जा अधिक जगह सुलभ होने के कारण अणुओं की अधिक गति में परिवर्तित हो जाती है; फलतः ताप गिर जाता है। दबाने, ठंडा करने और विस्तृत करने के चक्र को बार-बार दोहराने से वायु द्रवीभूत हो जाती है, और इस द्रव वायु के ठंडे माध्यम की सहायता से हीलियम को भी द्रवीभूत कर लिया जाता है।

समचुंबकीय पदार्थ पर चुंबकीय क्षेत्र के प्रभाव से इलेक्ट्रान की गति में कुछ व्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। यह प्रभाव ताप से प्रतिलोम रूप में बढ़ता है; यह १° पर साधारण ताप (परम मापक्रम पर ३००°) की अपेक्षा ३०० गुना अधिक होता है। जब आंतरिक गतियों पर इतनी उच्च प्रकार की व्यवस्था लागू की जाती है तो यह संपीडन के तुल्य हो जाता है और इससे ऊष्मा उत्पादित होती है। इस ऊष्मा को ठंडे माध्यम (जैसे १° वाली हीलियम) से हटाया जा सकता है। इस प्रकार से ठंडा करने के बाद जब चुंबकीय क्षेत्र को हटा लिया जाता है, तो उससे ताप और गिर जाता है, क्योंकि इससे गैस में विस्तार होता है। इस प्रकार इतना निम्न ताप प्राप्त किया गया जो परम शून्य से केवल ०.००३° ऊपर था।

इतने निम्न तापों का मापन भी अति कठिन है। गैस तापमापी का उपयोग केवल हीलियम के क्वथनांक तक हो सकता है। इसके बाद जिन तापमापियों का उपयोग होता है, वे शुद्ध धातु के विद्युतीय प्रतिरोध पर आधारित होते हैं। यह विधि इस तथ्य से जटिल हो जाती है कि एक ऐसा ताप होता है जो प्रत्येक धातु के लिए विशिष्ट होता है; इस ताप पर उनका प्रतिरोध शून्य होता है और वे विद्युत् के अतिचालक बन

जाते हैं। परम-निम्न ताप की शोध का एक उद्देश्य यह भी है कि धातुओं की इस विशेष अवस्था का और ज्ञान प्राप्त किया जाय। व्यावहारिक दृष्टिकोण से एक और पार्श्व मनोरंजक है। वह है समचुंबकन का, अपनी धुरी के चारों ओर नाचने वाली इलेक्ट्रान-गतियों की ऊर्जा-सतहों (स्पिन "Spin") से संबंध स्थापित करना। इस प्रकार की गति से, जो वर्णक्रम के सूक्ष्म-तरंग के परास में होती है, अवशोषण संबंधित होते हैं। अधिक विकसित रेडार (Radar) यंत्रों के निर्माण में इसका और अधिक अच्छा ज्ञान होना चाहिए।

१९५०

आटो डील्स (Otto Diels)
(१८७६–   )

कुर्ट आल्डर (Kurt Alder)
(१९०२–   )

"डाईन संश्लेषण के विकास के लिए।"

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

डील्स

आटो डील्स का जन्म हैमबुर्ग, जर्मनी में हुआ था। आपने बर्लिन में रसायन का अध्ययन किया और १८९९ में डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। आपने थीसिस के लिए एमिल फिशर की प्रेरणात्मक संरक्षकता में कार्य किया था। कार्बनिक रसायन का क्षेत्र बड़ा विशाल है; उसमें किये गये अधिकतम शोध-कार्यों का महत्त्व छोटे-छोटे भागों में ही होता है। डील्स के साथ यह बात न थी। आपने तीन ऐसे आविष्कार किये जिनसे संपूर्ण क्षेत्र पर प्रकाश पड़ा और जिनकी ओर सब लोग आकर्षित हुए।

इन आविष्कारों में पहला, एक ऐसा गैसीय पदार्थ था, जिसकी तीव्र गंध और जिसके नत्र पर प्रभाव के कारण उसकी उपस्थिति स्वयं ज्ञात हो जाती थी। आपने इसको कार्बन का आक्साइड सिद्ध किया; इसमें कार्बन के तीन परमाणु और आक्सिजन के दो परमाणु होते थे। कार्बन मोनोआक्साइड में परमाणुओं का अनुपात एक और एक होता है, सबसे अधिक व्याप्त कार्बन आक्साइड में कार्बन का एक परमाणु और आक्सिजन के दो परमाणु होते हैं। यह आविष्कार (१९०६) अद्भुत था क्योंकि यह यौगिक केवल सक्रिय ही नहीं था, अपितु यह भली प्रकार से ज्ञात दो तत्त्वों का एक नया यौगिक था।

दूसरा आविष्कार एक ऐसी विधि थी जिसमें कार्बनिक अणुओं के आंशिक हाइ-ड्रोजन को धीमे और नियंत्रित रूप में हटाया जाता था। इस विधि के लिए प्रतिकर्मक

था—सिलीनियम, जो एक धातु है और आवर्त-वर्गीकरण के अनुसार गंधक का संबंधी है। इस धातु की हाइड्रोजन-आधिक्य वाले यौगिकों पर चयनात्मक (selective) प्रतिक्रिया से स्टीरोलों-जैसे जटिल पदार्थों की रचना ज्ञात करने में सहायता मिली।

तीसरे आविष्कार से संपूर्ण कार्बनिक रसायन को सर्वोपयोगी विधि मिली। यह संश्लेषण की एक ऐसी विधि है, जो अधिकतम धीमी परिस्थितियों में होती है और इसलिए पदार्थ की रचना को सरलता से स्पष्ट करती है। यह संश्लेषण दो द्विबंधक वाले यौगिकों के एक विशेष गुणधर्म पर आधारित है, जिनमें दो द्विबंधक एक एकबंधक से पृथक् होते हैं। ब्यूटाडाईन

$$\underset{1}{CH_2}=\underset{2}{CH}-\underset{3}{CH}=\underset{4}{CH_2}$$
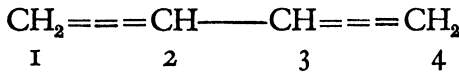
इसका सरल उदाहरण है। आइसोप्रीन, जो प्राकृतिक रबर के लिए ईंट-सी है, वस्तुतः वह ब्यूटाडाईन है, जिसमें मेथिल समूह दो संख्या वाले कार्बन परमाणु पर जुड़ा होता है। पाँच कार्बन परमाणुओं वाली महत्त्वपूर्ण डाईन साइक्लो-पेंटाडाईन है—इसमें पाँच कार्बन परमाणुओं से एक बंद घेरा बनता है।

डील्स, १९१६ से कील विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रहे हैं। आपने कार्बनिक संश्लेषणों में आविष्कार एवं अन्वेषण कुर्ट आल्डर के साथ किये हैं।

आल्डर

आल्डर ने रसायन का अध्ययन बर्लिन में किया। तत्पश्चात् आप कील आ गये और वहाँ से १९२६ में डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। कील प्रयोगशाला में डाईन संश्लेषण शोध का एक प्रमुख विषय था और यहाँ से ही यह शोध-कार्य अन्य स्थानों पर फैला है। आपने अपने वैज्ञानिक कार्य के परिणामों को टेक्निकल समस्याओं के सुलझाने में लगाया। आई० जी० फ़ार्बेन उद्योगों में आपने प्लास्टिक और उनसे संबंधित जीवनोपयोगी अन्य पदार्थों के बड़े अणुओं का अध्ययन किया। १९४० में आपने कलोन विश्वविद्यालय के रासायनिक इंस्टीट्यूट में डायरेक्टर का पद स्वीकार किया।

पुरस्कार-प्राप्त कार्य का वर्णन[1]

"हम लोग यह निश्चित करने में सफल हुए हैं कि डाईनों में, जिनका आइसोप्रीन विशिष्ट प्रतिनिधि है, अद्भुत रूप से अनेक ऐसे संश्लेषण करने की क्षमता होती है,

1. Zeitschrift fur Angewandte Chemie. VoI. XLII (1929) p. 911 *ff* से अनूदित।

जो सबसे धीमी परिस्थितियों में हो सकते हैं। अपने परीक्षणों के फलस्वरूप हमको इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि वे सब कार्बनिक संश्लेषणों में (अर्थात् प्राणियों में भी) कार्बनिक अणु के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं।

"डाईन संश्लेषण के विकास की सबसे आवश्यक प्रतिक्रिया वह है जिसमें ऐज़ो एस्टर से प्रयोग में अदला बदली होती है—

$$RO_2C—N{=}N—CO_2R$$
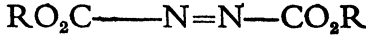
इसके फलस्वरूप एक उपयुक्त नाइट्रोजन से स्वतंत्र प्रक्रम बन जाता है; इस प्रतिक्रिया का आरम्भ थीले के विद्यार्थी आल्ब्रेक्थ (Albrecht) के एक पुराने प्रकाशन से हुआ था। आपन यह देख लिया था कि साइक्लोपेंटार्डाइन क्वीनोन के एक या दो अणु-भारों से संयोग करती है। आपने प्रतिक्रिया से बने पदार्थों के जो दो सूत्र बताये थे... उनको हम लोगों ने गलत सिद्ध कर दिया। साइक्लोपेंटाडाईन का क्वीनोन से संयोग १ : ४ स्थिति में होता है।

"इस सिद्धांत के अनुसार हम लोगों ने सरल डाईनों (जैसे स्वयं ब्यूटीडाईन अथवा उसके ऐल्काइलयुक्त यौगिक या चक्रीय डाईन भी) को ऐल्फ़ानफ़्थोक्वीनोन से जोड़ा और इस प्रकार ऐन्थ्राक्वीनोन के अनेक सजात (homologues) तैयार किये। इस विधि के अनुसार संभावित संश्लेषणों की संख्या का कोई अंत नहीं है। चूंकि ये प्रतिक्रियाएँ अचानक होती हैं और इनमें दूसरे प्रतिकर्मकों की उपस्थिति आवश्यक नहीं होती, अतः मुझे यह युक्तियुक्त प्रतीत होता है कि प्रकृति भी ऐन्थ्रासीन और हाइड्रोकार्बन के जटिल यौगिक बनाने के लिए इस विधि का प्रयोग करती है।

"डाईन संश्लेषण का अतुलनीय बाहुल्य इस तथ्य का परिणाम है कि प्रतिक्रिया के दो अवयव इच्छानुसार परिवर्तित किये जा सकते हैं, किन्तु इस परिवर्तन से संयोग की प्रवृत्ति और इस प्रकार हाइड्रो ऐरोमैटिक यौगिक बनाने की क्षमता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।"

सिद्धांत और व्यवहार पर प्रभाव

डाईन संश्लेषण से एक ऐसी धीमी विधि ज्ञात हुई जिससे काफ़ी जटिल अणु ऐसी प्रतिक्रिया से बनते हैं, जिसमें अणु के भागों को केवल साथ रख दिया जाता है। इस प्रतिक्रिया में न ऐसे ताप की आवश्यकता होती है और न वैसा ताप उत्पादित होता है जो जीवित प्राणियों की सीमाओं के बाहर हो। इस प्रकार ऐन्थ्रासीन रचना वाले रंग-सामग्रियों अथवा कोलस्टीरोल की रचनाओं का संबंध जीवन-रसायन से जोड़ा जा सका। कुछ हद तक हम प्राणियों के इन पदार्थों के बनने की नक़ल कर सकते हैं।

इन संश्लेषणों के नियमों को सरल नमूनों की सहायता से निर्धारित किया गया। ऐसे कार्य के दौरान में हम संश्लेषणों की सहायता से अणुओं, उदाहरणतया, उच्च टर्पीन की परमाणु व्यवस्था का सबूत दे सकते हैं। फ़िलैन्ड्रीन (Pheliandrene) एक ऐसी टर्पीन है जो जल फ़ेनेल (fennel) अथवा यूकैलिप्टस वृक्षों से प्राप्त होती है। इससे डाईन संश्लेषण किये जा सके और इनकी सहायता से इसकी अणु-रचना स्पष्ट हो ग यी। दो सरल एवं सरलता से प्राप्त रसद्रव्य-फ़्यूरेन एवं मैलीक अम्ल एनहाइड्राइड के डाईन संश्लेषण से कैन्थेरीडीन प्राप्त हुआ। यह एक प्राचीन औषधोपयोगी विष है जो तथाकथित स्पेन की मक्खी और कुछ भृंगों (beetles) से प्राप्त किया जाता है।

नैफ़्थोक्वीनोन ऐसा पदार्थ है, जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है। इसमें नेफ़्थलीन के दो घेरों में से एक घेरे में एक दूसरे से विपरीत स्थान पर आक्सिजन के दो परमाणु होते हैं। इसने विटाम्नि के सक्रियता वाले पदार्थ से यौगिक बनाया। इनका संश्लेषण ब्यूटाडाईन में उपयुक्त भाग को जोड़कर किया गया। इसी प्रकार की अन्य प्रतिक्रियाएँ काफ़ी उपयुक्त होती हैं और इनसे दूसरे विटामिनों और हार्मोनों का कृत्रिम उत्पादन होता है।

डाईन यौगिक एक दूसरे से जुड़कर बहु-अवयवी (polymer, बहुलक) बनाते हैं। ब्यूटाडाईन के बहु-अवयवीकरण से अकेले अथवा स्टीरीन के साथ, कृत्रिम रबर बनता है। डाईन संश्लेषण का अनुभव ऐसे बहु-अवयवीकरण (बहुलीकरण) की सैद्धांतिक व्याख्या करता है। इनके अध्ययन की सहायता के फलस्वरूप प्लास्टिक और रबर-जैसे पदार्थों की उत्पादन-विधियों को अधिक अच्छा बनाया गया है।

लेखकों की तालिका

विषयानुक्रमणिका

१. जैकोबस हनरीकस वैंट हॉफ़

२. एमिल फ़िशर

३. स्वान्ते अगस्त एर्‌हीनियस

४. विलियम रेमजे
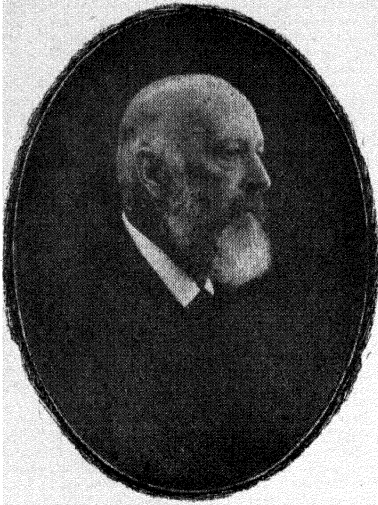
५. एडोल्फ फ़ान बाएर

६. हेनरी मोआयसां

७. एडुअर्ड बुख़्नेर
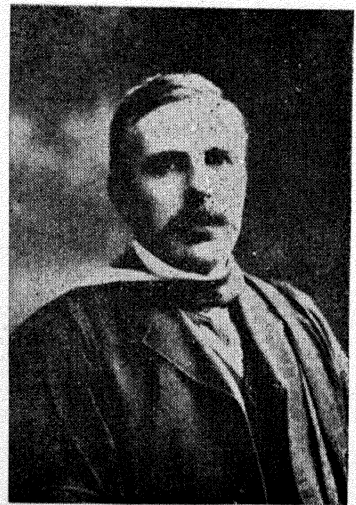
८. अरनेस्ट रदरफ़ोर्ड

९. विल्हेल्म आस्ट्वल्ड

१०. आटो वालाख

११. विक्तर ग्रिनयार्ड
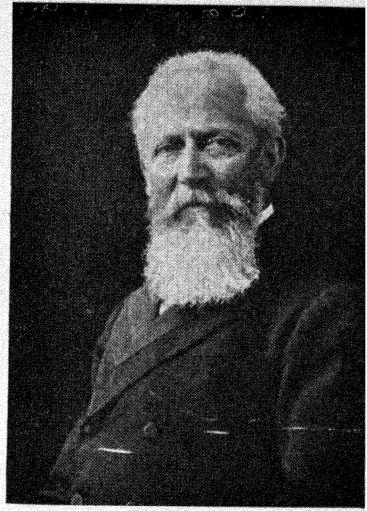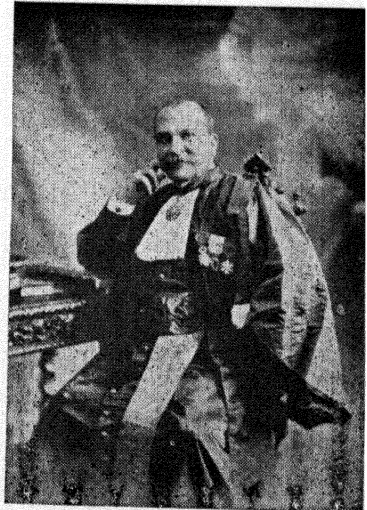
१२. पाल सबैशिए

१३. आल्फ्रेड वर्नर

१४. थियोडोर विलियम रिचर्ड्स

१५. रिचर्ड विल्सटैटर

१६. फ्रिट्ज हाबेर

१७. वाल्थॅर नर्न्स्ट

१८. फ्रेडरिक साडी

१९. फ्रान्सिस विलियम ऐस्टन

२०. फ्रिट्ज प्रेग्ल

२१. रिचर्ड जिगमान्डी

२२. थियोडार स्वेदबर्ग
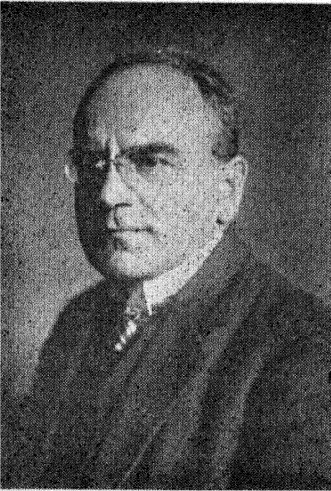
२३. हाइनरिस वीलैंड

२४. एडोल्फ़ विनडाउस
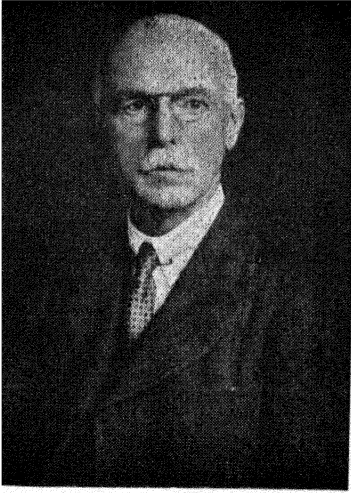
२५. आर्थर हार्डेन

२६. हन्स फ़ान यूलेर-चेल्पिन

२७. हन्स फ़िशर
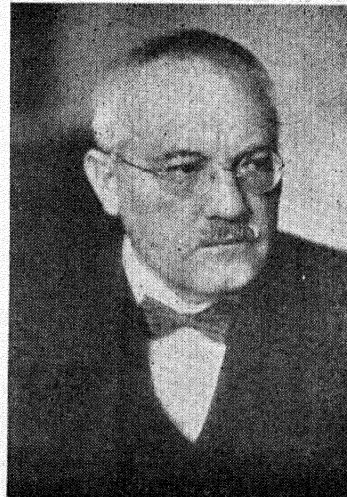
२८. कार्ल बॉश

२९. फ्रीडरिश बर्गियस

३०. अरविंग लैंग्म्योर

३१. हैरल्ड वलेटन यूरे

३२. फ्रेडरिक जोलियो

३३. आयरीन जोलियो क्यूरी

३४. पीटर जे० डब्लू डिबाई

३५. वाल्टर नार्मन हावर्थ

३६. पॉल केरर

३७. लियोपाल्ड रुज़िका
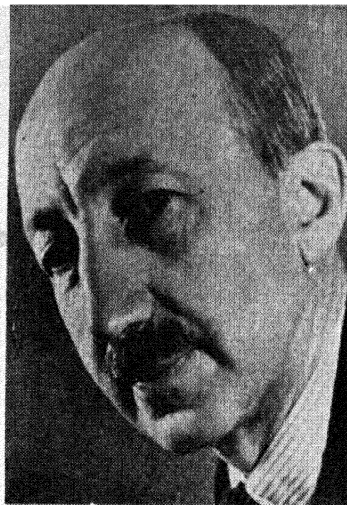
३८. जार्ज डी हेवेसी

३९. ओटो हॉन

४०. आरटूरी इलमारी विरटानैन

४१. जान हार्वर्ड नार्थ्राप

४२. वेन्डेल मेरेडिथ स्टैनली
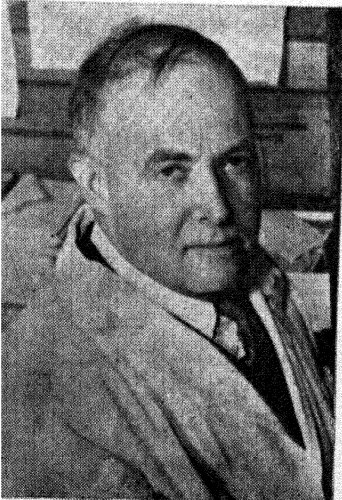
४३. ज़ेम्स बी० सुमनेर

४४. राबर्ट राबिन्सन

४५. आर्ने टिजेलियस

४६. विलियम फ्रान्सिस ग्याउक्यू

४७. कुर्ट आल्डर

४८. आटो डील्स